

आत्मनि कमल स्वराक करणवशादनुदभूतिरुपशम । यथोक्तकादिद्रव्यसम्बन्धादम्भसि  
 पदस्य उपशम ॥ ज्ञय आत्यन्तिकी निवृत्ति ॥ यथातस्मिन्नेवाम्भसि शुचिभाजनान्तरसक्रान्ते  
 पदस्यत्यन्ताभाव ॥ उभयात्मको मिश्र । यथा तस्मिन्नेवाम्भसि क्तकादिद्रव्यसम्बन्धापद्धस्य  
 लीगादीगृह्णति ॥ द्रव्यादिनिमित्तवशात्कर्मणा फलप्राप्तिरुदय ॥ द्रव्यात्मलाभमात्रहेतुक परिणाम ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ साधन प्रथम रूपपर सरूत सवार्थसिद्धिचिका शब्दशः हिदी अनुवाद ॥  
 भाष्यनि । कर्मणः ॥ स्वशक्तः ॥ कारणवशात् । =आत्मा में कर्म की निम्न सामर्थ्य क निमित्त क प्रथ से वा माध्यय स  
 अनुदभूति ॥ उपशम ॥ यथा • क्तकादिद्रव्यसम्बन्धात् । =उदय न होना(सो)उपशम है । जैसे निर्मली आदिक वस्तु के संयोग से  
 सम्भवि ॥ पदस्य ॥ उपशम ॥ =जलमें कीचका शान्ति वा समता होना अर्थात् कीचड़ का नीचे बैठ  
 ज्ञयः ॥ आत्यन्तिकी ॥ निवृत्ति ॥  
 यथा० नविवत् ॥ एव० सम्भसि ॥ शुचिभाजनान्तरसक्रान्ते ॥ =जैसे उसी जल को निर्मल अन्य पात्र में खनेपर  
 पदस्य ॥ नयन्यभाषः ॥ उभयमात्मकः ॥ मिश्रः ॥  
 यथा० नविवत् ॥ सम्भसि ॥ क्तकादिद्रव्यसम्बन्धात् । =जैसे उसी जल में निर्मल आदि वस्तु के संयोग से  
 पदस्य ॥ लीण-अज्ञोण इति ॥  
 ( नैम प्रणयणय ए ) भाषार्थ कादौ एक आदि का शान्य विरोध है वह मादक पदार्थ है । जिस समय उसे जल से जो दिया जाता  
 है उस समय पान से कुछ मादकशक्तिके चोण हा जाने पर और कुछ के उदयस्थ रहने पर जिस प्रकार कादो पदार्थ मिश्र मादक  
 शक्ति वा पारक हुआ जाता है । उसी प्रकार कर्मों के रूप करने वाले कारणों के उपस्थित होने पर कर्म की कुछ शक्ति क नष्ट  
 हा जान पर और कुछ क सत्ता में मौजूद रहने पर एव कुछ क उदय रहने पर भा आत्मा की (दरी गृह के समान) मिली हुई  
 भाषों की अस्या हाती है उस अवस्था का नाम मिश्र है ॥  
 द्रव्यादिनिमित्तवशात् । कर्मणाम् ॥ कुछ भाषिः ॥ =द्रव्य रूप काक भाष क कारण प्रथ से कर्मों के रसका शाय  
 उदय ॥ द्रव्यात्म लाभमात्र हेतुक । परिणामः ॥ =सोउदय है वस्तुकेनिमित्तवशात्(आत्म)की मासिमात्रवैभित्तकसापरिणामने

सिद्धि

उपशम प्रयोजनमस्यैयौपशमिक । एव चायिक, चायोपशमिक, औदयिक, पारिणा-  
 मिक्त्र ॥ त एते पञ्च भावा असाधारणा जीमस्य स्वतत्त्वमिद्युच्यन्ते ॥ सम्यग्दर्शनस्य प्रकृतत्वा  
 चाय त्रिषु विकल्पेषु औपशमिकमादौ लभ्यत इति तस्यादौ ग्रहण क्रियते । तदनन्तर चायिक.

उपशमः न्योपशमः ॥ अस्यः । इति ० औपशमिकः ॥ १ ॥ उपशम है प्रयोजन जिसका ऐसा औपशमिक है ।  
 एष ० चायिकः । चायोपशमिकः । औदयिकः ॥  
 पारिणामिकः ॥ ५ ॥  
 तैः ॥ एते ५ पञ्च ॥ भावाः ॥ असाधारणः । नीवस्यः ॥ = ये पाँचों भाव असाधारण जीवके अर्थात् जीव हीमें होते हैं अन्यकिसीमें ही होते हैं  
 सतस्यम् २ ॥ इति ० उच्यन्ते ।  
 सम्यग्दर्शनस्य ॥ मकृतत्वात् ॥ तस्य ॥ ३ ॥ त्रिषु ॥ = सम्यग्दर्शन का मकृतत्वा अचिन्कार होत से तिससम्यग्दर्शन के तीन  
 विकल्पेषु ॥ औपशमिकम् २ ॥ आदौ ॥ १ ॥ लभ्यते । = यहीमें औपशमिक आदि में ना पहिले जाति किया जाता है  
 इति तस्य ॥ आदौ । १ ॥ प्रथम् ३ ॥ क्रियते । = इस प्रकार तिस (औपशमिक) का सूत्र में प्रथम आदान (प्रथम) किया गया है  
 अर्थात् अनादि विष्यादिति जीव के प्रथम ही उपशम सम्यक्त्व होता है इस लिए सूत्र में पहिले बारी कर गया है  
 तदनन्तरम् ॥ ३ ॥ चायिक प्रथम् ३ ॥ तस्य ॥ ३ ॥  
 त्रिवियोगित्वात् ३ ॥  
 = ( निर्वल वार्द में त्रिवियोगी है बरापरी होइ वा स्वर्बा करने बाधा चायिक है  
 भावार्थ विष्यात्व, सम्यक् विष्यात्व और सम्यक् प्रकृति विष्यात्व ये सम्यग्दर्शन  
 उपशम सम्यक्त्व की विशुद्धता से अधिक है इस लिए सूत्र में औपशमिक के पश्चात् चायिक का प्रथम किया है ।

की विराधी प्रकृतिये हैं इन तीनों के सर्वथा नाश होने पर चायिक सम्यक्त्व होता है अतः चायिक सम्यक्त्व की विशुद्धता  
 उपशम सम्यक्त्व से अधिक है इस लिए सूत्र में औपशमिक के पश्चात् चायिक का प्रथम किया है ।

( १ ) लम - इह स्मृति प्रथम गण का सम्बन्ध आत्मने परी पात्रु है कर्मणि मयात् प्रयोग में यक् (= य) प्राप्त्पर ओङ् कर ले प्राय पूरय यक्

ससार्थपेनया द्रव्यतस्ततोऽसख्येयगुणत्वाच्च । तत उत्तर मिश्रग्रहण तदुभयात्मकत्वात्ततोऽ  
मरत्येय गुणत्वाच्च । तेया सर्वेषामनन्तगुणत्वादीदधिकपरिणामिकग्रहणमन्तेक्रियते ।

संमार्थपेनया १ ॥ द्रव्यतः ० तत ० असख्येयगुणत्वात् ॥ १ ॥ व=भौर संसारी जीव की विषत्कारिद्रव्य अपचास तिस औपशयिक-

गत ० उपराम् १ ॥ विश प्ररणम् १ ॥ ० दृश्यथात्मकत्वात् ॥ १ ॥ =तिस(ज्ञापिकस्येपीदे) =उपराम्)मिश्रका प्ररणद्वैवाद्यापशयमिहाप्ररणद्वै

गत ० असख्येयगुणत्वात् १ ॥ १ ॥ व ०

गर्भा १ ॥ सर्वेषाम् १ ॥ अनन्तगुणत्वात् १ ॥ १ ॥

आदिक परिणामिक-प्ररणम् १ ॥ अन्तः १ ॥ क्रियते १ ॥

व=भौर संसारी जीव की विषत्कारिद्रव्य अपचास तिस औपशयिक-  
वाले जीव से (ज्ञापिक बालजीव) असख्यत गुणे भी है  
=तिस(ज्ञापिकस्येपीदे) =उपराम्)मिश्रका प्ररणद्वैवाद्यापशयमिहाप्ररणद्वै  
र्षोक्ति तस (मिश्र) के दोनां (ज्ञापिक और उपशय) स्वरूप है  
=भौर तस (नापिक) से असख्यत गुणों जीव भी हैं ।  
=विन तस(औपशयिक ज्ञापिक, मिश्र) के अनन्तगुण (जीव) होने से  
=औदयिक परिणामिक का प्ररण अन्त में किया गया है

( १ ) उपशय तस्यस्य का बाल अन्तः मुक्त मात्र है तिस स जीव इत्य ही इच्छे होने पाते हैं और ज्ञापिक तस्यस्य का काल तेषास  
गत स तस अतिक्रम ही उपशय स ज्ञापिक का असख्यत गुण है । तिस से उच म जीवों की सख्या भी असख्यत गुणा इह । ज्ञाप्याय  
गतिरुक्ता काच धरातः कागत है तिस स ज्ञापिक तस्यस्य द्रवियों से च्य अपेक्षा से ज्ञाप्याय मेक तस्यस्युद्रि असख्यत गुण है । अरण रत् कि  
२ । एक तस्यस्युद्रिया स ज्ञाप्यायगमिक तस्यस्युद्रि तस्य ही अपेक्षा असख्यत गुण है मात्र का अपेक्षाही प्नाकि विद्युदी की अधिकता से ज्ञाप्याय  
गमिक तस्यस्य ही अपेक्षा का एक तस्यस्यस्य का-त गुणा माना है इस लिए मात्र की अपेक्षा ज्ञाप्यायगमिक तस्यस्युद्रि ज्ञापिक तस्यस्युद्रियों  
स अन्तःगत गुण नहीं माना जा सके । तथा ज्ञाप्यायगमिक तस्यस्यस्य का संख्य काल इवास्तदि सागर प्रमाण है और उच में प्रथम समय स  
कारि तस्य तस्य समय काल ही समाप्ति पद्यत इच्छे क्षान बाल यदुत स ज्ञाप्यायगमिक तस्यस्युद्रि होते रहते हैं इस लिए यहां पर भी ज्ञाप्याय  
क अन्तःगत गुण प्रमाण गुण का मानने स ज्ञापिक तस्यस्युद्रियों की अपेक्षा ज्ञाप्यायगमिक तस्यस्युद्रि उच गुणकार प्रमाण है । इस प्रकार  
या एक का अपेक्षा का साप शयिक तस्यस्युद्रियों के ज्ञापिक होने स तस्यस्युद्रियों के भीजे मिश्र शय्य का तस्यस्य है । ( पं० अथर्वव्य पञ्चमिका२४५ )

पदानिवासी आगकसहाय इकीस हूय पण्डित और विपनस्यर्ष साहित सर्वासिद्धि का शब्दयः हिन्दी अनुवाद अध्याय २ सूत्र १  
 अतः हन्धनिदेश कर्तव्य । औपशामिक्याधिकमिश्रौदयिकपारिणामिका इति । तथा सति  
 द्विश्रशब्दो न कर्तव्यो भवति ॥ नैव शक्यम् । अन्यगुणापेक्षाया मिश्र इति प्रतीयेत । वाक्ये  
 पुन सति चशब्देन प्रकृतोभयानुकार्य कृतो भवति ॥

शब्द शब्द निदेशः । कर्तव्यः । औपशामिक-  
 क्षाधिकमिश्रयौदयिकपारिणामिका ॥ इति ॥  
 तथा सति । द्विः । च शब्दः । न कर्तव्यः । भवति ।  
 न परं शक्यम् ॥ — अन्य गुण-  
 अपेक्षया ॥ मिश्रः । इति प्रतीयेत ।  
 शक्ये ॥ पुन सति ॥ च शक्येन ।  
 न कृतः । उभयानुकार्यः । कृतः । भवति ।

मिथश्च औपस्य स्वतन्त्रयौदयिक पारिणामिकौ च' ऐसा पदा है परन्तु उचने कन्वे चोरे सूत्रके स्थान पर 'औपशामिक सायिक' का अर्थकियायै  
 पारिणामिका' ऐसा सूत्र बनाना ठीक या । ऐसे सूत्र के बनाने में दो अगर दो च शब्द करने पर 'औपशामिक सायिकौ भावौ  
 क्षाप्य होगा जोकि सूत्र कारों के मत में यहाँ क्षाम माना गया है इसलिए वंसा कल्पना चौदा सूत्र नहीं बनाना चाहिए (अतः  
 औपशामिक सायिकौ भावौ मिश्रयत्वादि जैसा सूत्र कार ने सूत्र पदा है इस में च शब्द से पहिले करे गये औपशामिक और सायिक  
 नैसा सूत्र न कर कर यदि औपशामिक और सायिक मिश्रयत्वादि इदमभिव्यक्त किया जायगा तो च शब्द के अभाव में औपशामिक और  
 सायिक का अनुकरण न होने पर औपशामिक और सायिक को मिली हुई अन्वय प्रयासका य जोड़ कर और विचित्रिक अन्व  
 स्मियेत । मति बरलता है । इ = अन्वयिपणका पण्डु शाना क्य में है मति + इ = स्तो क्मिणि प्रयासका य जोड़ कर और विचित्रिक अन्व  
 उकर एक अन्वय प्रयासके पदे ही मत्यप जोड़ कर प्रता + य + ईर = प्रतीयेत रूप बना सित्त का कार्य जसामायाय ॥ है





कानिगामी गगनमाप यतील कृत् पदभेद और विमत्स्य सति सर्वाय सिद्धिका शब्दश्च नित्नी अनुवाद अर्थात् २ घृत् ?  
 नहि जायोपशमि रुद्रहमेम कर्तव्यमिति चेन्न। गौरवात् ॥ मिश्रग्रहण मध्ये क्रियते उभयापे  
 नार्थम् । भव्यस्य औपगमिरुद्रायिकौ भावौ । मिश्र पुनरभव्यस्यापि भवति औदयिकपरिणा-  
 मिश्रभ्या सह भव्यस्यापीति ॥

क्रिु उनेते विषमभ्य ही दा भावौ की मिली हुइ अत्रस्या विभ करी जायी कोकि विरुदरै इसलिये  
 इद्रगर्भित श्रुत् न कटकर जमा सूत्रकार न सूत्र बनाया है वही ठीक है और उसमें च शब्दसे औपशयिक  
 और सायिक भावों की मिली हुइ अत्रस्या ही स विभभाव का अर्थ लिया जासकता है अन्य का नहीं ।  
 तदिसाप, गगवि श्रुत् ॥ एव क्तव्यम् ॥ अति घेत् = (परन्तु) (सूत्र में) स्यापशयिक (शब्द) का प्रहण (नार्थ) करना चाहिए  
 न०  
 = (अपर) (विभ शब्द के स्थान में जायोपशयिक शब्द का प्रहण) (नार्थ) करना चाहिए  
 = ययौकि (सूत्र) गौरव होजाता था यदुमाता । विभ ( शब्द ) का आदान बीचमें  
 = दानों (वहिले पिछल) की विषयोंके लिए क्रियागया है । भव्य (नीच) के  
 = आपशयिक सायिक (दोनो) भाष है  
 = यदुदर विभ (भा) अयव्य क भी होवा है

गगयात् १ ॥ विभप्रारणम् ॥ मय्य १ ।  
 उभयापन्नागम् ॥ क्रियत भव्यस्य १ ।  
 औपशयिकजायिका १ । ययो १ ।  
 विभमः १ । पुन भव्यस्य १ । अवि पशति १  
 औपशयिकपरिणायिका भ्याम् १ । स ० भव्यस्य १ ।  
 अनि १ नि

य १ युग्म और आदयिक एव परिणायिक य १ युग्म, इन दोनों युगलोंके बीचमें मिश्र भाष पाठ रक्ता है ऐसा करनेस इतनी  
 ही न्यायन समकलना चाहिए कि भव्यके औपशयिक आदि पाँचों भाव होते हैं अर्थात् (१) औपशयिक सम्यक्स औपशयिक चात्रि  
 (२) सायिक मय्यस्त आ सायिक चात्रि (३) जायोपशयिक सम्यक्स और शान एव जायोपशयिक चात्रि (४) औदयिक और (५)  
 परिणायिक य पाँचों भाव मय्यरुही शान है और मय्यो के जायोपशयिक औदयिक और परिणायिक ये तीन ही भाव शान है ।  
 औपशयिक और सायिक ये १ भाष अयव्यक नहीं होते है

पत्यानिवासी अगस्त्यस्यैव च कोलकृत पदभेदं और विभक्त्यर्थं सति सार्थसिद्धिं का शक्यता शिवो अनुवाद प्रयोग २ रूप २  
 ह्यो च नव च अष्टादश च एकविंशतिश्च त्रयश्च द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रयस्त एव भेदा येषामिति वा  
 वृत्तिर्द्विंशतिश्चैकविंशतित्रयमेवा इति ॥ यदा स्वपदार्थवृत्तिस्तदा औपशमिकेदीना द्विनवाष्टादश  
 कविंशतित्रयो भेदा इत्यभिसम्बन्धः क्रियते अर्थवाशाद्भिक्तिकपरिणाम इति ॥ यदाऽन्यपदार्थवृत्तिस्तदा  
 निर्विष्टविभक्त्यन्ता एव भिसम्बन्धन्ते ॥ औपशमिकादयो भावा द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रयमेवा इति ॥  
 यथा समवचन यथासख्यभोतपदार्थम् ॥ औपशमिको द्विभेद । द्वायिके नवभेदः मिश्रोऽष्टादशभेद ।  
 औद्दधिक एकविंशतिभेद । पारिणामिकस्त्रिभेद

दो । प० नव । प० अष्टादश । प० एकविंशतिः ॥ प  
 प्रपः । प० द्विनवअष्टादशौ द्विविंशतिप्रपः ।  
 ते । प० भेदा । यथाप० । इति ० वा ० वृत्ति ॥  
 द्विनवाष्टादशौ द्विविंशतिप्रियेदाः । इति ०  
 प० अस्तपदार्थवृत्ति ॥ तदा ० औपशमिकेदानीनाम् ॥  
 द्विनवाष्टादशैकविंशतिप्रपः । भेदाः ॥  
 इति अभिसम्बन्धः । क्रियते ।

इया और धाँयो यावो का शुभपवन वृष्टीविभक्ति करि काना जो ये भेद पाव भावो के हैं  
 =यार्थ के आभासे वा प्रयोगन के आश्रय से विभक्ति का मिश्रणनाषा परिणामन है  
 =अप अन्यपदार्थ वृत्ति है जैसे ते ही हैं यद तिनके प्रब(सूचने) करी हुई  
 =अन्यवाची विभक्तिसमयी भाये है अर्थात् यापोंके वरी विभक्तिरानी मोदरूपके हैं  
 =औपशमिक आदि भाव हैं दो-नव-अष्टादश  
 =एकहीस यीन ऐसे-अतिभेद हैं ॥ (समवे)यथाक्रम भाव  
 =संख्यानुसारकी भाँति (=अविपत्ति) के लिए है अर्थात् औपशमिक  
 =दो भेद रूप है द्वायिक नो भेद रूप है सायोपशमिक अठारह भेद रूप है  
 =औद्दधिक एकहीस भेद रूप है पारिणामिक तीन भेद रूप है





जगन्निगामी ऋग्वेदसहाय ऋषीलि कृष पदस्येदं और विमत्स्यर्ष संहित सपर्यसिद्धि का शब्दशः हिन्दीअनुवाद अर्थाप २ सूत्र २

सर्वा

## ॥ द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥२॥

द्वयादीना सख्याशब्दाना कृतहन्धाना भेदशब्देन सह स्वपदार्थेऽन्यपदार्थे वा वृत्तिर्वेदितव्या ॥

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥२॥

= औपशयिभेदादीना भावाना द्विनवाष्टादशैक विंशति त्रिभेदा यथाक्रमम् भवन्ति ॥२॥

पदस्य  
यथाय  
= औपशयिभेदादीना भावाना द्वि-नव-अष्टादश-एकविंशति - त्रिभवा यथाक्रमम् भवन्ति

= औपशयिभेदादीनाम् ॥ भावानाम् ॥ = औपशयिक सायिक मिथ औदयिक पारिणामिक भावों के

द्विन- अष्टादश- एकविंशति- त्रिभेदाः ॥ = दो, नव, अठारह इकीस और तीन भेद

यथाक्रमम् \* भवन्ति ।

= अनुक्रम से होते हैं अर्थात् औपशयिक भाव दो प्रकार का है सायिक

भाव नव प्रकार का है मिथ भाषअठारह प्रकार का है औदयिक भाव

इकीस प्रकार का है और पारिणामिक भाव तीन प्रकार का है

पदत्रेद और विमत्स्यर्ष सहित द्वितीय सूत्र पर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्ति का शब्दश हिन्दी अनुवाद

द्वयादीनाम् ॥ संख्याशब्दानाम् ॥ कृतहन्धानाम् ॥ = या आदिक गिनती शब्दों का बनाहुआहन्द् सयास (कृतहन्धानांशुचि)

भेदशब्देन ॥ सह च स्वपर्ये ॥ अन्यपदार्थे ॥ = और भेद शब्द के सहित (=सह) स्वपदार्थ में अथवा अन्य पदार्थ में

वृत्ति ॥ वेदितव्या ॥

= वृत्ति जानना योग्य है भावार्थ दो नव अठारह आदि संख्याओं का हन्द्

= सयास और सूत्रमेंपदशब्दके स्वपदार्थ वृत्ति वा अन्यपदार्थवृत्ति जानना

॥ २ सूत्र का ३ वां ३ अक्षरपर आजाय और विगठ्य आजाय में पाठ और इत्य एकना है ।

पराविभासी श्रृंगरसाहाय प्रकीर्त कृप पदच्छेद और विपकरणर्व सङ्घिव सर्वायसिद्धि का शम्भवा दिन्वीकनुकाद अस्याय २ वृत्त ३  
 दशं नमोहस्य योभेदा सम्यक्त्वं, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्वमिति, आसा सप्तानां प्रकृतानामुपशमा-  
 दौपशमिकसम्यक्त्वम् ॥ अनादिमिथ्याहृष्टे भव्यस्य कर्मोदयापादितकालुष्ये सति कुतस्तदुपशम ।  
 काललब्ध्यादिनिमित्तवात् ॥ तत्र काललब्धियस्तावत्कर्मविष्ट आत्मा भव्यकालोर्द्धपुल्लपरिवर्तना-  
 ल्येञ्चशिष्टे प्रथमसम्यक्त्वग्रहणस्य योम्यो भवति,

दर्शनोपेस्य १। यप १। मेवा १। सम्यक्त्वम् ॥॥  
 मिथ्यात्वम् ॥॥ सम्यक् मिथ्यात्वम् ॥॥ इति ०  
 भासान् ॥॥ सप्तानाम् ॥॥ गृहीनाम् ॥॥ उपशमात् १।  
 औपशमिकम् ॥॥ सम्यक्त्वम् ॥॥ अनादि मिथ्याहृष्टा १।  
 पश्यस्य १। कर्म + उदय + आपादित + कालुष्ये, ॥१ सति ॥॥ =पश्यजीवके कर्मके उद्रेकरि कष्टुपचारोत्सवे  
 कृत ० वदु + उपशम १।  
 काललब्धि-आदि निमित्तवात् १।॥  
 यत्र काललब्धि १।। सावत् ०  
 कर्म + आविष्ट १।। आत्मा १। यव्य १।  
 काले १।। अर्द्धपुल्लपरिवर्तनाल्ये १।। अवशिष्ट १।  
 मयसम्यक्त्वग्रहणस्य १।॥। योम्य १।। मवति १

व्यर्थान्योदनीपके हीन येद सम्यग्दर्शन  
 मिथ्यादर्शन और सम्यग्मिथ्यादर्शन ऐसे  
 च्चान सात्मकवियों के उपशम से  
 औपशमिक सम्यग्दर्शन होता है (परत) अनादिमिथ्याहृष्टि  
 कर्मों कर (पूर्वोक्त सात गृहीतियोंका) उसके उपशम होता है  
 (उपर) काललब्धि आदिके कारण से  
 च्चवर्ती यम ( च्चावत् ) काललब्धि  
 च्चक्यकरि दनायायाया मव्यनीव (आत्मा) अर्थात् कर्मसहित मव्यनीव  
 अर्धसारकालमें अर्द्धपुल्ल परिवर्तनमात्र (काल) भवत्येव रहने पर  
 आविश्ले उपशम सम्यग्दर्शन के ग्रहणकरने योग्य होता है

(१) जिस कर्मके उपप से सम्यक्त्वग्रहणका पूर्व धाम तो हो वही परतु वह मल अर्थात् ये दोष उपप हो जाय वह सम्यक्त्वकृति है । जिस कर्मके  
 उपपसे सम्यग्दर्शनका सर्वथा धाम स्वल्प जीव के अस्तित्वमयान हो वह मिथ्यात्व कृति है । और जिस कर्मके उदयसे सम्यग्दर्शन के सर्वथा  
 धाम स्वल्प मिले हुए परिणाम हो किन्तुके कि न सम्यक्त्वग्रहण करके हीर न मिथ्यात्वग्रहण करके वह सम्यक्मिथ्यात्व ग्रहणित है वह जिस  
 परिणाम में वैमार्थिक भाग ही है ।

पदान्तिवर्तमानो गणरूपसहाय इकील कुल पदच्छेद और विषयस्यैव सरित सर्वोपसिद्धिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद अध्याय २ सूत्र ३ इति ॥ यद्येवमौपशमिकस्य कौ द्वी भेदावित्यत आह—

## ॥ सम्यक्त्वचारित्रे ॥३॥

व्याख्यातलक्षणे सम्यक्त्वचारित्रे ॥ औपशमिकत्व कथमिति चेदुच्यते । चारित्रमोहो द्विविध कथायवेदनीयोनो कथायवेदनीयश्चेति ॥ तत्र कथायवेदनीयस्य भेदा अनन्तानुबन्धिन क्रोधमान-मायालोभाश्चवारः,

इति ०  
 न्येसे (पयासस्य वा क्रमसे दो नव अठारह आदिक संख्याय औपशमिक  
 षाणिक मिश्र आदिकों पर लगाये जाते हैं)  
 यदि ० एवम् ० औपशमिकस्य १। अं १। दो १। भेदो १।  
 इति ० अन् ० आर १  
 नृसखिये कबते हैं कि  
 सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥

=सम्यक्त्व चारित्रे द्वौपशमिकौ भावो भवत ॥३॥  
 मन्तरत्पारिय ॥१॥ औपशमिकौ १। भावो १। भवत १। =सम्यक्त्व तथा चारिय दो औपशमिक भावों औपशमिक सम्यक्त्व औपशमिकचारित्रे  
 पदच्छेद और विभक्त्या मन्त्रित तृतीय सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद  
 व्याख्यातस्य ॥३॥ सम्यक्त्वचारित्रे ॥३॥  
 आरजिह्वन्त् ॥३॥ कृष्ण ० इति ० पत् ० उच्यते १  
 पारियार ॥ द्विविध १। कथायवेदनीय १।  
 नोपशमिकस्य १। ३० इति ०  
 मन्तरत्परेनीयस्य १। भेदा १। अनन्तानुबन्धि १।  
 मन्त्र मान माया नाया १। परमार १।  
 = औप-मान-माया-श्लोभ चार ॥

१। एव सूत्रका ईमा विगमर आर श्यतामर तापार्थो में पाठ और अर्थ एकता है (२) आनाको घने वा अधिक रूप होते उसे कथाय कहाते है  
 ३। आनासे गतिन माया एव कथाय नैव प्रकटता होती है पीछे चारित्र एतार्थ का उल्लेख होता है एउ किए सम्यक्त्वकी प्रकटता चारित्र के  
 पं ३। एउ के कारण गणरूपत्व चारित्र के सम रूप से सम्यक्त्व प्राप्त का पक्षिक प्रयोग किया गया है ॥

एतन्निवासी आकाशहास कर्त्तव्य इव पदच्छेद और विभक्तिकर्त्तव्यसिद्धि का शब्दशः विन्दीक्यनुवाद अर्थात् २ इति ३  
 दृशं नमोहम्य त्रयोमेदा सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, सम्यग्द्विध्यावमिति, आसां सप्तानां प्रकृतीनामुपशमा-  
 दौपशमिकसम्यक्त्वम् ॥ श्रनादिमिथ्यादृष्टेर्भव्यस्य कर्मोदयापादितकालुष्ये सति कुत्तस्तदुपशम ।  
 काललब्ध्यादिनिमित्तात् ॥ तत्र काललब्धस्तावत्कमाविष्ट आत्मा भव्यकालेर्ज्वपुद्गलपरिवर्तना-  
 ख्येऽत्रशिष्टे प्रथमसम्यक्त्वमहृत्शस्य योम्यां भवति,

दरान्मोहस्य १। यय १। मेदा १। सम्यक्त्वम् १॥  
 मिथ्यात्वम् १॥ सम्यक् मिथ्यात्वम् १॥ इति ०  
 आसात् १॥ सप्तानाम् १॥ प्रकृतीनाम् १॥ उपशमात् १।  
 औपशमिकम् १॥ सम्यक्त्वम् १॥ अनादि मिथ्यादृष्टे  
 भव्यस्य १। कर्म + उदय + आयादित + कालुष्ये, ॥ सति ॥ ॥ अयव्यन्वीबधे कर्मके उद्रेककारि कलुषवाहोरोसे  
 इय ० ख + उपशम १।  
 काललब्धि-आदि निमित्तात् १॥  
 यय काललब्धि १। तावत् ०  
 कर्म + आविष्ट १। आत्मा १। यय १।  
 काले । अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनाख्ये १। अविष्टि १।  
 प्रथमसम्यक्त्वमहृत्शस्य १॥ योम्यां १। भवति १

अर्थोन्मोहनीयके सीन वेद सम्यग्दर्शन  
 -मिथ्यादर्शन और सम्यक्मिथ्यादर्शन ऐसे  
 च्चन सातमकृतियों के उपशम से  
 -औपशमिक सम्यग्दर्शन होता है (फल) अनादिमिथ्यादृष्टि  
 -अयव्यन्वीबधे कर्मके उद्रेककारि कलुषवाहोरोसे  
 -ययों कर (पूर्वोक्त सात प्रकृतियोंका) उससे उपशम होता है  
 -उदर) काललब्धि आदिके कारण से  
 -वर्ता मयम ( न्यावत् ) काललब्धि  
 -कर्मकारि दयायागया भव्यनीव (=आत्मा) अर्थात् कर्मसाहित मध्यमीय  
 -संसारकाक्षमें अर्द्धपुद्गल परिवर्तननाम (काल) अवशेष रहने पर  
 -अविष्टि उपशम सम्यग्दर्शन के ग्रहणकरने योग्य होता है

(१) जिस कर्मके उदय से सम्यक्त्वगुणका मूल भाव तो हो वही पठतु बल मल अगाह के रूप उत्पन्न हो जाय यह सम्यक्त्वकृति है । जिस कर्मके  
 उपरसे सम्यग्दर्शनका उदय यात स्वरूप हीन के अस्तित्वप्रदान हो वह मिथ्यात्व प्रकृति है । और जिस कर्म के उदय से सम्यग्दर्शन के सर्वथा  
 पात स्वरूप मिले हुए परिणाम हो निकले कि न सम्यक्त्वकल्प अस्तित्व और न मिथ्यात्वकल्प अस्तित्व यह सम्यक्त्वमिथ्यात्व प्रकृति है यह मिथ  
 परिणाम भी वैसाविक भाव ही है ।

कान्तिप्राप्ति अरूपमप्राप्य वहील कृत पदच्छद आर विषयवत्पर्य सातित सवार्थसिद्धि का शब्दा शिन्दी अनुवाद अत्राप्य २ सूत्र २ नाधिके इति इयमेका काललब्धि ॥ अपरा कर्मस्थितिकाललब्धि । उत्कृष्टस्थितिकेषु कर्मसु जघन्यस्थितिकेषु च प्रथमसम्यक्त्वलाभो न भवति ॥ क्व तर्हि भवति ? अन्त कोटीकोटी सागरोपमस्थितिकेषु कर्मसु बन्धमापद्यमानेषु विशुद्धपरिणामवशात्सत्कर्मसु च ततः सत्येयसागरोपम सहनोनायामन्त कोटीकोटीसागरोपमस्थितौ स्यापितेषु प्रथमसम्यक्त्वयोग्यो भवति ॥

ननु कर्मिणः १ इति ० इत्यु ॥ एका ॥ काकलब्धिः ॥ न कि अपिक (संसार काल के अवशेष रहने) पर इस प्रकार एक काल लब्धि पर भ्रम ॥ इत्यस्थितिकाललब्धिः ॥

= दूसरी कर्मस्थिति काललब्धि अर्थात् यह काल लब्धि जिसका काय कर्मोंकी विशेषस्थिति पर निर्भर है वह कर्म स्थिति आगे करते हैं

उत्कृष्टस्थितिकेषु ॥ कर्मसु, ॥ अल्पस्थितिकेषु, ॥ अथ ० = उत्कर्षस्थितिवाले कर्मों में तथा (= व) अपत्यस्थिति वाले कर्मों में प्रथमसम्यक्त्वलाभ ॥ ननु भवति ।

प्रथमसम्यक्त्वलाभ ॥ ननु भवति ।

उत्कृष्ट स्थितिवाले वा अपत्य स्थितिवाले कर्मोंके विषयान्

तत्वे अथम सम्यक्त्वके प्राण की योग्यता नहीं होती ।

इति ० भवति । अन्तःकोटीकोटीसागरोपमस्थितिकेषु, ॥ अन्तःकोटीकोटी सागरोपमके भीतर २ (= अन्त) स्थितिक्षिये

कर्मसु, ॥ इत्यु ॥ आप्यमानसु, ॥

विशुद्धपरिणामप्राप्त १ । मत्कर्मसु, ॥ अन्तःकोटी ०

मत्प्रेयसागरोपमप्राप्त + उन्नायात् ० ॥

अन्तःकोटीकोटीसागरोपमस्थितौ ॥ स्यापितेषु ॥ ॥

प्रथमसम्यक्त्वलाभ ॥ भवति ।

= अन्तःकोटीकोटी सागरोपमस्थितिकेषु तत् जानेपर (स्यापितेषु)

= अथम सम्यक्त्व के (प्राण) प्राण (जीव) होता है

(आप्य) आप्यकर्मके पिना प्रकृत्याप्यसे अन्तःकोटीकोटीसागरोपमकर्म



प्रातिपत्ती अणुरासाय बहीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थे सरित् सचर्यासिद्धिका शम्भुश रिन्वीभनुषाद अभ्याय २ सूत्र ४

## ॥ ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥ ४ ॥

चशब्द सम्यक्चचारिबानुकर्षणार्थ ॥ ज्ञानात्रयास्यात्यन्तज्ञयात्केवलज्ञानज्ञायिक तथा केवलदर्शनम् दानान्तरायस्यात्य तज्यादनुन्तप्राणिगणानुग्रहकर दायिकमभयदानम्॥लामान्तरो यस्यशेषस्य निरासात्परित्यक्त—

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥ ४ ॥

= ज्ञानदर्शनदानलाभपागोपभोगवीर्याणि सम्यक्त्वचारित्रे च

= ज्ञान दर्शन-दान-लाभ-पाग-उपभोग-वीर्याणि, सम्यक्त्वं-चारित्रे च ते एत द्वायिकभावस्य नव भेदाः भवन्ति ज्ञान-दर्शन-  
 = द्वायिक ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान, द्वायिकदर्शन अर्थात् केवलदर्शन,  
 गन-नाम-म ग-उपभोग-वीर्याणि ॥ ४ ॥ च  
 = द्वायिकदर्शन, द्वायिकलाभ, द्वायिकभोग, द्वायिकउपयोग, द्वायिकवीर्य और  
 मन्वयत्-चारित्र्ये ॥ तः एतान्नायिकभावस्य १।  
 = द्वायिक सम्यक्त्व, द्वायिक चारित्र, य द्वायिकभावके  
 नव भेदाः भवन्ति ।  
 = नव भेद होते हैं । ये ही नव भेदोंके निम्न ज्ञायिक भाव हैं ।  
 पदुद्देशः। सम्यक्त्वचारित्र-अनुकुर्यण-अर्थः।  
 = (सूत्रमें) अथवा सम्यक्दर्शन तथा (सम्यक्) चारित्र के प्रत्येक क्रिये हैं ।  
 ज्ञान-आरण्यम् ॥ अत्यन्त-वृथात् ॥ केवलज्ञानम् ॥ १।  
 = ज्ञानावरणीयकर्म के अविशुध्य नाशसे केवलज्ञान  
 द्वायिकम् ॥ तथा ० केवलदर्शनम् ॥ १।  
 = द्वायिक होता है दर्शनावरणीयकर्म के अत्यन्तनाशसे केवलदर्शन (ज्ञायिक होता है)

गन-अन्तरायस्य ॥ अत्यन्त-वृथात् ॥ अनन्तप्राणिगण-दान अन्तराय के अविशुध्य नाश ( होने ) से अनन्तजीवोंका  
 अनुग्रहस्य ॥ १। लायिकम् ॥ १।  
 = उपकार करनेवाला लायिक अभयदान होता है ।  
 लाभ-अन्तरायस्य ॥ अविशुध्यम् ॥ निरासात् ॥ परित्यक्त-लाभ अन्तराय नामा कर्मके सम्पूर्ण अभावसे किसी प्रकार से नहिं (परित्यक्त)

( १ ) इतिहास्य और विगन्त बाला सम्प्रदायो में इस सूत्रका पाठ और शब्द एकठा है ॥





प्राणिनामी मारुतासाय शीलकव पश्येद मोर विपत्त्यर्थं सतिव सर्वाथसिद्धिं शयन्त्या रिन्दीमनुष्यं मध्याय २ धृष ४  
 पूर्वोक्तानां सप्तानां प्रकृतीनामत्यन्तव्यात्व्यायिक सम्यक्त्वम् ॥ चारित्रमपि तथा ॥ यदि ज्ञायिकदा  
 नादिभावकृतमभयदानादि, सिद्धेष्वपि तदप्रसङ्ग । नैपदाय । शरीरनामतोर्थकरनामकर्मोदयाद्यपे-  
 तेषा तत्र वृत्ति । केवलज्ञानरूपेणानन्तवीर्यवृत्तिवत् ॥ परमानन्तवीर्याव्याबाधसुखरूपेणैव  
 य उक्त ज्ञायोपशमिको भानोऽष्टादशविकल्पस्तद्भूतनिरूपणार्थमाह—

श्रोतृत्वानाम् ॥ ममानाम् ॥ मठोनाम् ॥ मस्यन्त्वज्यात् ॥ = पठिल कठी हुई (मोहनीयरूप की) सावप्रकृतियों का अग्रोप नाशसे  
 चापिभय ॥ मस्यस्तरम् ॥ चारित्र्यम् ॥ अपि० नपाः = ज्ञायिकसम्यग्दर्शनवाताहै वैसेही (चारित्र्यमाहकमयावसे) ज्ञायिकचारित्र्यभीरे  
 सिद्धम् । अपि० श्द-पसङ्गो न एव मं दोषः ॥ = (परल)मा ज्ञायिक दानोदिकमावकरि क्रियेदुप अमयदानादिक है।  
 प्रीतिनामोर्थकरनामस्य उदयादिस्यज्जत्यात् । त्व-अमपम् ॥ = वा सिद्धोंमें भी उन(अमयदानादिक)का संयोग है (उपर)एव रूपण नरी है  
 ताम् ॥ तद० अभाय । त्व-अमपम् ॥ = (आरवनिके)शरीरनामानामकर्म तीर्थकरनामकर्म क उद्रेकविवक्षा से है  
 अप्य० तद्वि० ताम् ॥ सिद्धम् । हृदि ॥ = तिन(सिद्धानिके)उन(सर्व)क अभावानपर उन(अमयदानादिक)मात्रों की)सिद्धोंमें प्रवृत्तिवास्तित्व  
 एव० मनन्तवीर्य-अभ्यासाय-सुखरूपेण ॥ इत्यनग्रानरूपेण ॥ = (पर)मठके अनन्तवार्य अभ्यासाय आनन्दस्वरूपसे  
 इत्यनग्रानरूपेण ॥ मनन्तवीर्यं द्वाषवत् ॥ = (उपर)मठके अनन्तवार्यं प्रवृत्तिके सद्यः(सिद्धानिके)अमयदानादिकमात्रों  
 २ । तिक । ज्ञायोपशमिकम् ॥ माय । अष्टादशविकल्पः ॥ = जो है। ज्ञायोपशमिक माय अठारह प्रकार  
 तदुभयद-निरवगणायम् ॥ माय ॥ = करने के लिए(आचार्य) ॥ (एकमें)अठारह है कि

पदानिभासी नगरसहाय कालि कृत पदच्छेद और विभात्यव सरित सर्वायसिद्धिका श्रव्यरा रिन्ती मनुवाव अध्याय २ सूत्र ५

# ज्ञानानुदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥ ५ ॥

ज्ञानानुदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥ ५ ॥

पद-छेदः १ ध्यरपत्तुस्त्रिपञ्चभेदाः। यथाक्रमम् सम्यक्त्वचारित्र संयमासंयमाः (इत्येतेष्वंशव्युत्पद्यमानेषु चतुस्त्रिपञ्चभेदाः) ॥ ५ ॥  
ज्ञान-अज्ञान-दर्शन-अज्ञान-दर्शन-संयमासंयमाः ॥ ५ ॥  
संयमासंयमाः ॥ ५ ॥  
यथाक्रमम् सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाः ॥ ५ ॥  
संयमासंयमाः ॥ ५ ॥  
संयमासंयमाः ॥ ५ ॥

ज्ञान-अज्ञान-दर्शन-अज्ञान-दर्शन-संयमासंयमाः ॥ ५ ॥  
संयमासंयमाः ॥ ५ ॥  
यथाक्रमम् सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाः ॥ ५ ॥  
संयमासंयमाः ॥ ५ ॥  
संयमासंयमाः ॥ ५ ॥

ज्ञानानुदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥ ५ ॥  
संयमासंयमाः ॥ ५ ॥  
यथाक्रमम् सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाः ॥ ५ ॥  
संयमासंयमाः ॥ ५ ॥  
संयमासंयमाः ॥ ५ ॥

ज्ञानानुदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥ ५ ॥  
संयमासंयमाः ॥ ५ ॥  
यथाक्रमम् सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाः ॥ ५ ॥  
संयमासंयमाः ॥ ५ ॥  
संयमासंयमाः ॥ ५ ॥







एतन्निवासी जगत्सहाय परीक्षकवत् पदच्छेद और विपत्त्यर्थ सशिव सार्वभौमिच्छिका शक्यताः हिन्वीभुजुवात् अध्याय २ सूत्र ६  
 यथाक्रममित्यनुवर्तते, तेनाभिसम्बन्धात् । गतिश्रुतुर्मेदा नरकगतिस्तिर्यग्गतिर्मनुष्यगति-  
 र्देवगतिरिति ॥ तत्र नरकगतिनामकर्मोदयाञ्चारको भावो भवतीति नरकगतिरौदयिकी । एवमि-  
 तरत्रापि ॥ कपायश्रुतुर्मेदं, शोथो मानो प्राया लोमइति ॥ तत्र शोधनिर्वर्तनस्य कर्मण उदयात्कोष  
 औदयिक । एवमितरत्रापि ॥ लिङ्ग त्रिमैदं, स्त्रीवेदं, पुवेदो नपु सकवेद इति ॥ स्त्रीवेदकर्मण उदया  
 स्त्रीवेदं औदयिक । एवमितरत्रापि ॥ मित्यादर्शनमेकमेदं,

बुधदुषादः—पयाकमम् ॥ इति ॥ अनुवर्तते । = (पयाकमम्) ऐसी अदृष्टि (इस अध्यायके दूसरे सूत्रसे) आती है ॥

तनः । अभिसम्बन्धात् ॥ गतिः ॥ बहुरोदयः ॥ = तिस (अदृष्टि) द्वारा संयोगसे गति चार प्रकार है ॥

नरकगतिः ॥ तिर्यग्गतिः ॥ मनुष्यगतिः ॥ देवगतिः ॥ = नरकगति—तिर्यग्गति—नरगति—देवगति

इति ॥ नपु नरकगतिनामकम् उच्यते । नारकाः ॥ = ऐसे है वहाँ नरकगतिनामा नामकर्म के उदयसे नरकका

भावः । भवति । इति नरकगति—औदयिकी ॥ एषम् ॥ = पाष होवा है ऐसे नरकगति नाम औदयिक पाष है

इतरत्र ॥ अयिककपायः । बहुरो—भेदाः ॥ = ऐसे अन्यत्र भी है (तिर्यग्गति इत्यादि) । कपाय चार वेद रूप है

कायः । मानः । प्रायाः । लोपाः । इति ॥

तत्र ॥ औपनिषद्वर्तनस्य ॥ ॥ कर्षणाः ॥ उच्यते ।

कायः । औदयिकः । एषम् ॥ इतरत्र ॥ अयिक ॥

श्रुतुर्त्रिमैदम् ॥ स्त्रीवेदः । पुवेदः । नपुसकवेदः । इति ॥ लिङ्ग तीनवेद स्त्रीवेद पुवेद नपुसकवेद इस प्रकार है

स्त्रीवेदकर्मणाः ॥ उच्यते । औदयिकः । औदयिकी ॥ औदयिकी ॥ = स्त्रीवेद के उदयसे औदयिक पाष है

एषम् ॥ इतरत्र ॥ अयिक ॥ = ऐसे अन्यत्र भी है (अर्थात् बुरूपवेद और नपुसक वेद कर्मों के उदयसे

कपायान्सार बुरूप वेद और नपुसक वेद औदयिक पाष है) ॥

मित्यादर्शनम् ॥ एषकवेदम् ॥ ॥











पुत्रादिनासो ऽग्निरुत्सहाय इहीह कुव पदच्छेद और विषस्त्वर्थ सङ्घित सर्वायसिद्धि का शुद्ध्याः सिद्धीमनुबाध अध्याय २ सूत्र ६ और ७ तदभावादयोगेकवैल्यलोस्य इति निश्चीयते ॥ य पारिणामिको भावस्त्रिमेद् उक्तस्तद्देदस्वरूपप्र तिपादनार्थमाह—

॥ जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥ ७ ॥

जीवत्व भव्यत्वमभव्यत्वमिति त्रयो भावाः परिणामिकत्र

तद् अभावाद्ः। अयोगेक्षेवती ।।

अनस्य । प्रतिक्रिधीयते यः। पारिणामिक भावः

त्रिमेद् । त्रिक । तद्—येदस्वरूपप्रतिपादनार्थम् ॥ आह । =वीन प्रकार का है उसके येद और स्वरूप के लोपके अर्थ कहते हैं कि

=(और)उस (योग)ऊन दोन से अयोग क्षेपली (बौद्धर्वा गुणस्थानवर्ची)

=उद्देश्या ररित है निम्नपक्षीभिर् है जो पारिणामिक भाव

॥ जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥ ७ ॥

मूर्थाप —जीवभव्याभव्यत्वानि ।। ७ ॥

=जीवत्व भव्यत्व अमव्यत्व मी(व) पारिणामिक भाव नीवके है अर्थात्, ये वीन भाव

मी अन्यद्रव्यसे असाधारण जीवक पारिणामिक भाव है आह कर्ष की अपेक्षा नहीं द्रव्य

का आत्म स्वरूप ही, आत्म परिणाम ही जिसको निमित्त हो सो पारिणामिक भाव है

मि० त्रय । भावाः। पारिणामिकाः।।

=उस प्रकार वीन भाव पारिणामिक है

आवभव्यामपरवा। निव ( समाप्य० अध्याय २ सूत्र ७ ) दोनो पठोके मिलानेसे जान पड़ता है कि इस उक्त्यां सूत्रमें हमारे यहांके सूत्रसे

"आदि" शब्द अधिक है परंतु इस पर भी वालो आकाशों में कर्ष मेव नहीं है क्योंकि समाप्य० के पाठ में आदि शब्दकि जीवके सामान्य वा

साधने साधारण पारिणामिक भावोंका प्रमाण च शब्द कति किया है । अलाप्याण्य पारिणामिक भाव वा अलामान्य पारिणामिक भाव हमारे यहां

बिद्युत पारिणामिक भाव जीव के वे हैं आ केवल जीव में ही पाए जावे अन्य किसी द्रव्य में न पाए जावे और वे केवल जीव ही जीवत्व मव्यत्व

आप्यत्व है अधिक नहीं है । ये तीनों भाव अकारिकात्त सिद्ध हैं और साधारण पारिणामिकभाव वा सामान्य पारिणामिक भाव अथवा

विद्युत ररित पारिणामिक भाव जो है जो जीव में होता है और केवल अल्पद्रव्य असे परम द्रव्य अर्थात् द्रव्य एतदधिक में भी होने हैं वे सामान्य



एगनिचामी नागरुपसराय इकीलकठ पदज्येद और निरुपत्यर्य सरिष सर्वायसिद्धि का शब्दशः शिल्पीभजुनाद अध्याय २ सूत्र ७  
 असाधारणा जीवस्य भावा परिणामिकास्त्रय एव ॥ अस्तित्वादय पुनर्जीवाजीवविषयत्वा-  
 रसाधारणा इति चशब्देन पृथग्गृह्यन्ते ॥ आह औपशमिकादिभावानुपपत्तिरमूर्तत्वाद्वा मनः । कर्मव-  
 न्धापेक्षा हि ते भावा । न चामूर्तेः कर्मणा बन्धो युज्यत इति ॥ तत्र, अनेकान्तात् ॥

असाधारणाः ।।भीरस्यः।। भावाः ।।

परिणामिकाः ।। त्रयः ।। एव ।। अस्तित्वादयः ।। पुनर् = पारिणामिक हीन ही हैं । यहुरि (= पुनर्) अस्त्वित्, आदिक् (दशम्याव)

वीर — मनीष- विरपत्तात् ।। साधारणाः ।। = चेतन और बड़ विषे होनेसे साधारण हैं (अर्थात् जीवसे और अनोपसर्गमीपापगतसे हैं)

इति चशब्देन, नपयकं प्ररत्नत्वात् ।। आह ।।

औपशमिकादिभावानुपपत्तिः ।। अमूर्तत्वात् ।। आत्मनः ।। औपशमिक आदियोंकी चेतनके अमूर्तक होन (के कारण) से सिद्धिनीरोतीरे

एव च — अपेक्षा ।। रि०

न ।। भावाः ।। न० प० अमूर्तेः ।।

एव साधु ।। आह ।। युज्यते ।। इति चकृद्

न० अनेकान्तात् ।।

= (यौक्ति) असमान या जो औरमैनपापआवे सो जीवके भाव

= (यौक्ति) असमान या जो औरमैनपापआवे सो जीवके भाव

= (यौक्ति) असमान या जो औरमैनपापआवे सो जीवके भाव

= (यौक्ति) असमान या जो औरमैनपापआवे सो जीवके भाव

= (यौक्ति) असमान या जो औरमैनपापआवे सो जीवके भाव

= (यौक्ति) असमान या जो औरमैनपापआवे सो जीवके भाव

= (यौक्ति) असमान या जो औरमैनपापआवे सो जीवके भाव

= (यौक्ति) असमान या जो औरमैनपापआवे सो जीवके भाव

= (यौक्ति) असमान या जो औरमैनपापआवे सो जीवके भाव

प्रतिषेधं यद्यत्वं प्रत्ययं प्रनेधायामगुरुकृत्युत्वं नित्यमेतेश्च मूलत्वममूर्तत्वं चेतनत्वमेतेश्च वैते इत्यभावात् ।।

(१) त्रिभ शक्तिने निमित्तस्य प्रत्यय का मी भाग न हो उसका अस्तित्व गुण कहते हैं । इत्य त्रिभ शक्तिने निमित्तसे प्रत्ययमें अपरिणामि हो उस  
 का यद्यत्वं गुण प्ररत है उसे—यहका अपरिणामि अस्तित्व है । इत्य त्रिभ शक्तिने निमित्तसे प्रत्यय सबका एकता न रहे और त्रिभकी पर्याय  
 (प्रत्यय) सार पररतनी परती प्रत्यय है । इत्य त्रिभ शक्तिने निमित्तसे प्रत्यय किसी न किसी के आनका विषय हो उसको—प्रत्ययत्व गण कहते हैं  
 इत्य त्रिभ शक्तिने निमित्तसे प्रत्ययको प्रत्यय विर रह अपरिणामि एक प्रत्यय दूसरे प्रत्ययक न परिणामि मीर एक गुण दूसरे गणक न परिणामि  
 तथा एक प्रत्यय प्रत्यय का अस्तित्व गुण निरर कर सुरे २ न हा आवे उसको अंगकतसु गुण कहते हैं । इत्य त्रिभ शक्तिने निमित्तसे प्रत्ययका कुण  
 न प्रत्यय कापर प्रत्यय हा उन का प्रत्ययत्व गण कहते हैं ।।

(२) प्रत्यय = हाकारण (२) क्रमशः = निररकारणता या अमूर्तता — (३) चेतनता = चेतनता = (१०) अचेतनत्वम् = अचेतनता अपरका अर्थता न

एगनिगासी गाल्पसराय फकीस कृप पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वावसिद्धि का शब्दशः हिन्दी अनुवाद अध्याय २ पृष्ठ ६

## ॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ६ ॥

स उपयोगो द्विविध । ज्ञानोपयोगो दर्शनोपयोगश्चेति ॥ ज्ञानोपयोगोऽष्टभेदः । मतिज्ञानं, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञानं, केवलज्ञान, मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, विभङ्गज्ञान चेति ॥ दर्शनोपयोगश्चतुर्विध । चक्षुर्दर्शन अचक्षुर्दर्शनं, अवधिदर्शनं, केवलदर्शनं चेति ॥ तयो कथ भेद ? । साकारानाकारभेदात् । साकार ज्ञानमनाकारं दर्शनमिति ॥ तच्छब्दस्थेषु क्रमेण वर्तते ।

## ॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ६ ॥

सार्थः—सः॥द्विविधः॥अष्टचतुर्भेदः॥  
 उपचतुर्भेदः—सः॥दर्शनोपयोगः॥द्विविधः॥ज्ञान-उपयोगः॥  
 दर्शन-उपयोगः । साकारज्ञान-उपयोगः ।  
 अष्टभेदः । मतिज्ञानम् ॥ श्रुतज्ञानम् ॥  
 अविज्ञानम् ॥ मन पर्ययज्ञानम् ॥ केवलज्ञानम् ॥  
 मतिज्ञानम् ॥ श्रुतज्ञानम् ॥ विभङ्गज्ञानम् ॥  
 दर्शन-उपयोगः । चक्षुर्दर्शनम् ॥  
 अचक्षुर्दर्शनम् ॥ अवधिदर्शनम् ॥ केवलदर्शनम् ॥  
 इति तयोः ॥ कथम् भेदः ?  
 साकार-मनाकार भेदात् । साकारम् ॥ ज्ञानम् ॥  
 अनाकारम् ॥ दर्शनम् ॥ इति ॥  
 तद् ॥ गाल्पस्येषु ॥ क्रमेण ॥ वर्तते ।

—स (उपयोग) दो प्रकार है (वनसे) एक भावमकार है दूसरा धारणकार है  
 —एक वैतन्यस्वभाव दो प्रकार है ज्ञान उपयोग  
 —और (त्य) दर्शन उपयोग इस प्रकार है ज्ञान उपयोग  
 —साठ प्रकार है (अर्थात्) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान,  
 —अविज्ञान, मन पर्ययज्ञान, केवलज्ञान, (वना)  
 —मतिज्ञान—पवित्रज्ञान वा कुमति, श्रुतज्ञान वा कुशुतऔर विपयज्ञान वा कुमवि (समकार है  
 —दर्शन उपयोग बार है (अर्थात्) चक्षुर्दर्शन  
 —अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन, और केवलदर्शन  
 —स प्रकार हैं इन दोनों (ज्ञान तथा दर्शनोपयोग) में कैसे भेद है  
 —(उपर) साकार और निराकार के भेदसे (अर्थात्) साकार सहित ज्ञान है  
 —निराकारदर्शन है (समकार है (अर्थात्) दर्शनसहायभाकाररहितका प्रत्ये  
 —ये (ज्ञान दर्शन)सप्तम् असर्वसौषोमं क्रम (अप्युद्दर्शनपीये ज्ञान) से वर्तते है

पानिमी गल्पमहाय बरील कृत पद्यद्वय और विपक्षपर्यं सारित सार्यसिद्धि का शब्दा र्त्विनी अनुवाद अध्याय २ सूत्र ८

॥ उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥

उभयनिमित्तशब्दुत्पद्यमानश्चेतन्यानुविधायी परिणाम उपयोग ॥ तेन बन्ध प्रत्येकत्वे सत्यप्यात्मा लक्ष्यते । सुवर्णरजतयोर्बन्ध प्रत्येकत्वे सत्यपि वर्णादिभेदवत् ॥ तज्जेददर्शनार्थमाह सूत्रार्थ —

उपयोगः! =वैतन्यकसाय रहन वाला आत्माके परिणाम का नाम उपयोग है। (बहूपयोग)  
 शीवराःलक्षणम्!।।प्रबन्धि T=शीवका लक्षण है अर्थात् शिव अर्थकर दोनों प्रकारके कारणोंका यथासंभव सम्बन्धान रहनपर वैतन्यगुणके सापररनेवाला जोकोई आत्माका परिणाम है उसका नाम उपयोग है

पदत्रेद और विभक्त्यर्थ सहित इस श्राठवे सूत्रपर संस्कृत सत्रार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिन्दी अनुवाद उप-निमित्तशब्द, । उत्पत्पान !। =शानो(शाम आश्रयन्तर) कारणोंके आश्रयसे (वैतन्यक) उपमा तन!।न्यस्,।नि०एकत्वे!।। सति,।।अभि०आत्मा!। =उदाहरमा वैतन्य(ही)का परिणाम( सो ) उपयोग है

अपि०शब्दादिपदवत् शब्दमदर्थान्-मर्थम् !।।आह T =तिस(लक्षण)करि रूप अपेक्षा(श्रीबमौर रूप)से एककारोनेपर भी वैतन्य । १) इस गुणसे इस प्रकारके प्रथम सूत्रसे जोकस्य शब्दकी अनुपपत्ति मिली है। (२) स्वयंकोणवदुत्पत्त्यादिहेतुलक्षणमुच्यते प्यनिर्दिष्टशब्दुत्पत्त्यादिपदुः । =परस्पर मिलेहुसे पदार्थोंसे आ इनके भेद-काल करानेमें हटु है वा पदकान कालेबाका कारण है तत्र बानसे आ कारण है। उमका नाम लक्षण है। जिस प्रकार अग्नि उच्य है यहाँ पर पदार्थ समूहसे अग्निको उभा करनेबाका उच्यत्वही इत। व लक्षण है ( ३ ) इस सूत्रका पाठ और अर्थ इगेमभर और विगन्वर आकाशार्थमे एकसा है

( ४ ) उपयोग = आत्माका वैतन्यरूपमात्र, आत्माका परिणाम आत्माको परिचित आत्माका परिक्रमण है





पञ्चानामि जगरूपमराय बहोला कृण पदच्छद और विभक्त्यर्थे सारित सर्वाथसिद्धि का शब्दयं हिन्दी अनुवाद अरण्याय २ सूत्र ८

## ॥ उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥

उभयनिमित्तवशादुत्पथमानश्चेतन्यानुविधायी परिणाम उपयोग ॥ तेन बन्ध प्रत्येकत्वे सत्यप्यात्मा लक्ष्यते । सुवर्णरजतयोर्वन्ध प्रत्येकत्वे सत्यपि वर्णादिभेदवत् ॥ तत्रेददर्थनार्थमाह

सूत्रम्—<sup>१</sup>उपयोगोलक्षणम् ॥ ८ ॥ = उपयोग ( नीरस्य ) लक्षणम् ( यथति )

उपयोगः<sup>२</sup> । = चैतन्यरूपाय रजन बोले आत्माके परिणाम का नाम उपयोग है । ( इत्युपयोग )  
नीरस्योलक्षणम् ॥ यथति । = नीरसका लक्षण है अर्थात् नाम अर्थवत्त दोनों प्रकारके कारणोंका

यथासंभव सन्निधान रहनपर चैतन्यपणके साधारणनेवाला जोकोई  
आत्माका परिणाम है उसका नाम उपयोग है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थं सहित इस आठवे सूत्रपर संस्कृत सर्वाथसिद्धिवृत्तिका शब्दयं हिन्दी अनुवाद  
उभय-निमित्तवशात्, । उत्पथमानः ।

पौन्य-अनुविधायीपरिणामः । उपयोगः ।

ततः । रस्यम्, । निमित्तम् ॥ सति, ॥ अविः । आत्माः ।

सत्यम् । सुवर्णरजतयोर्वन्धः । रस्यम् । इति एकत्वः ॥ सति, ॥ अविः । आत्माः ।  
अपि । वर्णादिभेदवत् । तदुत्पथमान-अर्थम् ॥ ॥ त्वारात् ।

( १ ) एव गुणम् एव इतरे अर्थायके प्रथम सूत्रसे उचित्य शब्दकी अनुवृत्ति जाती है । ( २ ) स्वतिसोणवस्तुप्यावृत्तिहेतुनेकत्वमुच्यते  
एतन्निमित्तवशात्-उत्पथमानः । = परस्पर मिलेहुये पदार्थोंमें आ इनके भेद-बाध करनेमें हेतु है वा पदबाध करनेकेबाधा कारण है  
उत्पथम्, । अत्यन्तम् ।

उभय-उभयोंमें आ कारण है । उत्पथमानः । उत्पथमानः । उत्पथमानः । उत्पथमानः । उत्पथमानः ।

ततः । रस्यम् । निमित्तम् । सति, ॥ अविः । आत्माः ।  
( ४ ) उपयोग = कारणका साधारणनेवाला परिणाम आत्माकी परिणाम, आत्माका परिणामम् ।

पुननिरासी नगल्पमाप वहील कृप पदच्छद और विषयन्तर्य सरित सर्वापिसिद्धि का शक्यः हिन्दी अनुवाद अप्याय २ सूत्र ६

## ॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ६ ॥

स उपयोगो द्विविध । ज्ञानोपयोगो दर्शनोपयोगश्चेति ॥ ज्ञानोपयोगोऽष्टभेदः । मतिज्ञानं, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञानं, केवलज्ञान, मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, विभङ्गज्ञान चेति ॥ दर्शनोपयोगश्चतुर्विध । चतुर्दर्शन अचतुर्दर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शनं चेति ॥ तयो कथ भेदः ? साकारानाकारभेदात् । साकार ज्ञानमनाकारदर्शनमिति ॥ तच्छब्दस्थेषु क्रमेण वर्तते ।

### ॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ६ ॥

- सुमार्थः—सः॥द्विविधः॥अष्टचतुर्भेदः ।  
 हृत्पुत्रादः—सः॥उपयोगः॥द्विविधः॥ज्ञान-उपयोगः ।  
 दर्शन-उपयोगः । पञ्चविक्रमज्ञान-उपयोगः ।  
 अष्टभेदः । पतिज्ञानम् ॥ ॥ भुक्तज्ञानम् ॥ ॥  
 अस्मिन्नाकारभेदात् ॥ ॥ मन पर्ययज्ञानम् ॥ ॥ केवलज्ञानम् ॥ ॥  
 पतिज्ञानम् ॥ ॥ भुक्तज्ञानम् ॥ ॥ चित्तज्ञानम् ॥ ॥ चित्तज्ञानम् ॥ ॥  
 दर्शन-उपयोगः । चतुर्विधः । चतुर्दर्शनम् ॥ ॥  
 अचतुर्दर्शनम् ॥ ॥ अवधिदर्शनम् ॥ ॥ केवलदर्शनम् ॥ ॥  
 इति तयोः ॥ ॥ अष्टभेदः ॥ ॥  
 साकार-अनाकार भेदात् । साकारम् ॥ ॥ ज्ञानम् ॥ ॥  
 अनाकारम् ॥ ॥ दर्शनम् ॥ ॥ इति ॥  
 तद् ॥ ॥ अष्टभेदः ॥ ॥ अष्टभेदः ॥ ॥ इति ॥
- =अ (उपयोग) दो प्रकार है (जन्मसे) एक आठप्रकार है दूसरा चारप्रकार है  
 =अर पैतृन्यस्वभाव दो प्रकार है ज्ञान उपयोग  
 =और (अच) दर्शन उपयोग इस प्रकार है ज्ञान उपयोग  
 =आठ प्रकार है (अर्थात्) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान,  
 =अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, (तया)  
 =मतिज्ञान, श्रुतज्ञान वा कुमति, श्रुतज्ञान वा कुभुतऔर विभंगज्ञान वा कुप्रवि इसप्रकार है  
 =दर्शन उपयोग चार है (अर्थात्) चतुर्दर्शन  
 =अचतुर्दर्शन, अवधिदर्शन, और केवलदर्शन  
 =इस प्रकार है इन दोनों (ज्ञान तथा दर्शनउपयोग) में कुंसे भेद है  
 = (उपर) साकार और निराकार के भेदसे (अर्थात्) आकार सरित ज्ञान है  
 = निराकारदर्शन है इसप्रकारों (अर्थात्) दर्शनसंवाप्याकाररहितका प्रणय है  
 = ज्ञान दर्शन) अस्तस्य अस्तयस्वीचीर्षो क्रम (अचतुर्दर्शनपीके ज्ञान) से वर्तते है

एतानिवासी नगरसमाप्तपद पदच्छेद और विभवस्वर्य सहित सर्वोपसिद्धिका शुभ्यश शिन्दीभनुवाद अर्थात् २ सूत्र ६, १०  
निरात्ररूपेण युगपत् । पूर्वकालभाविनोऽपि दर्शनात् ॥ ज्ञानस्य प्रागुपन्यासोऽभ्यहितत्वात् ॥  
सम्यग्ज्ञानप्रशान्तात्पूर्वपचविधो ज्ञानोपयोगो व्याख्यात ॥ इह पुनरुपयोगग्रहणाद्विपर्ययोऽपि गृह्यते  
इत्यष्टमिध उच्यते ॥ यथोक्तेनानेनाभिहितपरिणामेन सर्वात्मसाधारणेनोपयोगेन ये उपलब्धिता

गिनस्ते द्विविधा — ॥ ससारिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥

नारण्ये ।

पुनरुपपूर्वकालभाविनः । अपि उच्यते ॥  
ज्ञानस्य ॥ नारु उपयाम । अम्योरेवत्वात् ॥

सम्यग्ज्ञान प्रकरणत् ॥

एवम् ॥ पचविर । ज्ञानरुपयाम । व्याख्यात ।

॥ इतु । दरयागप्रदणत् ॥ विषयः । अपि ॥

शुद्धता निःसमष्टिः । उच्यते ।

मनन । अभिहित-परिणामेन ।

नारायणपारण्येनोपयोगेन उपयामेन ।

य । उच्यते । यागिन । द्विविधाः ।

= कर्मरूपभावरूप रहित सर्वज्ञबीजोमे अर्थात् केवलज्ञानिनियोमे

= (ज्ञान-दर्शन) प्रकृष्टात्ममे बोते हैं ॥ प्रथम होनेवाले दर्शनापयोगसे भी

= (सूत्रमे) ज्ञानका पहिले कहना नमानपना अथवा भ्रष्टाके कारणसे हे

अर्थात् ज्ञान नमान हे इससे इस सूत्रमे दर्शनसे पहिले ज्ञानको कहा हे

= सम्यग्ज्ञानके विषय में वा सम्यग्ज्ञानके प्रकरणमे

= पहिले (प्रथम अर्थात् सूत्र ६मे) पाँच प्रकार ज्ञान उपयोग कहा गया हे

= पचविर यहाँ (= ६) उपयोग शुद्ध ज्ञानसे विपर्ययज्ञान भी

= प्रत्यक्षिया गया हे इस प्रकार (ज्ञानोपयोग) आठ प्रकार कहा गया हे ।

= (अथ दर्शनासूत्रकी उरयानिका कहत हे कि) प्रवृत्तिया हे परिणाम इतने

= (और) सर्वभोत्सामे साधारण (समान) यथाक जो उपयोग हे ताकरि

= उपलब्धित य योगी (= उपयोगी जो आत्मा हे) हे दो प्रकार हे अर्थात्

आठवां नववां दो सूत्रमे कथित यह परिणाम वा उपयोग वा समस्तबीजोमे

साधारणतः दिलाया गया हे त त्रीन भिन्न कथित सूत्रानुसार दो प्रकार हे

॥ "ससारिणो मुक्ताश्च" ॥ १० ॥ = ये भीवा संसारिणो मुक्ताश्च द्विविधाः भवन्ति

न । नीरा । संसारिणः । मुक्ताः । च द्विविधाः भवन्ति = त्रीन संसारी और (=) मुक्त दो प्रकार होते हैं । अर्थात् जो भी कर्म करि रहे

(१) शेषात्तर और शेषात्तर दोनो मन्त्ररूपो मे एव गुरुका पाठ और अर्थ एकसा ही ॥ (२) अणुपण- (मस्त) 'संसारिणो मुक्ताश्च' यथैव



पदानिकामो नगरसप्तमप इतीहोतुत परस्वेद मोर विभक्त्यर्थे सहित सर्वोपसिद्धिका शब्दशः शिवीभनुनाद अध्याय २ सूत्र ६, १०  
 निरापरोपु युगपत् । पूर्वकालभाविनोऽपि दर्शनात् ॥ ज्ञानस्य प्रागुपन्यासोऽभ्यहितत्वात् ॥  
 सम्यग्ज्ञानप्रसूयात्पूर्वपचिविधो ज्ञानोपयोगो व्याख्यात ॥ इह पुनरुपयोगग्रहणाद्विपर्ययोऽपि गृह्यते  
 इत्यश्रमिच उच्यते ॥ यथोक्तेननेनाभिहितपरिणामेन सर्वात्मसाधारणेनोपयोगेन ये उपलब्धिता  
 योगिनस्ते द्विविधा — ॥ ससारिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥

निरागच्छेत् ।  
 युगपत्पूर्वकालभाविनः । अविच्छेद्युनात् ॥ ॥  
 ज्ञानस्य ॥ नाहो उपपन्नम् । अस्मिन्निवत्वात् ॥ ॥  
 सम्यग्ज्ञान प्रसूयात् ॥ ॥  
 पूर्वपत् ॥ ॥ पचिविधः । ज्ञानउपपाणः । स्यात्प्रायः ।  
 ॥ ॥ पुनः उपपन्नप्रसूयात् ॥ ॥ विपर्ययः । अविच्छेद  
 युद्धनाऽविच्छेदविपर्ययः । उच्यते ।  
 उच्यते । अविहित-परिणामेन ।  
 महात्मनारण्येनोपपाकेन उपपाणोत्तम् ।  
 यः । उपपन्नविधाः । यागिनः । तः । द्विविधाः ।  
 ॥ ससारिणा मुक्ताश्च ॥ १० ॥  
 नः । नोः । ससारिणाः । मुक्ताः । नः । द्विविधाः । परमिति-वेत्तवससारीभ्योर- (अच) मुक्त दोषकारदोते । भावित्वोनीककर्मव्यतिरे

=कर्मरूपमापरण रहित सर्वज्ञमीर्षोमे अर्थात् केवलज्ञानियोमे  
 =ज्ञान-दर्शनप्रकृष्टालमे बोधे ॥ प्रथम ज्ञानेवाले दर्शनापयोगसे भी  
 = (सूत्रमे) ज्ञानका परिले कठना प्रपानपना अथवा भ्रष्टलाके कारणसे हे  
 अर्थात् ज्ञान प्रपान हे इससे इस सूत्रमे दर्शनसे परिले ज्ञानको करा हे  
 =सम्यग्ज्ञानकेविषय मे वा सम्यग्ज्ञानकेप्रकरणमे  
 =परिले(प्रथम अर्थापय सूत्र ६मे) पांच प्रकार ज्ञान उपयोग कहागया हे  
 =पदुरि यत्(=उत्)उपयोग शब्द ज्ञानस विपर्ययज्ञान भी  
 =प्ररणक्रियागया हे इस प्रकार (ज्ञानोपयोग) आठ प्रकार कहागया हे ।  
 =(अथ दर्शनासूत्रकी उक्तानिका करते हे कि)प्ररणक्रिया हे परिणाम इतने  
 =(ओर) सप्रभात्ममे साधारण (अमान) यथाक्त जो उपयोग हे तोकुरि  
 =उपलब्धित ये योगी(=उपयोगी जो आत्मा हे)वे दो प्रकार हे अर्थात्  
 आदर्श नर्षां वा सूत्रमे कथित यह परिणाम वा उपयोग वा सप्रसूत्रीर्षोमे  
 साधारणत दिलाया गया हे व भीष निम्नकथित सूत्रानुसार दो प्रकार हे

(१) १. गगनर मोर विगच्छेत् (नो) रसमपाने से एत एतका गत छीट काय एतका हे ॥ (२) कच्छका- (महा) संसारिणो मुक्ताश्च परमिति

एतद्विवासी अकारुण्यस्य पक्षी कृत पदच्छद् और विपक्ष्यर्ण सरित् सवार्यसिद्धि का शब्दशः हिन्दी अडुपाठ अर्थात् २ पृष्ठ १०  
 अन्तन्वारानतीत्य त एव तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य नोऽकर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्स-  
 मुदितनोऽकर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तनमुच्यते - एकस्मिन्समये एकेन जीवेनाष्टविधकर्म  
 भावेन पुद्गलाये गृहीता समयाधिक्रामवलिकामतोत्य द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीणां पूर्वोक्तेनैव  
 क्रमेण त एव तेनैव प्रकारेण तस्य जीवस्य कर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ उक्त च

अन्तन्वारान् ॥ अतीत्य - ते ॥ एव ॥ तेनैव ॥ एव ॥  
 प्रकारेण तस्यैव जीवस्य नोऽकर्मभावमापद्यन्ते ॥ आपद्यन्ते ॥ अकारकरी विसर्गी जीवके नोऽकर्मभावका प्राप्त होते हैं अर्थात् यही और  
 निमित्त परिच्छे सपयमें परमाणुप्रदे ये तेही तैसे स्पर्शादिकके अविभागप्रतिच्छे-  
 दनकी संख्या किये तथा विवने ही परमाणु को खिय सपयपद प्ररण करे ।  
 = सारा (= यावत्) इत्यादि (= तावत्) (काल) इत्यादि शब्दों से (तब) नोऽकर्मद्रव्य-  
 = परिवर्तन होता है । (अक) कर्मद्रव्यपरिवर्तन करा जाता है  
 (= वही) एक सपयमें एकजीवपरि आवप्रकार कर्म -  
 = स्वभावपरि से पुरख प्रख्याकिये (वे)  
 = सपय अविक्त आवहीकालको उन्वयकर  
 = द्वितीयादिक सपयमें निर्भीक्ष्ण मये (किर) परिच्छे किये  
 = (नोऽकर्मद्रव्यपरिवर्तकीव्यो) शीघ्रपरि (अर्थात् अष्टरीतभीरमिभयुहीत और  
 पथ्युहीतपरमाणुको प्ररण करते करते जब कोई सपय ऐसाशेष मिलमें)  
 = वेही (कर्म योग्य पुरख) विस ही प्रकारपरि विस जीवक (अक)  
 = कर्म भावको प्राप्त होते हैं (तब) सारा (यावत्) इत्यादि (= यावत्)  
 = (काल) कर्म परिवर्तन है ॥ कथा गया मी (च) है

यावत् ॥ तावत् ॥ अकर्मद्रव्य-  
 परिवर्तनम् ॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ उच्यते ॥  
 एकस्मिन् समये एकेनैव जीवेनाष्टविधकर्म-  
 भावेन पुद्गलाये गृहीता ये शरीराणां  
 सपय-अधिक्राम ॥ आपद्यन्ते ॥ अतीत्य -  
 द्वितीयादिषु सपयेषु निर्जीणां पूर्वोक्तेनैव ॥  
 एव ॥ क्रमेण ॥

ते ॥ एव ॥ तेनैव ॥ एव ॥ अविपस्य ॥  
 पूर्वभाष्य ॥ आपद्यन्ते ॥ यावत् ॥ तावत् ॥  
 कर्मपरिवर्तनम् ॥ उक्तम् ॥ ॥ ॥ ॥

(१) नोऽकर्मद्रव्य परिवर्तनका और कर्मद्रव्यपरिवर्तनका समाप्त ही काल है और कर्मद्रव्यपरिवर्तन में समस्त विधि भाकर्मद्रव्य परिवर्तन कीमात्रि है ।  
 केवल अ त इत्यादि कि भाकर्मद्रव्यपरिवर्तनमें नोऽकर्मभावका प्ररण है और कर्मद्रव्यपरिवर्तनमें कर्म भाकर्मद्रव्यका प्ररण है ।

एतानि नामानि सप्तसप्तशतं इतीह कृतं पदच्छेदं चोपरि विभक्त्यर्थं सति सर्वार्थसिद्धिचिन्ता शब्दश्च सिद्धीभक्त्याद अर्थाय २ सूत्रे ०  
 म एवामस्ति ते ससारिणः ॥ तस्य परिवर्तनं पञ्चविधद्रव्यपरिवर्तनं, क्षेत्रपरिवर्तनं, कालपरिवर्तनं, भवप  
 रिवर्तनं, भावपरिवर्तनं चेति ॥ तत्र द्रव्यपरिवर्तनं न द्विविधं नो कर्मद्रव्यपरिवर्तनं कर्मद्रव्यपरिवर्तनं  
 चेति ॥ तत्र नो कर्मद्रव्यपरिवर्तनं नाम, त्रयाणां शरीराणां पण्ड्या पर्याधीना योग्याये पृथ्व्या एकेन जीवेन  
 एव स्मित्तसमये गृहीता स्निग्धरुक्षवर्णगन्धादिभिस्तीव्रमन्दमध्यमभावेन च यथावस्थिता द्वितीया  
 द्विषु समयेषु निर्जीर्णा अगृहीतानन्तवारानतीत्य मिश्रकाथानन्तवारानतीत्य मध्ये गृहीताश्च

ने रूपं विनश्यत्वात्परि भवसे भवोत्पत्तौ प्राप्तिज्ञो संसारं कश्चेत्

स ॥ एषाम् ॥ अस्ति ॥ संसारिणः ॥ तत्परिवर्तनम् ॥ ॥ तत्परिवर्तनम् ॥ ॥ तत्परिवर्तनं संसारं वा परिवर्तनम्

पंचविधं ॥ ॥ द्रव्यपरिवर्तनं ॥ ॥ क्षेत्रपरिवर्तनं ॥ ॥

भावपरिवर्तनम् ॥ ॥ भवपरिवर्तनम् ॥ ॥ ५ ०

भावरिवर्तनम् ॥ ॥ इति ० तत्र ० द्रव्यपरिवर्तनम् ॥ ॥

द्विविधं ॥ नार्कर्मद्रव्यपरिवर्तनं ॥ ॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तनं ॥ ॥ इति ॥ नार्कर्मद्रव्यपरिवर्तनं नाम (इस प्रकार है कि) [भावसोभास-भाषा-पन

तत्र नार्कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ ॥ नाम ॥ ॥

पण्ड्याम् ॥ ॥ शरीराणाम् ॥ ॥ पण्ड्याम् ॥ ॥

पण्ड्याणाम् ॥ ॥ पण्ड्याम् ॥ ॥ ५ ० ॥ ५ ० ॥ ५ ० ॥ ५ ० ॥

पृथ्व्याम् ॥ ॥ मयम् ॥ ॥ युरीनाः ॥ ॥ स्निग्धरुक्षवर्णगन्धादिभिः ॥ ॥ एक समयमें प्रारणक्रिये (ते) स्निग्धरुक्षवर्णगंध आदि-कृति

नो मन्दद्रव्यपरिपावनं ॥ ॥ ५ पयावस्थिताः ॥ ॥ द्वितीयादियुः ॥ ॥

मयपयुः ॥ निर्जीवाः ॥ ॥ अष्टमीतान् ॥ ॥

मन्यन्तशापः ॥ ॥ अनीत्य—विधकान् ॥ ५ ०

=मन्यन्तवार प्रारणक्रियेता उच्छेपकृति चोपरि विभक्त्यर्थं चोको

यन्तशापान् ॥ अनीत्य—पत्ये ॥ युरीतान् ॥ ५ ०

अप्याह पृथिव्यं प्रारणक्रियेता उच्छेपकृति चोपरि विभक्त्यर्थं चोको

=अन्यन्तवार (प्रारणक्रियेता उच्छेपकृति चोपरि विभक्त्यर्थं चोको)

पराविवासी अरुणसमाय गच्छत आर विभक्तस्य सति सयासिद्धि का शक्यत्वं हिन्दोः अनुपाद शक्याय २ श्व १०  
 अन्तयारानतीत्य त एव तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य नोक्तमभावमापद्यन्ते यावत्तावत्स-  
 मुदितं नोक्तमद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तनमुच्यते—एकस्मिन्समये एकेन जीवेनाष्टविधकर्म  
 भावेन पुद्गला ये गृहीता समयाधिकामावलिकामतीत्य द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णा पूर्वोक्तैर्नैव  
 क्रमेण त एव तेनैव प्रकारेण तस्य जीवस्य कर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ उक्त च

अन्तयारान् ॥ अतीत्य—ते ॥ एवमेतन्नै एव ॥  
 प्रकारेणैवस्य ॥ एव ॥ अतीत्येनाकार्यकारणम् ॥ आपद्यन्ते ॥  
 यावत्तद्वापत् ॥ समुदितम् ॥ माकर्मद्रव्य-  
 परिवर्तनम् ॥ ॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ ॥ उच्यते ॥  
 एकस्मिन्नेवसमये एकेनैव जीवेनैव अष्टविधकर्म-  
 भावेनैव गृहीतान् ॥ ये ॥ प्रतीतान् ॥  
 समय- ॥ अपिहाय ॥ ॥ आवच्छिन्नम् ॥ ॥ अतीत्य-  
 द्वितीयादिषु समयेषु, निर्जीर्णान् ॥ पूर्वोक्तैर्न ॥  
 एव ॥ क्रमेण ॥  
 ॥ एवमेवैव ॥ एव ॥ प्रकारेणैवस्य ॥ ॥ अतीत्य ॥  
 कर्मभावेनैव ॥ आपद्यन्ते ॥ यावत् ॥ वापत् ॥  
 कर्मपरिवर्तनम् ॥ ॥ उक्तम् ॥ ॥ ॥ ॥  
 अन्तयारान् प्रकरणे यावत्पुष्पाङ्को उल्लिखितरि (अथ) वेदी तिसृषी  
 प्रकारेण तिसृषी बीजकै नाकार्यभाषका भास्य रोते हैं अर्थात् यही भाव  
 निवृत्त पड़िले समयमें वरपाण्डुरे ये वेदी जैसे स्पर्शादिकके अविभागमविच्छे-  
 दनिष्ठी संस्था खिये क्या विवने ही वरपाण्डु को खिय समयमवद्व प्रणय करे ।  
 =सारा(=यावत्) इतना(=यावत्)(=काल)इकठा होय रहे(अथ)नोक्तमद्रव्य-  
 =परिवर्तन जाता है । (अथ) कर्मद्रव्यपरिवर्तन करा जाया है  
 =(तस्य) एक समयमें एकहीवकरि आत्मकार कर्म-  
 =स्वभावकरि जे पुद्गल प्रणयकिये (ये)  
 =समय अदिक आवच्छिन्नको उल्लेख कर  
 =द्वितीयादिक समयमें निर्जीर्ण मये (किर) पड़िले कियत  
 =(नोक्तमद्रव्यपरिवर्तनको)रीकयकरि(अर्थात् अष्टरीवमौरिभयपूरित और  
 यष्यपूरितपरपाण्डुको)प्रणय करते करते जब ठोरे समय येसाराहोय कियतमें)  
 =वेदी(कर्मयोग पुद्गल) तिस ही प्रकारेण तिल बीजक (अथ)  
 =कर्मभावेनैव आस्यते है(अथ)सारा(यावत्)इतना(=यावत्)  
 =(काल)कर्मपरिवर्तन है ॥ करा गया भी (ये) है

(४) नोक्तमद्रव्य परिवर्तनका और कर्म प्रत्यपरिवर्तनका समान ही काल है और कर्मद्रव्यपरिवर्तन में समस्त विधि भाष्यद्रव्य परिवर्तन कीर्णति है ।  
 केवल अ तत् एतत् है कि भाष्यद्रव्यपरिवर्तनमें नोक्तमंत्राणांको अत्रण है और कर्मद्रव्यपरिवर्तनमें कर्म भाष्याणांका अत्रण है ॥



एयन्निवासो गगनरसस्य पक्षीसु कृत पदच्छेदं चौर विभक्त्यर्थं सरित् सर्गार्थमिद्विद्विषिका शब्दस्यः सिन्धीमनुवाद अर्थाय २ सूत्र १०  
 म एयामस्ति ते ससारिण्य ॥ तत्परिवर्तनं पञ्चविधद्रव्यपरिवर्तनं, क्षेत्रपरिवर्तनं, कालपरिवर्तनं, भवप  
 रिवर्तनं, भावपरिवर्तनं चेति ॥ तत्र द्रव्यपरिवर्तनं नद्विविध नो कर्मद्रव्यपरिवर्तनं कर्मद्रव्यपरिवर्तनं  
 चेति ॥ तत्र नो कर्मद्रव्यपरिवर्तनं नाम, त्रयाणां शरीराणां घण्टा पर्यायीना योग्या ये पुद्गला एकेन जीवेन  
 एकस्मिन्समये गृहीता स्निग्धरूक्षत्रणगन्धादिभिस्तीव्रमन्दमध्यमभावेन च यथावस्थिता द्वितीया  
 द्विषु समयेषु निर्जीर्णा अगृहीताननन्तवारानतीत्य मिश्रकांक्षानन्तारानतीत्य मध्ये गृहीताश्च

ले रूप विनकषणोक्तिरपसे पवांतरकी प्राप्तिज्ञो संसार कर्तव्ये  
 सः ॥ एयाम् ॥ अस्ति ॥ संसारिणः ॥ वत् परिवर्तनम् ॥ ॥ = यत् (संसार) भिन्नकैरेते संसारी है । पर परिवर्तन संसारण वा परिव्रमण  
 पंचविध ॥ ॥ द्रव्यपरिवर्तनं ॥ क्षेत्रपरिवर्तनं ॥ ॥ = यौव प्रकार है द्रव्यसंसारण, क्षेत्रसंसारण  
 काष्ठपरिवर्तनम् ॥ ॥ पत्रपरिवर्तनम् ॥ ॥ ५ ०  
 यापरिवर्तनम् ॥ ॥ इति ० वतद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ ॥ = यावत् संसारण, भवसंसारण और  
 द्विविध ॥ ॥ नाकर्षद्रव्यपरिवर्तनं ॥ ॥ कर्षद्रव्यपरिवर्तनं ॥ ॥ इति = यत् (संसार) (द्विविधम्) है नाकर्षद्रव्यसंसारण और कर्षद्रव्यसंसारण इस प्रकार है  
 तत्र नाकर्षद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ ॥ नाम ॥ ॥ = तर्था नाकर्षद्रव्यपरिवर्तनं नाम (इस प्रकार है कि) [भासोभास-पाषा-पन  
 प्रणाम् ॥ ॥ उत्तरीणाम् ॥ ॥ पयणाम् ॥ ॥ = यौव (श्रीविरत्तैकिपकभाडारक) शरीर और अह (आहार-शरीर-इन्द्रिय-  
 पयानोनाम् ॥ ॥ योगेश्च ॥ ॥ ५ ॥ पुद्गला ॥ ॥ एवम् ॥ प्रापिन ॥ ॥ = पर्याप्तिके याग्य जे पुद्गल परमाणुके स्वरूप एकवचन क्वरि  
 एकस्मिन्, ॥ ५ ॥ समय ॥ ५ ॥ शरीराः ॥ ॥ स्निग्धरूक्षत्रणगन्धादिभिः ॥ ॥ = एक समयमें प्रकृतिये (ले) स्निग्धरूक्षत्रणगण आदिकरि  
 नोदमन्दपण्यपपावन ॥ ॥ ५ ॥ यथावस्थिताः ॥ ॥ द्वितीयादिषु ॥ ॥ = और शीघ्रमन्द पण्यप यावत्कृरि जैसे विद्यते द्वितीयादिक  
 सपयम् ॥ ॥ निर्जीर्णाः ॥ ॥ अगृहीतान् ॥ ॥ = सपयमें लिते (बदुरिद्वितीयोदिरु समयमें) विनाशरे (परमाणु)  
 अनन्तरागतम् ॥ ॥ अनीत्य-विभक्तान् ॥ ॥ ५ ०  
 यत्-उत्तरात् ॥ अनीत्य-पण्येः ॥ पुद्गीतान् ॥ ५ ०  
 अर्थाय २ सूत्र १०

एतन्निवासी गगनपरायाय पडील कृत पदच्छद और विषयस्वर्यं सारिव सर्पायतिवि का शब्दस्य । इन्द्राः अनुपाद मध्याय २ श्व १०

अनन्तवारानतीत्य त एव तेनैव प्रकरेण तस्यैव जीवस्य नो कर्म भावमापद्यन्ते यावतावत्स-  
मुदित नो कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तनमुच्यते एकस्मिन्समये एकेन जीवेनाष्टविधकर्म  
भावेन पुद्गला ये गृहीता समयाधिकामावलिकामतोत्य द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णा पूर्वोक्तेनैव  
क्रमेण त एव तेनैव प्रकरेण तस्य जीवस्य कर्म भावमापद्यन्ते यावतावत्कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ उक्त च  
अनन्तवारः ॥ अनीत्य - वेः प्रकथेन है एव ॥  
प्रकारणैतस्यैः एव ॥ श्रीरस्येतीनाः कर्म पाश्युः ॥ आपद्यन्ते ॥

अनन्तवारः ॥ अनीत्य - वेः प्रकथेन है एव ॥  
प्रकारणैतस्यैः एव ॥ श्रीरस्येतीनाः कर्म पाश्युः ॥ आपद्यन्ते ॥  
असिन वहिले समयमें परमाणुको रूखिद्धरि (अब) वेही तिसरी  
दनिही संख्या खिये क्या विठने ही परमाणु को खिय समयमबद्ध प्रारण करे ।  
= सारा (=यावत्) इतना (=यावत्) काळ) रुकहा होय है (वच) नोकर्म द्रव्य-  
= परिवर्तन शासा है । (अब) कर्मद्रव्यपरिवर्तन कहा जाता है  
= सस्य अपिच एकस्यैव एतन्नीबद्धरि आव्यकार कर्म-  
= द्वितीयादिक समयमें पुद्गल प्रारणकिये (ते)  
= नाकर्मद्रव्यपरिवर्तनीयों) हीकमच्छरि (अर्थात् मधुगीतमौरिमिश्रणोत्त और  
मय्यष्टादशपरमाणुओंका प्रारण करते करते अब कोई समय ऐसा होय भिसमें)  
= वेही (कर्म योग्य पुद्गल) तिस ही मकारच्छरि तिस वीषक (अब)  
= कर्मभावको प्राप्त होते हैं (वच) सारा (यावत्) इतना (=यावत्)  
= (काळ) कर्म परिवर्तन है ॥ कहा गया भी (व) है

यावत्कथावत्कसमुदितस्युः ॥ नाकर्मद्रव्य-  
परिवर्तनम् ॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ उच्यते ।  
एकस्मिन्समये एकेनैः जीवेनैः अष्टविधकर्म-  
भावेन पुद्गलाः ये गृहीताः ॥ समय-  
मपिच - अपिच ॥ अनीत्य ॥ अनीत्य -  
द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णा पूर्वोक्तेनैः  
एव ॥ क्रमेण ॥

का) एव ॥ वेनैः एव ॥ प्रकारेणैतस्य है । अनीत्य है ।  
कर्मभावम् ॥ आपद्यन्ते । यावत् ॥ यावत् ॥  
कर्मपरिवर्तनम् ॥ उक्तम् ॥ ॥ ॥ ॥  
(२) नो कर्मद्रव्य परिवर्तनका और कमे द्रव्यपरिवर्तनका समान ही काल है और कर्मद्रव्यपरिवर्तन में समस्त विधि नो कर्मद्रव्य परिवर्तन की म  
केवल आसत इतना है कि नो कर्मद्रव्यपरिवर्तनमें नो कर्मद्रव्यपरिवर्तनमें कर्म गणनाओंका प्रारण है ॥

एवमिवासी अणुरूपसहाय पक्षीक कृष पक्ष्देद और विपत्त्यर्थं सशित सर्वार्थसिद्धिचिह्नं शब्दयः शिन्दीभनुवाद अध्याय २ सूत्र १०  
 स एयामस्ति ते ससारिण ॥ तत्परिवर्तनं पञ्चविधद्रव्यपरिवर्तनं, क्षेत्रपरिवर्तनं, कालपरिवर्तनं, भवप  
 रिर्तनं, भावपरिवर्तनं चेति ॥ तत्र द्रव्यपरिवर्तनं न द्विविधं नो कर्मद्रव्यपरिवर्तनं कर्मद्रव्यपरिवर्तनं  
 चेति ॥ तत्र नो कर्मद्रव्यपरिवर्तनं नाम, त्रयाणां शरीराणां धरणां पर्याप्तीना योग्याये पृथ्वा एकेन जीवेन  
 एवस्मिन्समये गृहीता त्रिगुणैश्च त्रयणं गन्धादिभिस्तीव्रमन्दमध्यमभावेन च यथावस्थिता द्वितीया  
 द्विपु समयेपु निर्जीर्णा अगृहीतानन्तवारानतीत्य मिश्रकाश्चानन्तारानतीत्य मध्ये गृहीताश्च

स ॥ एयाम् ॥ अस्ति ते ॥ संसारिणः ॥ यत् परिवर्तनम् ॥  
 पंचविधं ॥ द्रव्यपरिवर्तनं ॥ क्षेत्रपरिवर्तनं ॥  
 कालपरिवर्तनम् ॥ भवपरिवर्तनम् ॥ च ॥  
 भावपरिवर्तनम् ॥ इति च तत्र द्रव्यपरिवर्तनम् ॥  
 द्विविधं ॥ नार्थद्रव्यपरिवर्तनं ॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तनं च इति  
 तत्र नार्थद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ नाम ॥  
 धरणात् ॥ शरीराणात् ॥ पस्यात् ॥  
 पर्याप्तीनाम् ॥ याणां ॥ पृथ्वा ॥ एकेन ॥ जीवेन ॥  
 एवस्मिन् ॥ समये ॥ शरीराः ॥ त्रिगुणैश्च त्रयणैर्गन्धादिभिः ॥  
 नो कर्मद्रव्यपरिवर्तनं ॥ च यथावस्थिताः ॥ द्वितीयादियुः ॥  
 समयेपु ॥ निर्जीर्णाः ॥ अगृहीतान् ॥  
 अनन्तवारान् ॥ अतीत्य ॥ विधकात् ॥ च ॥

ये कथं विनकषयशाकरि भवते भवांतरही प्राप्तिज्ञो संसारं कृते हे

=या(ससार)भिनकैरे वे संसारी हे । षड परिवर्तनं संसराण्य भा परिश्रयण्य

=पौं च प्रकार हे द्रव्यसंसराण्य, क्षेत्रसंसराण्य

=कालसंसराण्य, भवसंश्रयण्य और

=भावसंसराण्य इस प्रकार हैं वहाँ द्रव्यपरिश्रयण्य

=दा, मकार(द्विविधम्) हे नार्थद्रव्यसंसराण्य और कर्मद्रव्यसंसराण्य इस प्रकार हे

=वर्षा नार्थद्रव्यपरिवर्तनं नाम(इस प्रकार हे कि) [आसोवास-भाषा-पन

ब्धीन(शौदारिकपैक्रियकभाहारक)शरीर और अह (आहार-शरीर इन्द्रिय-

न्ययार्थिके याग्य ने पुत्रक परमाणुके स्वरूप एक केतन करि

=एक समयमें ग्रहणकिये (हे) त्रिगुणैश्च त्रयणैर्गन्धादिभिः

=और तीय मन्द मध्यम मादकरि जैसे विद्यते द्वितीयादिक

=समय में स्थिते (अगृहीतोयादिक समयमें) विनाश्रते (परमाणु)

=अनन्तवार ग्रहणकिये स वस्तुपकरि और भिन्नपरमाणुको

अर्थात् वहिले मारये विनयके प्रदीत भी अगृहीत नय ग्रहणकिये तभी

=अनन्तवार(अनयोयमाणुको)वस्तुयं करि और भीषणैर्द्वितीयपरमाणु



सन्वेदवि पुगला खलु कमसो भुजुजिकया य जीवेण । असइ अणानखुत्तो पुगलपरियट्टससारे ॥१॥  
 नेतपरिवर्तनमुच्यते- सुत्तमनिगोवजीवोऽपयसिअ सर्वजघन्यप्रदेशशरीरो लोकस्याष्टमध्यप्रदेशान्त्वशरीर-  
 मध्यप्रदेशा कृत्वोत्पन्नं चूदभवप्रवृत्तं जीवित्वा मृतं स एव पुनस्तेनैवावगाहनं दिक्खपन्नस्तथा खिस्तथा  
 चतुरिरियेवं यावदघननिगुल्लयासस्येयभागप्रमित्वाकाशप्रदेशास्तावच्छ्वस्तस्तेत्रैव ॥

सन्वेदवि पुगला खलु कमसो भुजुजिकया य जीवेण । असइ अणानखुत्तो पुगलपरियट्टससारे ॥ १ ॥

=पुगलपरियट्टससारे असइ अणवपुणो सव्वजवि पुगला खलु कमसो भुजुजिकया य जीवेण ॥ १ ॥

=पुगलपरियट्टससारे । (पुत्रपरिवर्तनससारे ) असइ इ-इस (=असइ=अस्मिन्) पुत्रपरिवर्तनरूप संसारमे

भुजुजा ० (अनंतकृतः)

=अनंत (=अणत) कृतः (=वार)

१/१) अवि० पुगला १। (सर्वे १) अवि० पुत्रसाः।)

-सर्वरी पुत्रल

-खु० कमसो (मनु० प्रम०)

=निमयकरि मनुक्रमसे

भुजुजिकया ॥प०जीवेण॥ (कृत्कोशिकता) ॥प जीवेन॥।

=बीचद्वारा प्रवेण द्विय नाकर खोददिये गये हैं अर्थात् "इस

पुत्रपरिवर्तन रूप संसार विषे इस बीचमे सर्व ही पुत्रल निमयकरि

अनंतवार मनुक्रमसे प्रवेण करि करि खोदे है' अर्थात् बचनिका पृष्ठ २४६

सप्रतिवर्तनम् ॥ उच्यते । सुखनिगादमीष ॥

=संक्षेप परिवर्तन करा जाता है (अब) कोशिकीय सुखनिगोविया

मपवात्तः ॥ सर्वमप्यन्यप्रदेशशरीर ॥ खोदस्य ॥

=अपयसिक समस्त अयन्य (अवगाहनरूप) शरीरवाला खोदके

अप्यन्यप्रदेशान्, तस्यशरीणमप्यन्यप्रदेशान्। कृत्वा-दत्यभाः।

=आठ मध्यके प्रदेशोंको अपने शरीरके मध्य प्रदेश करि जपना अर्थात्

पुत्रपरिवर्तनम् ॥ भौतित्वा-युताः।

शाकके अष्टमध्यप्रदेशोंको अपने शरीरका अष्टमध्यप्रदेश बनाकर वल्लभ मनुआओ

सः। एवमुत्पन्नः एवमवगारेन ॥ दिः

=सुदुःख (स्नासक अठारहवां भागस्थिति रहने वाला) पाप नीकर मरा

तत्समः। तथाऽपि कथाऽप्युत्ति०

=बहुवि बो(बीच)ही जिस ही अवागहनकरि दूसरी बार

एवंपाद०यनोपलस्य ॥ अर्धस्येयभागप्रमिता-

=एवा बीसरीबार एवा चौथीबार जन्या ( और मरा इस प्रकार)

आद्याग-मदद्याः। तस्यकृतस्य ० तत्रकृतस्य

=ही मिलने पनोपलक अर्धस्येयवां भाग प्रमाखित(=अमिता)

=आद्याग मदेका ई विराम बार (कृत्वा) वराही वा तत्र स्थान्ते ही

पदानिशास्त्री जगद्गुरुसहाय बन्दीक कृत पदसूच्ये और विमलपत्र्यं सरित् सर्वार्थसिद्धिचिह्नं शब्दशुः शिवीभद्रुबाद अण्यप २ शुभ १ वा  
 अनित्वा पुनरेकेकप्रदेशाधिकभावेन सर्वो लोक आत्मनो जन्मसुत्रभावावमुपनीतो भवति याव-  
 तायसुत्रपरिग्रहंनम् ॥ उक्तं च- सव्व हि लायखेसे कमसो तं खल्यि ज ग्ण उप्पयण । ओगाहणेण बहुसो  
 परिममिदो खेत्त,ससारे ॥ १ ॥

अर्थात् भीष मे अनन्तवार अन्य अणगाहना तथा अन्य छेप में उपमा यह इस परिवर्तन के प्रमाण रहित  
 व्रतित्वा—पुन ० एक-एक श्लेष-अधिकभावेन इ = उपपन्नर बहुरि(पथावृत्तसुत्रसे लोकेके)एक एक प्रदेश अपिकर्त्त(कमसेअन्यसेकर)  
 सर्वः इं शाकः इं आरण्यः इं  
 अन्यछेपभाक् इं उपनीतः इं यवति १  
 =समस्त लोक (जोनसेतैवाकीस पनरावू प्रमाण)आत्मा वा अन्ते (=आत्मना)  
 =अन्य छेपपनको वा अन्यछेपरूप का भास किया हुआ (=उपनीतः) होता है  
 अर्थात् बही भीष उस छेपसे पथाव लोकेके एक एक श्लेष अपिकर्त्त अन्य  
 छकर समस्त लोकके सब प्रदेशोंका प्रमाणसार ही (अनुक्रम विना अन्यसे बरन  
 गिनिये) स्पष्टकरि अपना अन्य छेप करावा है वा बना खेता है ॥

यावत् ० नावत् ० छेपरिपत्तन्म् ॥ उक्तं ॥ ५ ०  
 सव्वहि लोयखेत्त कमसो त खल्यि ज ग्ण उप्पयण । ओगाहणेण बहुसो परिममिदो खेत्तससारे ॥ १ ॥  
 =ओगाहणेण बहुसो परिममिदो खेत्तससारे । सव्वहि लोयखेत्ते कमसो तं खल्यि जं ण उप्पयण  
 आगाहणेण ॥ १ ॥ अनुसु ० (अणगाहननं ॥ १ ॥ अनुसु ०) = अनेक (=बहुश)अणगाहना(रूपशरीर को शककरि  
 परिममिदो)लेखतससाराण(परिग्रहणं) छेपसंभारो) =व्यारो ओरसे(=परि)प्रणवाहुआ (एक) छेप संसारमें  
 सव्वमिदो शिवाचलेचो ॥ (=सर्वस्मिन्) लोकेछेपे ॥ १ ॥ =सर्वलोक छेपमें  
 इमासात्तं ॥ १ ॥ ० त्विण् (अपय ० कव्वी ॥ न ० अत्ति) =अनुक्रमस बरा देवा स्वान नही है  
 न ॥ १ ॥ ० उप्पयण ॥ १ ॥ (पव ॥ न ० वत्तथम् ॥ १ ॥) =जहाँ(पयवी)नहीं जन्माई अर्थात् इसछेप संसार विपे अणवा पडवीष सोअनेक  
 अणगाहनरूपशरीर(पुंसां)पुस सर्वलोकका लेखिये अनुक्रमसेअणवा तदपिसामेअन राहा जहाँ न उणवा ।

लगान पर अणका न निर जगता है इले सिद्धि वि बला और पञ्चमे प्रकृतकः साकार से नाकाकल्प अर्थात् चित्तको पार ॥

सन्वेऽपि पुगला ललु कमसो सुतुलिकाया य जीवेण । असह श्रयानस्तुतो पुगलपरियदृसंसारे ॥१॥  
 न्ततपरिवर्तनमुच्यते- सुद्धमनिगोवजीवोऽपपर्याप्तक सर्वजघन्यप्रदेशशरीरो लोकस्याष्टमध्यप्रदेशान्स्वशरीर-  
 मध्यप्रदेशा कृत्वोत्पन्न दूढभ्रमग्रहण जीवित्वा मृत स एव पुनस्तेनैवावगाहन द्विरूपत्रस्तथा खिस्तथा  
 चतुरित्येवं यावदधनोगुलरयासख्येयभागप्रमिताकाशप्रदेशास्तावत्कृत्वस्तत्रैव ॥

सन्वेऽपि पुगला ललु कमसो सुतुलिकाया य जीवेण । असह अर्णवसुखो पुगलपरियदृसंसारे ॥ १ ॥

=पुगलपरियदृसंसारे असह अर्णवसुखो सख्यंरि पुगला ललु कमसा सुतुलिकाया य जीवेण ॥ १ ॥

पुगलपरियदृसंसारे । (पुगलपरिवर्तनसंसारे ) असह १ । =इस (=असह=अस्मिन्) पुगलपरिवर्तनरूप संसारमे

अर्णवसुखा ० (अर्णवठवः०)

सन्वे १ । अरि० पुगला १ । (सर्वे १) अरि० पुगलाः१।)

मनु० कसुतो० (सनु० प्रपराः०)

सुतुलिकाया ॥प०श्रीवेण॥ (सुकोणिकाः॥) य जीवेनः॥)

=निभयकार अनुक्रमसे

=बीजशारा प्रणय किय जाकर छोड़ दिये गये हैं अर्थात् "इस

पुगलपरिवर्तन रूप संसार विषे इस बीवेनै सर्व ही पुगल निभयकार

अर्णवकार अनुक्रमसे प्रणय करि छोड़े है' अर्थात् वचनिका पृष्ठ २४६

=लेत्र परिवर्तन कथा जाता है (अब) कोर्दलीव सुस्वनिगादिया

=अपर्याप्तक समस्त कथन्य (अवगाहनरूप) शरीरबाहा जोरके

=आठ मण्यके प्रदेशोंको अपने शरीरके मध्य प्रदेश करि उपजा अर्थात्

जोकरके अष्टमध्यप्रदेशोंको अपने शरीरका अष्टमध्यप्रदेश बनाकर उत्पन्न हुआ अर्थात्

=दुग्धपव (स्वासके अठारहवां यागस्थिति रहने बाळा) पाय लीकर मरा

=चतुरि सो(बीच)ही तिस ही अवागहनकरि दूसरी बार

=ठया बीसरीबार तथा चौबीबार जन्मा ( और मरा इस प्रकार)

=ही जितनी पत्नीपुत्रक असंख्यातर्वा याग मयास्थित(=प्रमिता)

=आकाश प्रदेश है कितने बार (=कला) चरही वा उच स्थानमें ही

से अर्थात् वर्तनम् ॥) उच्यत १ सुस्वनिगोवमीवः ॥

अवगाहनम् ॥ सर्वमव्ययप्रदेशशरीरः ॥ लोकास्य ॥

अष्टमध्यप्रदेशान् । स्वशरीरमध्यप्रदेशान् ॥ १ ॥ उच्यतः ॥

दुग्धपववराणम् १ । जीवित्वा - मृतः ॥

सा ॥ परंपुनरंवेनैः एवकमवागेन ॥ द्वि

गतात्मनिपाठः शयाः चतुर इति ०

एव यावत्पत्नीपुत्रस्य ॥ असंख्येययागप्रमिता-

माकाश-प्रदेशाः ॥ तावत्काल एव ० तत्र ० एव ०

एवमित्यासी जगत्प्रसाहाय वकील कृप पदपर्वदे और निभतत्यर्थ सरित सचोर्षसिद्धिषिका शक्यः शिवीभद्रुशद अस्याय २ खण्ड ० वा

जातिषा पुनरेकैव प्रदेशाधिकभावो न सर्वो लोक आत्मनो जन्मचेतनाभावमुपनीतो भवति याव-  
तावत्क्षेत्रपरिवर्तनम् ॥ उक्तं च- सर्वं हि लायस्त्रेते कमसो तं गत्यि जं या उपपत्त्या । श्रोगाहणेषा बहुसो  
परिभमिदो खेतससारे ॥ १ ॥

अर्थात् शिव में जन्मवत्पर अन्य अस्मात्तो तथा अन्य क्षेत्र में उपमा २१ इस परिवर्तन के प्रमाण रहित  
अनिषा—पुनः० एक-एक प्रदेश-अधिकभावेन ई =उपमाकर बहुरि(प्रातृरसक्षेत्रसे लोकके एक एक प्रदेश अथिकमें(कृपसेन्यलेकर)  
सर्वः ई लोकः ई आत्मनः ई =समस्त लोक (वीनसेतेवैवासीस पनरात्र प्रमाण)आत्मा वा अपने (=आत्मनः)  
जन्मक्षेत्रमाश्रय ई उपनीत ई भवति । अर्थात् श्री जीव इस क्षेत्रसे प्रभात् लोकके एक एक प्रदेश अथिकमें अन्य  
अन्य क्षेत्रपनको वा जन्मक्षेत्ररूप को प्राप्त किया हुआ (=उपनीत) होता है

यथावन्वावत्क्षेत्रपरिवर्तनम् ३॥ उक्तं ॥ १० ॥

सर्व्वहि लोयखेते कमसो तं गत्यि जग उपपत्त्या । श्रोगाहणेषा बहुसो परिभमिदो खेतससारे ॥ १॥

श्रोगाहणेषा बहुसो परिभमिदो खेतससारे । सर्व्वहि लोयखेते कमसो तं गत्यि जं या उपपत्त्या  
परिभमिदो खेतससारे (अपगाहनन ३॥ बहुय ०) =अनेक(=बहु)अपगाहना(रूपगरीर को माहुरि  
सम्पत्ति शिवायलेपनी(परिवसत ३। क्षेत्रससात्त) =चारो ओरसे(=परि)अपगाहना (रूपगरीर को माहुरि  
इतना ० ३॥ ७० ॥ त्विग (कृपय ० खेत ३॥ ३॥) =सर्पलोक क्षेत्रमें  
ज ३॥ ७० ॥ उपपत्त्या ३॥ (यदु ३॥ ३॥ न ० अस्ति) =अनुक्रमसे यहाँ ऐसा स्थान नहीं है  
अपगाहनरूपगरीर(कुंयायस सर्पलोकका क्षेत्रमें) =गर्भो(पृथ्वी)नहीं अन्त्या है अर्थात् इसक्षेत्र से अपगाहण  
लगाते पर अतका य गिर जन्म ३ ३ ३

अपगाहनरूपगरीर(कुंयायस सर्पलोकका क्षेत्रमें) =गर्भो(पृथ्वी)नहीं अन्त्या है अर्थात् इसक्षेत्र से अपगाहण  
लगाते पर अतका य गिर जन्म ३ ३ ३





एतावत्कालपरिवर्तनम् ॥ उक्त च उं वसाप्याणश्च त्रसप्यिणिसमयावलि यासु शिरवसेसासु । जादो मुदो य बहुसो भमयोग्य दु कालससारे ॥ १ ॥ भवपरिवर्तनमुच्यते - नरकगतौ सर्वजघन्यमायुर्दशवर्ष-सहस्राणि, तेनायुषा तर्वापत्र पुन परिभ्रम्य तेनैवायुषा तत्रैव जात, एवदशवर्षसहस्राणा यावन्त सम-यास्तावत्कालपरिवर्तनम् ॥ ३ ॥ उक्तम् ३ ॥ ५ \*

उवसाप्यिया भवसप्यिणिसमयावलि यासु शिरवसेसासु ॥ जादो मुदो य बहुसो भमयोग्य दु कालससारे ॥ १ ॥  
 उवसप्यिणिय भवसप्यिणिसमयावलि यासु शिरवसेसासु ॥ जादो मुदो य बहुसो भमयोग्य दु कालससारे ॥ १ ॥  
 उवसप्यिणिय भवसप्यिणिसमयावलि यासु शिरवसेसासु ॥ जादो मुदो य बहुसो भमयोग्य दु कालससारे ॥ १ ॥

उवसाप्यिया भवसप्यिणिसमयावलि यासु शिरवसेसासु ॥ जादो मुदो य बहुसो भमयोग्य दु कालससारे ॥ १ ॥  
 उवसप्यिणिय भवसप्यिणिसमयावलि यासु शिरवसेसासु ॥ जादो मुदो य बहुसो भमयोग्य दु कालससारे ॥ १ ॥  
 उवसप्यिणिय भवसप्यिणिसमयावलि यासु शिरवसेसासु ॥ जादो मुदो य बहुसो भमयोग्य दु कालससारे ॥ १ ॥

उक्तम् ३ ॥ ५ \*  
 उवसाप्यिया भवसप्यिणिसमयावलि यासु शिरवसेसासु ॥ जादो मुदो य बहुसो भमयोग्य दु कालससारे ॥ १ ॥  
 उवसप्यिणिय भवसप्यिणिसमयावलि यासु शिरवसेसासु ॥ जादो मुदो य बहुसो भमयोग्य दु कालससारे ॥ १ ॥  
 उवसप्यिणिय भवसप्यिणिसमयावलि यासु शिरवसेसासु ॥ जादो मुदो य बहुसो भमयोग्य दु कालससारे ॥ १ ॥



प्यानिवासी जगरूपसहाय बकील कृत पक्कद और विपन्नत्यं सहित सवार्थसिद्धिका शक्यत्वं हिन्दी अनुवाद अर्थात् २ वृत्त १०  
 गिरयादिजहण्यादिसु जावदु उवरिल्लिया दु गेवेज्जा । मिच्छत्तसंसिदेण हु बहुसो वि भव  
 छिदी भमितो ॥१॥ भावपरिवर्तनमुच्यते—पक्षेन्द्रिय सञ्ज्ञी पर्याप्तको मिथ्याहृष्टि कश्चिज्जीव  
 याध्यवसायस्थानान्यसंख्येयलोक्रप्रमितानि पटस्थानपतितानि तत्स्थितियोग्यानि भवन्ति,  
 छिरयादिज(पष्ठा)विद्युः (नरकादिभयन्यादिभूः)  
 उवरिल्लिया \* इ \* (उपरिय \* ट \* )  
 जावदु \* गेवेज्जा \* (यावत् \* प्रवेपकाः \* )  
 मिच्छत्तसंसिदेण \* इ \* ( मिथ्यात्वसंसर्गेण \* )  
 बहुसो वि भवत्ति यमिदा(बहुश्रुत अपिभयस्थितिप्रमितः) दु \*  
 भावपरिवर्तनम् \* (उच्यते उपशोन्द्रियः) सञ्ज्ञीः  
 पर्याप्तः \* विप्याहृष्टिः \* कश्चित् \* श्रीकः \*  
 सर्वजघन्याः \* (स्वायत्तः) शानावरणमुकतः \*  
 स्थितियुः \* (अन्ताकोटीसञ्ज्ञिहायुः) भावपतेः \*  
 तस्यै \* (इयाय अय्यवसायस्थानानि \* )  
 असस्येयलोक्रप्रमितानि \* (पटस्थानपतितानि \* )  
 तत्स्थितियोग्यानि \* (भवन्ति \* )

=नरककी भयन्यस जगार  
 =उपरियुं या उच्छुट ता (-इ=हु)  
 =प्रवेपक तक  
 =विप्यात्वक संसर्ग सहित (यह नीब)  
 =भयपरिवर्तन कडा भावा है। पवेन्द्रिय संसर्क  
 =पर्याप्तक विप्याहृष्टि कोई भी  
 =अपने उचित सबसे कफव शानावरण कर्मकी मुकतकी  
 =काडा काड़ी सागरके नीचे और काद्रिक ऊपर सहावाली स्थितिकामासरोय है  
 =तिस(नीब)के इयाययावस्थान  
 =असंख्यात लोक प्रयाण भरस्थान मति (अर्थात्तिसाविष्टिक्य) सहित  
 =उस स्थितिके योग्य होते हैं अर्थात् उस अन्ताकोडा काड़ी सागर की जघन्य  
 तिस एक एक स्थान विपे अनंतान्त अपिभाग अविच्छेद हैं अंतस्थान लोकके निवृत्ते मदेश होते हैं तितने हैं ॥  
 संख्यातएल्लहानि असंख्यातएल्लहानि अनंतवयुएल्लहानि अनंतवयुएल्लहानि संख्यातमागहानि संख्यातमागहानि  
 एल्लहदि असंख्यातएल्लहदि अनंतवयुएल्लहदि असंख्यातमागहदि असंख्यातमागहदि संख्यात  
 स्थिति परनेका जगार इयाय याके स्थान हैं और ये गणनामें असंख्यात लोकके निवृत्ते मदेश होते हैं तितने हैं ॥  
 तिस एक एक स्थान विपे अनंतान्त अपिभाग अविच्छेद हैं अंतस्थान लोकके निवृत्ते मदेश होते हैं तितने हैं ॥  
 संख्यातएल्लहानि असंख्यातएल्लहानि अनंतवयुएल्लहानि अनंतवयुएल्लहानि संख्यातमागहानि संख्यातमागहानि  
 एल्लहदि असंख्यातएल्लहदि अनंतवयुएल्लहदि असंख्यातमागहदि असंख्यातमागहदि संख्यात

इत्यनिवासी अगुरुसप्तशतं वक्रोक्तं कृत्वा पञ्चषेडं चौर विमलतल्पं सरित् सर्वायतिद्विद्विषिका शब्दशः शिन्वीभनुवाद अख्याय २ सूत्रे •  
 तत प्रच्युत्यतिर्यगतावन्तं घृह्णतियु समुत्पन्न पूर्वोक्तैर्नैव क्रमेण त्रीणि पत्योपमानि तेन परिस  
 मापितानि, एव मनुष्यगती च तिर्यञ्चवत्, देवगती नारकवत्, अथ तु विशेष—एकत्रिंशत्सागरोप  
 माणि परिसमापितानि यात्रावश्रवपरिवर्तनम् ॥ उक्तं च—

अन्यात्पादिकि विषे अण्ये करते फिर नोर् काळ विषे विस ही आयु हो पाय विस पावड़े में उपमा  
 एसे हो दण्डसप्त बार के भित्तने समय होय वितनीवार को विस ही आयुसहित वहाँ हो उत्यन्न होतारही बीचमें अन्य  
 स्थानमें उत्यन्न हुआ सा गणना में नहीं जाता है ॥ पीछे एक समय अथिह इगससल वर्षकी आयु पाय उपमा ॥ पचात्  
 दण्ड हजार बार हो समय अपिहकी आयु पाय उपमा इसही अनुक्रमसे भित्तने तेवीस सागरके समय में वित्तने  
 अन्यसे तथा मरछसे पूर्ण करता है क्रम रहित बीच बीच अन्याति तथा अन्य आयुकरि उपलै सातिस गितवी में नहीं आते हैं ॥  
 नगः अण्युत्पत्त्य—तिर्यगतां गिगमन्तुर्मुहूर्तमायुः ॥॥  
 =वर्षों (नरक) से निकलकरि तिर्यवगतिमें अन्तर्मुहूर्तमायुबाका  
 =उत्पन्न होता है वहिल करे हुए हो क्रमकरि  
 =हीन अन्य प्रमाण विस(बीच) करि परिपूर्ण हावे है अर्थात् वही जोर  
 तिर्यवगतिमें अपन्य आयुअन्तर्मुहूर्तकी थाप फिर समाप्तकरि अन्तर्मुहूर्तके भित्तने समय होय वितनीवार अपन्य  
 आयुवारि पीछे एक एक समय अपिह अनुक्रमकरि तीन बन्ध पर्यंत समस्त स्थितिकिणै अन्यपरिपरिपूर्ण करे है  
 =इस प्रकार नरगति में भी(=च)तिर्यव सहय है  
 =वगतिविषे नरकके सहय है परतु(=तु) येर पर है (कि)  
 =इकोस सागरस अपिह आयुक बारक भी अनुदित्य पांच अनुत्तर वेले बीचर  
 विमानों के अपने देवोंके परिवर्तन भी हावा है क्योंकि ये सम्बन्धी है

नगः अण्युत्पत्त्य—तिर्यगतां गिगमन्तुर्मुहूर्तमायुः ॥॥  
 =वर्षों (नरक) से निकलकरि तिर्यवगतिमें अन्तर्मुहूर्तमायुबाका  
 =उत्पन्न होता है वहिल करे हुए हो क्रमकरि  
 =हीन अन्य प्रमाण विस(बीच) करि परिपूर्ण हावे है अर्थात् वही जोर  
 तिर्यवगतिमें अपन्य आयुअन्तर्मुहूर्तकी थाप फिर समाप्तकरि अन्तर्मुहूर्तके भित्तने समय होय वितनीवार अपन्य  
 आयुवारि पीछे एक एक समय अपिह अनुक्रमकरि तीन बन्ध पर्यंत समस्त स्थितिकिणै अन्यपरिपरिपूर्ण करे है  
 =इस प्रकार नरगति में भी(=च)तिर्यव सहय है  
 =वगतिविषे नरकके सहय है परतु(=तु) येर पर है (कि)  
 =इकोस सागरस अपिह आयुक बारक भी अनुदित्य पांच अनुत्तर वेले बीचर  
 विमानों के अपने देवोंके परिवर्तन भी हावा है क्योंकि ये सम्बन्धी है  
 नगः अण्युत्पत्त्य—तिर्यगतां गिगमन्तुर्मुहूर्तमायुः ॥॥  
 =वर्षों (नरक) से निकलकरि तिर्यवगतिमें अन्तर्मुहूर्तमायुबाका  
 =उत्पन्न होता है वहिल करे हुए हो क्रमकरि  
 =हीन अन्य प्रमाण विस(बीच) करि परिपूर्ण हावे है अर्थात् वही जोर  
 तिर्यवगतिमें अपन्य आयुअन्तर्मुहूर्तकी थाप फिर समाप्तकरि अन्तर्मुहूर्तके भित्तने समय होय वितनीवार अपन्य  
 आयुवारि पीछे एक एक समय अपिह अनुक्रमकरि तीन बन्ध पर्यंत समस्त स्थितिकिणै अन्यपरिपरिपूर्ण करे है  
 =इस प्रकार नरगति में भी(=च)तिर्यव सहय है  
 =वगतिविषे नरकके सहय है परतु(=तु) येर पर है (कि)  
 =इकोस सागरस अपिह आयुक बारक भी अनुदित्य पांच अनुत्तर वेले बीचर  
 विमानों के अपने देवोंके परिवर्तन भी हावा है क्योंकि ये सम्बन्धी है

अग्निमासी जागृत्यसाय पकील इव तच्छब्द और विषयस्यै सति सपर्यासिद्धिका शब्दशः सिन्धी अनुवाद आप्पाय २ सूत्र १० चतु स्थानपतितानि श्रेण्यसंख्येयमाशप्रमितानि योगस्थानानि भवन्ति । तथा तामेवस्थिति तदेव कषायाध्यवसायस्थान च प्रतिपद्यमानस्य द्वितीयमनुभवाध्यवसायस्थान भवति, तस्य च योगस्थानानि पूर्ववद्बेदितव्यानि । एवं तृतीयादिष्वपि अनुभवाध्यवसायस्थानेषु आ असंख्येय लोकपरिसमाप्ते । एवं तामेव स्थितिमापद्यमानस्य द्वितीय कषायाध्यवसायस्थान भवति, तस्यापि

षट्स्थानपतितानिः॥ अथसंख्येयमागमभितानि ॥॥ = चार स्थानपति इति सति श्रेणीका असंख्यातर्वागममात्रा  
योगस्थानानि ॥॥ भवन्ति । = यागस्थान(अनुक्रमसे होते है) अर्थात् दूसरे अपन्य योगस्थान के पश्चात् तीसरा योगस्थान हाय परन्दु अनुभवागस्थान, कषाबस्थान, स्थितिस्थान, यतीनो अपन्य ही रचते है ॥ यीने कीया पर्वर्षा कर्तवो सातर्षा आठपौ इत्यादिक योगस्थान होते हात श्रेणीके असंख्यातर्वागमत्क असंख्यात प्रमाणगणनामें अनुक्रमसे पछविमाय परन्दु अनुयाग रूपाय स्थिति य तीनों अपन्य ही रहें और कोर् दो अपन्य योगस्थानक बीचमें अन्य रूपयस्थान अन्य अनुयागस्थान सान्ययोग स्थान होते जाय ते गणना में न आते है  
तथाऽऽपुः॥ एवमस्त्वितिम् ॥ तदुः॥ एव० य० = तथा वो ही स्थिति और (=) बोधी  
कषायप्यवसायस्थानम् ॥ पतिपयमानस्यम् ॥ = कषायपावस्थानको मातृकरनपाले ( जीव ) में  
द्वितीयम् ॥ अनुभव - अथवसायस्थानम् ॥ यवति । = दूसरा अनुयाग अथवसाय स्थान हाता है  
तस्यम् ॥ य० यागस्थानानिः॥ पूर्ववत् ॥ = और तिसा दूसरे अनुयागपावस्थान)क योगस्थान पविच्छेदी पति (श्रेणीके असंख्यातर्वागम प्रमाण-असंख्यात प्रमाणगणनामें अनुक्रमसेहोना )  
वेदितव्यानिः॥ मय्यु० दुर्वीयादिपुः॥ अपि० = ज्ञानना बाहिए इस प्रकार तीन आदिक भी  
अनुभवअप्यवसायस्थानेषु ॥॥ आ० = अनुयागर्षय अप्यवसाय स्थान(अनुक्रमसे) होत होते  
असंख्येयलोक-परिसमाप्तेः॥ एवम् ० बाय् ३॥ एव० = असंख्यात आफ परिपूर्ण तक होते है (तब) वास्तविक (=एवम्) बोधी स्थितिम् ॥ आपयमानस्य ॥ द्वितीयम् ३॥ = स्थितिस्थान को मातृ करनेवाले जीव के (=आपयमान) दूसरा  
कषाय-अध्यवसायस्थानम् ॥ भवति तस्यम् ॥ अपि० = रूपाय अध्यवसाय स्थान होता है तिस(द्वितीय रूपायध्यवसाय भावस्थानके) भी



प्राणित्वात्ती जगरूपसाय कर्षात् कृत पदच्छेदं और विषयस्वर्यं सखित सवार्यसिद्धिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद अर्थात् २ सूत्र १०  
 चतु स्थानपतितानि श्रेष्ठ्यसंख्येयभागप्रमितानि योगस्थानानि भवन्ति । तथा तामेवस्थितिं  
 तदेव कपायाध्यवसायस्थानं च प्रतिपद्यमानस्य द्वितीयमनुभवाध्यवसायस्थानं भवति, तस्य च  
 योगस्थानानि पूर्ववद्वेदितव्यानि । एव तृतीयादिष्वपि अनुभवाध्यवसायस्थानेषु आ असंख्येय  
 लोकपरिसमाप्ते । एव तामेव स्थितिमापद्यमानस्य द्वितीय कपायाध्यवसायस्थानं भवति, तस्यापि

चतुःस्थानपतितानिः॥ श्रेष्ठ्यसंख्येयभागप्रमितानिः॥ = चार स्थानपति हानि सखित भेद्योक्ता असंख्यातर्षाभागप्रमाण  
 योगस्थानानिः॥ भवन्ति ।

के पश्चात् दोसरा यागस्थान हाय परन्तु अनुभागस्थान, कपायस्थान, स्थितस्थान, येतीनों अन्वय योगस्थान  
 पीछे चौथा पौर्वात्तवर्षा सातवां आठवां इत्यादिक योगस्थान होते होते भेद्योक्ते असंख्यातर्षाभागतः असंख्यात  
 मभाषणानामे अनुक्रमते पल्लिआय परन्तु अनुभाग कपाय स्थिति ये तीनों अन्वय ही रहे और कोई दो अन्वय  
 योगस्थानक बीचमें अन्य रूपायस्थान अन्य अनुभागस्थान अन्ययोग स्थान होत नाय वे गणना में न आये रहे

वयाऽध्यासुरेः॥ एवमस्त्वितिम् ३॥ तद्वदुः॥ एवम ३० = चोषा वो ही स्थिति और (= च) बोधी  
 कपायाध्यवसायस्थानम् ॥ विविपयमानस्यर्षे  
 द्वितीयम् ॥ अनुभव - अध्यवसायस्थानम् ॥ मवति । = दूसरा अनुभाग अध्यवसाय स्थान होता है  
 तस्यर्षे ॥ म ० यागस्थानानिः ॥ पूर्ववत् ० = और तिसरे अनुभागायस्थान)क योगस्थान पछिछोड़ी पति  
 (भेद्योक्ते असंख्यातर्षाभाग प्रमाण - असंख्यात प्रमाणगणनामे अनुक्रमसेहोना )  
 = गानना वादिप इस प्रकार तीन आदिक भी  
 = अनुभागर्षय अध्यवसाय स्थान (अनुक्रमसे) होते होते  
 = असंख्यलोक - परिसमाप्तेः ॥ एवम् ० बा ३ ॥ एवम् ० = असंख्यात लोक परिपूर्ण तक होते है (तक) वास्तविक (= एकम्) बोधी  
 स्थितिम् ३ ॥ आगममानस्य ३ द्वितीयम् ३ ॥  
 कपाय - अध्यवसायस्थानम् ॥ मवति तस्यर्षे ॥ अपि ० = रूपाय अध्यवसाय स्थान शब्दार्थे तिस (द्वितीय कपायाध्यवसाय भावस्थानके) भी

वेदितव्यानिः ॥ एवम् ० तृतीयादिपुः ॥ अपि ०  
 अनुभवअध्यवसायस्थानेषु ३ ॥ आ ०  
 असंख्यलोक - परिसमाप्तेः ॥ एवम् ० बा ३ ॥ एवम् ०  
 स्थितिम् ३ ॥ आगममानस्य ३ द्वितीयम् ३ ॥  
 कपाय - अध्यवसायस्थानम् ॥ मवति तस्यर्षे ॥ अपि ०







एवनिवासी बगलसहाय बहोब छव परखेद और विपत्तयर्ष सतिव सर्वाभिसिद्धिदिका शक्यः शिवीअनुवाव कप्याय २ सूत्र १०  
 सञ्चा पयडिद्धिदिओ अणु भागपदेसव धठाणाणि । मिच्छत्तसंसिदेण य भमिदा पुण  
 भावससारे ॥ १ ॥ उक्तात्पञ्चविधासारास्त्रिवृत्ता ये तेसुक्ता । संसारिणां प्रागुपादान तस्यूर्वक-  
 त्वान्मुक्तव्यपदेशस्य ॥ य एते संसारिणस्ते द्विविधा —

मत्वा १॥ परदि-द्विदिमा १॥ (सवाः १॥ मकृति-स्मितय १॥) =समस्त मकृति बंध(और) स्थितिवंध  
 अनुयाग-यदस-बंध(=अनुयाग-मत्थापन्य) =अनुयाग बन्ध(और) प्रदेश बन्धके  
 गणालि १॥ मिच्छयसंसिदेण १॥ (स्यानामि मिथ्यात्वससर्गोक्) =स्यान मिथ्यात्वके संसर्गाकरि  
 य ० भविदा १॥ पुण ० भावससारे १॥ (व भ्रमिता १॥ पुन-भावससारे १॥) =श्री(=ब=व)निबन्ध(=दुन)भाव ससार में  
 =अधमेजाते हैं भावार्थ इस जीवने भाव संसार विपै ब्रमण करि करि मकृति-  
 बंध, स्थितिवन्ध, अनुयागपन्ध और प्रदेश बंधके समस्त स्वार्थको  
 निबन्ध करके प्राप्त किया है ॥  
 =कथित (वा उपयुक्त) पांच प्रकारके संसारसे उद्विग्नदुये  
 =ने (जीव) वे मुक्त (=सिद्ध हैं) संसारियोंका (इस सूत्र में) परिले प्रकरणे  
 =व्योंकि जोसका कथन वा उपदेश उस (संसार)पूर्वक वा संसार निषिचक है  
 अर्थात् जोसके व्यपदेशका संसार कारण है ॥  
 यदि समार न हावा या मोक्षमी न होती पयोकि मोक्ष सवारी नीवोकी होती है जब वेही नही तो मोक्ष किसकी  
 हाती और जब प्राप्त गपन न हाता अथवा मोक्षका अस्तित्व न होता तो फिर व्यपदेश मोक्षका कैसे संभव होता  
 वे १ एते १ संसारिण १ ते १ दिविपाः १

संसारियोंके अेर बहुत हैं और जोस जीवनेके अोर सेर नहीं है तथा संवारी जीव अनुभव सींचर है और मोक्ष अत्यन्त परोच है इस दो  
 कारणों की संभारियोंका अत्यन्त प्रत्यक्ष है १ परबन्ध जोस जीवनेका अर्थ है १

पठानिामी नगरुपमाय वहील कृत पदच्छदं चार विभक्त्यय सतित सर्वाप्यसिद्धिका शब्दश विन्दीभुजाद अप्याय २ सूत्र १०

सिद्धि  
२सुत्र११

॥ समनस्कात्मनस्काः ॥ ११ ॥

मनो द्विप्रिय, द्रव्यमनो भावमनश्चेति ॥ तत्र पुल्लविपाक्रिमोदयापेक्ष द्रव्यमन ॥ वीर्या-  
न्तरायनोइन्द्रियावरणज्योपगमापेक्षया आत्मनो विशुद्धिर्भावमन ॥ तेन मनसा सह वर्तन्त  
इति समनस्का । न विद्यते मनो येषां त इमे अमनस्का ॥

समनींस्काऽमनंस्का ॥ ११ ॥

सत्सारी(जीव)समीपासैनी(=समनस्क) और(=व) असंज्ञीवा असैनीअमनस्क  
अर्थात् जो मनसहित है वे समनस्क संज्ञी वा सैनी हैं और जो मनरहित हैं  
वे अमनस्क असंज्ञी असैनी हैं यावर्षां वा शिवे मवर्तने और अशितसे दूर रहनेकी शिष्टाव्रण  
करता है वसंज्ञी है और वा शिष्टा क्रिया उपदेश्य इत्यादिकाव्रण नहीं करता है वह असंज्ञी है ॥

मनसः ॥ द्विषिष्युः ॥ द्रव्यमनः ॥ भावमनः ॥ चक्षुःशक्तिः ॥ मन वा प्रकार है द्रव्यमन और भावमन  
तत्र बुद्धत्व - विपाक्रिमं शब्द - अपेक्षयुः ॥ द्रव्यमनः ॥ ॥  
= वहाँ मुख्य विपाकीकर्मकृत्विक शब्दकी अपेक्षा जिसको तो द्रव्यमन है  
अर्थात् जो इत्यस्थानविषे अष्ट पाँचुड़ीका फलकमणके आकार सूक्ष्मशुद्धका  
प्रयत्न विष्टा है तो द्रव्यमन है

वीर्यनिरायनाइन्द्रिय - आवरणज्योपशम -  
अपचया ॥ आत्मनः ॥ विशुद्धिः ॥ भावमनः ॥ तेनैव ॥  
मनसा ॥ सह ॥ वर्तन्त ॥ (=वर्तन्ते) ॥ शक्तिः ॥ समनस्काः ॥  
न ॥ शिष्योऽमनः ॥ ॥ पण्ययुः ॥ (=ते) ॥ द्रव्यमनस्काः ॥ ॥  
= नही है विद्यमान वा वर्तमान (=विद्यते) मन भिन्नकृते इतने अमनस्का हैं

(१) समनस्काऽमनस्काः यह वाक्य ब्रह्म समाप्त है इसमें अनुष्ठान आरम्भ के बाद ही समनस्का का अर्थ है।  
आत्मा (समनस्का) व अमनस्का (जीव) आरम्भ से अनुष्ठान के बाद ही समनस्का का अर्थ है।  
अनुष्ठान के बाद ही समनस्का का अर्थ है।  
अनुष्ठान के बाद ही समनस्का का अर्थ है।

एगनिवासी श्रावणसहाय षडोक्ष ऊव पदभेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वाथ सिद्धि का शब्दशः हिन्दी अनुवाद अध्याय २ सूत्र ११, १२  
 एम् मनसो भावाभावाभ्या ससारिणो द्विविधा विभज्यन्ते । समनस्काश्चासमनस्काश्च समनस्काम-  
 नस्का इति ॥ अभ्यर्हितत्वासमनस्कशब्दस्य पूर्वनिपात ॥ कथमभ्यर्हितत्व ? । गुणदोषविचा-  
 रकत्वात् ॥ पुनरपि संसाहिणां भेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

## संसारिणाञ्चसस्थावराः ॥ १२ ॥

एवम् ० मनसः ॥ याव-अभावाभ्याम् ॥  
 संसारिणाः ॥ द्विविधाः ॥ विभज्यन्ते ॥ समनस्काः ॥ १० ॥ संसारी (जीव) दो प्रकारमें विभाजित हैं या विकल्पनीय हैं और (च) समनस्का  
 अपनस्का ॥ १० ॥ च ॥ समनस्कापनस्काः ॥ इति ॥ = और (=च) अपनस्का पदोंका दृढ़समासमें समनस्कापनस्का ऐसा (वास्य) हुआ  
 अभ्याहितत्वात् ॥ ११ ॥  
 समनस्कापनस्कापूर्वनिपात ॥ ११ ॥ अभ्यर्ह्यम् ॥ अभ्यर्हितम् ॥ = समनस्क शब्दका पहिले श्रवणहै (पशु, ऋषे, भेषुपना वा पूज्यपना (समनस्कशब्दके) है  
 गुणदोषविचारकत्वात् ॥ ११ ॥  
 पुनरपि ॥ संसारिणां ॥ भेदप्रतिपत्त्यर्थम् ॥ आह ॥ = फिर भी संसारी जीवोंके भेद जाननेके लिये कहते हैं कि

## संसारिणोऽसस्थावरा ॥ १२ ॥

संसारिणः ॥ असस्थावराः ॥ पशवन्ति ॥  
 संसारी (जीव) इस और स्थावर हैं अर्थात् हीन्द्रिय (स्पर्शन और रसना सहित)  
 श्रेन्द्रिय (स्पर्शन, रसना और नासिका सहित) चतुरिन्द्रिय (स्पर्शन, रसना, नासिका,  
 श्रुति सहित) और पंचेन्द्रिय (स्पर्शन, रसना, नासिका, श्रुति, और कान सहित) जीवोंका  
 भेद कहते हैं और एकैन्द्रिय (त्वक्मात्र सहित) जीवोंको स्थावर कहते हैं ॥

पदभेद श्रीर विभक्त्यर्थ सहित इस चारहवां सूत्रपर सर्वाथ सिद्धि वृत्तिका गुणदोषाः हिन्दी अनुवाद

(१) इस सूत्र का पाठ शान्ति श्रवणसहाय के कोट के अर्थ भी एक है (१) पशवन्ति अर्थात् जानते हैं। अर्थात् संसारी जीव  
 पशु जगत्प्राणर हैं जैसा कहते हैं यह पशव पशुका कि मुक्त जीव जन्म जन्म के लिये न जानते हैं कि

एयानिवासी अगुरुपताय पकीवा कृत पदपदेव और विमलस्यैसहित सर्वायसिद्धिका शब्दशः शिविभुवनाय अथाप २ सूत्र १२  
 ससारिग्रहणमनर्थक, प्रकृतत्वात् ॥ क प्रकृतः । ससारिणो मुक्ताश्चेति । नानर्थकम् । पूर्वार्थ-  
 पेदार्थ, ये उक्ता समनस्कामनस्कान्थेति संसारिण इति ॥ यदि हि पूर्वस्य विशेषण न स्यात्,  
 समनस्कामनस्कग्रहण संसारिणो मुक्ताश्चेत्यनेन यथासुरूपमभिसंबध्येत । एवं च कृत्वा संसारि  
 ग्रहणमादौ क्रियमाणमुपपन्न भवति । तत्पूर्वार्थसं सद्गुत्तरार्थमपि भवति ॥

प्रकृतत्वात् ॥ = (आचार्यसे शिष्यका मरने) प्रकरण वा प्रसंग वा प्रसंगके कारणसे ( इस सूत्र में )  
 संसारिग्रहणम् ॥ अनर्थकम् ॥ क ? यकृतम् ॥ = संसारीका उपायन (आरण्य) निरर्थक है (शिष्यके प्रकरण आचार्य) कर्ता प्रकरण है ।  
 संसारिणः मुक्ताः ॥ पूर्व-अयेता-अयम् ॥ = शिष्यका उपर) संसारिणो मुक्ताश्च देसा दृशयं दृश्यं प्रकरण है (आचार्यकाउपर)  
 न ० अनर्थकम् ॥ पूर्व-अयेता-अयम् ॥ = (इस दृश्यमें संसारीका ग्रहण) निरर्थक नहीं (इससे) गणित (दृशके) सम्बन्धके शिष्येग्रहणदे  
 ये उक्ता समनस्कामनरका ॥ च ० इतिसंसारिण इति ॥ = कि य कथित समनस्क और समनस्क संसारी (जीव) है  
 यदि ० रिभूर्वस्वम् ॥ विजयण्यम् ॥ न स्यात् । समनस्क ० ययौकि (=रि) ओ (यदि) पहिल ११ नें सूत्रका निशेषण म हाता तो समनस्क  
 समनस्कग्रहणम् ॥ संसारिणः मुक्ता ॥ च ० इतिभिननम् ॥ = यथासुरूप सम्बन्ध राजावा (आचार्य) यदि इसचारवा दृश्यसे ग्यारहवा सूत्रके  
 १ थासंस्वम् ॥ अयिसम्बन्धपठ १  
 सूत्रकाशिशेषण संसारी शब्द आकर नकिया जाता ता दृश्यमें सूत्रके संसारी शब्दका ग्यारहवा सूत्रके  
 समनरका शब्द स और मुक्त शब्दका समनरका शब्द से सम्बन्ध होकर देसा अनिष्ट अर्थ होजाता है  
 कि संसारी जीव है वे मनरका वा मन सहित हैं और मुक्त जीव हैं ते समनरका न मन सहित हैं ॥  
 एषम् च ० उक्ता संसारिग्रहणम् ॥ आदौ क्रियमाणम् ॥ = ऐसे करके (सदृश्यमें) संसारीका उपायन वा ग्रहण आदि विपरीकरना (क्रियमाण)  
 उपायम् ॥ पठति ।  
 तत् पूर्व-अयेताम् ॥ सत् ।  
 उपर-अयम् ॥ अति ० पठति ।









एतन्निवासी आगरूपसहाय यदोष इव इदमेवै- और विषमस्वयंसीदिव सर्वाविसिद्धिः  
 उल ध्यानुपूर्वीं स्थावरभेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ पृथिव्यसे जीवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥ १३ ॥  
 स्थावरनामकर्मभेदा पृथिवीकायिकादय सन्ति,

वस्तुष्य—आनुपूर्वीं स्थावर—भेद प्रतिपत्ति-अर्थः ॥ आह—(इयनकारक)अप(=आनुपूर्वी)भेद करस्यापके भेद कहनके अिये करते हैं कि

पृथिवी-अग्-तेजस्-वायु-वनस्पतयः स्थावराः ॥ पृथिवी कायिक, अग्नायिक, तेजासायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक स्थावर(जीव) हैं  
 इपयुवाद्-स्थावरनामकर्मभेदाः पृथिवीकायिकः—स्थावरनामा नाम लक्ष्मी मकृत्तिक भेद पृथिवीकायिक  
 आदयाः ॥ सन्ति ।

(१) शोनों आसामोंके १३ १४ सूक्तका पाठ भेद और अथ भेद एकसाथ लिखनेसे उपान्त होगा । इसलिये नीचे शोनों आसामोंके चारो वृत्त लिखते हैं  
 पृथिवीकायिक, अग्नायिक, वनस्पतिकायिक, वायुकायिक, वनस्पति कायिक (=आद्यः) हैं  
 वातस्त्रियपालस पाँच इन्द्रियपाले ब्रह्म जीव हैं ॥ ४१ ॥ तत्रोपायु इन्द्रियपालपायस ब्रह्माः समाप्य० में १४ वां सूक्त ४२  
 यहाँके १३ वां सूक्तके श्लोकान्तर आसामय के १४वां सूक्तमें अन्तगत हैं यह वा शोनोंके १३ वां सूक्तके मिलाकरसे मात है कि तेजस् पायु शो ४२  
 परतु श्लोकान्तर आसामयें तन्त्र भ्रत जीव माना है असा कि समाप्य० के १४ वां सूक्त और हमारे यहाँके १३ वां सूक्तमें हमारे  
 तन्त्रपयें शोनों आसामयें शोनों बानी वृत्तों का एक ही अर्थार्थ पृथिवी कायिक, अग् (अन) कायिक वनस्पति कायिक को भावर जीव माना है  
 और शो इन्द्रियपालस, तीव्र इन्द्रियपाल जीव चार इन्द्रियपाल जीव पाँच इन्द्रियपाले जीवोंको शोनोंमें ब्रह्म माना है । अथोपे  
 सो काय है । जीव संहित दो सौ कायिक हैं । यहाँ पर जीव संहित से अर्थमाय है । तर्कायें सारक्यायिक सूक्त ३२४ के निम्न वाक्यमें कायिक शब्द  
 भाये हैं । पृथिवी कायिकादि नामकर्मोपकरणपृथिव्यायुवो जीवमपृथिवी कायिकायुवो भावरात मन्त्रे— । न पुनर् जीवास्तेषाममस्तुतत्पार ॥

(२) पृथिवी कायिक, अग्नायिक, तेजासायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और वनस्पतिकायिक स्थावर(जीव) हैं  
 इपयुवाद्-स्थावरनामकर्मभेदाः पृथिवीकायिकः—स्थावरनामा नाम लक्ष्मी मकृत्तिक भेद पृथिवीकायिक  
 आदयाः ॥ सन्ति ।



उत्तरत्रयेऽपि सद्भावात् । काय शरीरं पृथिवीकायिकजीवपरित्यक्तं पृथिवीकाय । मृतमनुष्यादिका यवत् । पृथिवीकाय अस्यास्तीति पृथिवीकायिक । तत्कायसम्बन्धवशीकृत आत्मा समवाप्तपृथिवीकायनामकमेन्द्रिय कर्मणः काययोगस्थो यो न तावत्पृथिवी कायत्वेन गृह्णाति स पृथिवीजीवः

उत्तरत्रये ३ अपि \*  
 सद्भावात् ३ काय ३ शरीरम् ॥ पृथिवीकायिकजीवः  
 परित्यक्त ३ ।  
 पृथिवीकाय ३ इत-मनुष्यादिकायवत् \*  
 पृथिवीकाय ३ अस्ति इति पृथिवीकायिक ३ ।  
 = अर्थात् भगवते त्रीनों में (पृथिवीकाय, पृथिवीकायिक, पृथिवीजीव) में भी (परब्रह्म) = विषयमान है । काय वा शरीर वा पृथिवी कायिक जीवकारि  
 = व्यापित होगा या है अर्थात् जिसमेंसे पृथिवी कायिक जीव उत्पन्न निकल गया है  
 = सो पृथिवीकाय है । यद्युपे मनुष्यादिकके शरीर सरण ( पृथिवी काय ) है  
 = पृथिवीकाय जिस (जीव)के है ऐसा (जीव) पृथिवी कायिक है ॥ "सा यदु"  
 जीव "पृथिवी शरीरके संबंध में" अथवा "पृथिवीकाय पृष्ठ २५६ अर्थात् जिस जीवका उस पृथिवी कायसे संबंध है वह पृथिवी कायिक है ॥  
 = उस (पृथिवी) शरीरके संबंध बशीभूत आत्मा ( अन्य कायके शरीरसे छूटकर )

वत्काय-सम्बन्धवशीकृत ३ आत्मा ३ ।

समवाप्त(सम्-आप्त) पृथिवीकायनामकमेन्द्रिय ३ ।

कार्यकाययोगस्थ ३ प ३ ।

मत्वावत्पृथिवीमूले ॥ कायत्वेन ३ सुखाविस-पृथिवीजीव ३  
 अर्थात् जिस जीवके पृथिवी कायिक नामकमेन्द्रिय का उदय है परंतु पृथिवीको काय-  
 स्वस्वसे ग्रहण न कर वह कामकायकाययोगमें ही विद्यमान है वह पृथिवीजीव है

आचार्य काई जीव किसी शरीर में था उसने अपनी भावपूर्ण करने पर उस शरीर को त्यागकर पृथिवी काय नामा नामकमेन्द्रिय पृथिवीके उदयसे पृथिवी कायिक होने वाला है वही उस जीवको विग्रहगति (=नया शरीर धारण करने के लिये गमन स्वस्था)में कार्यकाय योगमें मितन काल तक विग्रहगति है वह तक वह जीव पृथिवी काय वा शरीरको ग्रहण करनेमें असमर्थ है उस काल तक उसको पृथिवी जीव कहेंगे । उक्त विग्रह काल किसी जीवका एक समय, किसी जीवका दो समय, किसी जीवका तीन समय तक होता है तीन समय से अधिक नहीं हो सकता है ॥ आर विग्रह गति में ( जीवके ) कर्मकाण्ड योग रहता है ॥

उक्तं च—पुढवीपुढवीकायो पुढवीकाइय पुढविजीवो य । साहारणोपमुक्को सरीरगहिदो  
भनतरिदो ॥ १ ॥ एमत्रादिष्वपि योज्यम् ॥ एते पञ्चत्रिंशत् प्राणिन स्यावरा । कति पुनरेषां  
प्राणा ? चत्वार । स्पृगनिन्द्रियप्राण कायबलप्राण उच्छ्वासनि श्वासप्राण आयु प्राणश्चेति ॥  
अथ नसा के ते इत्यत्रोच्यते ॥

उक्तं च । पुढवीपुढवीकायोऽपि (पुढवीपुढवीकायः २)

पुढवीकायोऽपि (पुढवीकायः २) पुढवीकायः २

माहारणोपमुक्को (मापारण-उपमुक् २)

सरीरगहिदो (गरीरगहिदो २)

भनतरिदो (भनानतरिदो २)

= बहुरि कदागया हे कि पुढिनी, पुढिनीकाय,

= पुढिनीकायिक और (अ=च) पुढिनानोच हे

= (सा यद पुढिनी)साधारण है । जिससे जीव अपनी निकला है (सो

= शरीरस्थित वा शरीर सहित जीव है (सा पुढिनी कायिक है)

= अन्तर अस्वावाला वा विभ्रगतिसहितजीव है (सो पुढिनी जीव है)

माधायं पुढिवा, पुढिनीकाय, पुढिनी कायिक और पुढिनी जीव ये चार

यद पुढिनीक है । उनमें अत्यन्त स्वभावसिद्ध परिणामस रहित और कठिन्ता आदिगुण स्वरूप पुढिनी कही जाती है

इतनीय पुढिनी यह एक साधारण भार सामान्यनाम ही है ॥ (२) कायका अर्थ शरीर है पुढिनी कायिक कही जाती है

जि शरीर का छद्म दिया है वह पुढिनीकाय कदागया है यह मरे हुए पशुव्यादिक जीकाय(काया)के समान है,

(३) शरीर इदीन वा शरीर प्रसित जीव अर्थात् वह पुढिनी जिसमें इस समय जीव विद्यमान है वह

पुढिनीकायिक है ॥ (४) जिस जीवके पुढिनीकायिक नामककाठद्वय है परतु पुढिनीका काय स्वरूपसे ग्रहण

न कर वह कामाणकाय यागवैदो नियमान है अर्थात् विभ्रगति अस्वत्वा में है यदपुढिनीजीव है ॥

= एत अर्थात् कायिकेपी (चार चार भेद) लगाना पाण्य है

पशुम-आदिपुढिनीकायम् २ ॥

पशुम-आदिपुढिनीकायम् २ ॥

पशुम-आदिपुढिनीकायम् २ ॥

पशुम-आदिपुढिनीकायम् २ ॥

पदानिवासी जगत्प्रसाप बकील इव पदेष्वेव और निमग्नस्यं सरित सवर्षासिद्धिका शुष्यत इत्दी अतुबाद अण्पाय २ मूल १४

## ॥ द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥ १४ ॥

द्वे इन्द्रिये यस्य सोऽयं द्वीन्द्रियः, द्वीन्द्रिय आदिर्येषां ते द्वीन्द्रियादय ॥ आदिशब्दो व्यवस्थावाची । कव्यवस्थिता । आगमे । कथम् । द्वीन्द्रियस्त्रीन्द्रियश्चतुरिन्द्रिय पञ्चेन्द्रियश्चति ॥ तद्गुणसन्निधानवृत्तिप्रहणात् द्वीन्द्रियस्याप्यन्तर्भावः ॥

सूत्रम्—

द्वीन्द्रियौदयत्वसं ॥ १४ ॥

यस्यार्थं—द्वि इन्द्रिय-आदयः १, त्रसाः २।

इत्यनुगाया—इ २, इन्द्रिये ३, पस्य ४, सा ५ अस्मरे ६, इन्द्रियः १।

द्वीन्द्रियः १ आदि २, तेषां ३, द्वे ४, इन्द्रिय-आदयः ५।

आदिशब्दः १, म्यवस्थावाची २।

इ ३, म्यवस्थिता ४, आगमे ५, इत्यम् ६।

द्वीन्द्रियः १, त्रैन्द्रियः २, चतुरिन्द्रियः ३, पञ्चैन्द्रियः ४, इति ५।

तद्गुणसंनिधानवृत्तिप्रहणात् १।

द्वीन्द्रियस्य १, अपि २, अन्तर्भावः ३।

असि पदार्थके पीठे आदिशब्द आता है तो पर अपने पालके पदार्थको प्राप्त करते हुये दूसरी छेप

बस्तुओंको भी गिना देता है जैसे इस दृष्टमें आदि शब्दने अपने परिलेकी संख्या द्विन्द्रियकी गणना करतेहुये

—द्वो इन्द्रियोंको आदिकेकर (पंचैन्द्रियकर) त्रस (तीन) है अर्थात् चोइन्द्रिय

द्वो इन्द्रिय धाराइन्द्रिय, पंचैन्द्रिय तीन आगम्ये त्रसनामसे व्यबस्थित है ॥

द्वो इन्द्रिय अत्रके सो या दो इन्द्रिय है (और )

द्वो इन्द्रिय हैं आदिये निकले वे द्वीन्द्रिय आदि हैं

—(दृष्टये) आदिशब्द मर्यादावाची है अर्थात् इन्द्रियोंकी गणनाको परमितकरवाची

—(मरन) करी म्यवस्था वा मर्यादा है । (उचर) आत्मोपे है (मरन) कैसे हैं

—(उचर) श्रो इन्द्रिय, शीन इन्द्रिय, शार इन्द्रिय, और पांच इन्द्रिय, शाले जीव है

—तद्गुणसंनिधानवृत्तिप्रहणात्के उचदानके निमित्तसे है

—द्वो इन्द्रियवालेका भी आदिशब्दविशेष) प्रहणा (—अन्तर्भाव) है अर्थात् इस समास में

(१) दोनो आवायोंमें इस मूलके पाठ और अर्थमें जो भेद है वह एक अनुबादके ठेरहनां सूत्रमें विभाजया है । (२) मर्यादावाची तेन एव द्विन्द्रियापूर्व च द्विन्द्रियारिजीवो न मक्यान्वमित्याय ॥ (३) तद्गुणसंनिधानवृत्तिप्रहणात्के उचरएव संमक्यर्थः । म्यवस्थावस्थितिकामे बहुपताः ३



प्यानिसी जगत्साराय इकील क्व एतच्छत और नियन्त्रय सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दरा हिन्दी मनुवाद् अर्थात् २ सूत्र १४

### ॥ द्वीन्द्रियादयस्त्रयाः ॥ १४ ॥

द्वे इन्द्रिये यस्य सोऽयं द्वीन्द्रियः, द्वीन्द्रिय आदियेषां ते द्वीन्द्रियादय ॥ आदिशब्दो व्यवस्थावाची। क व्यवस्थिता। आगमे। कथम्। द्वीन्द्रियत्वीन्द्रियश्चतुर्दिन्द्रिय पञ्चेन्द्रियश्चति ॥ तद्गुणसंविज्ञानवृत्तिग्रहणात् द्वीन्द्रियस्याप्यन्तर्भावः ॥

सूत्रम्—

द्वीन्द्रियौदयस्त्रयैः ॥ १४ ॥

व्याख्यं—द्वि-इन्द्रिय आदयश्चेति।

द्वौ इन्द्रियोक्तो आदिकेकर(पंचेन्द्रियतक)त्रय (तीन) है अर्थात् दोइन्द्रिय दोनइन्द्रिय पाएइन्द्रिय,पंचेन्द्रिय जीव आगममें प्रसनापसे व्यवस्थित है ॥

द्वौ है इन्द्रिय जिसके सो यह दो इन्द्रिय है (और)

द्वौ इन्द्रिय है आविमें बिनके ते द्वीन्द्रिय आदि है

=(श्रवण)आदिशब्द मर्यादावाची है अर्थात् इन्द्रियोंकी गणनाको परमितकराही

=(मरन)करा व्यवस्था वा मर्यादा है। (उप)शब्दोंमें है (परन्तु) कैसे है

=(वत्तर)दो इन्द्रिय,तीन इन्द्रिय,चार इन्द्रिय,और पांच इन्द्रिय,बाले जीव है

=(वदगुण)संविज्ञानवृत्तीसिमासके तपदानके निमित्तसे है

=द्वौ इन्द्रियवाचका भी(आदिशब्द)अर्थ(=अन्तर्भाव)अर्थात् इस समास में

जिस मर्यादके पीछे आदिशब्द आता है वो वर अपने परसेके पदार्थको ग्रहण करते हुये दूसरी श्रेण

पदार्थोंको भी गिना देता है जैसे इस सूत्रमें आदि शब्दने अपने परसेकेकी संख्या द्विइन्द्रियकी गणना करतेहुये

सर्वार्थ

याय

५३

(१) दोन आद्यायोंमें इस सूत्रके पाठ और अर्थमें ओ भेद है वह इस मनुवाकके ठेकरही एकमें विभागका है ॥ (२) मर्यादावाचको,तेन पञ्च इन्द्रियादय चतुर्दिन्द्रियोक्तो मन्वोत्वमित्याका ॥ (३) वदगुणसंविज्ञानवृत्तीसिमासके उपशब्दके सम्बन्धमें ॥ अथवदगुणसंविज्ञाने मनुपता ॥







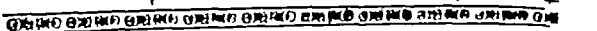
कति पुनरेषा प्राणा ? द्वेन्द्रियस्य तावत् षट् प्राणा पूर्वोक्ता एव रसनवाक्प्राणाधिका । त्रीन्द्रियस्य सप्त त एव घ्राणप्राणाधिकाः । चतुरिन्द्रियस्याष्टौ त एव चक्षु प्राणाधिकाः । पंचेन्द्रियस्य तिरथोऽसन्नो नव त एव श्रोत्रप्राणाधिका । सन्नो दश त एव मनोबलप्राणाधिका ॥  
आदिशब्देन निर्दिष्टानामनिर्हातसंख्यानामियत्तावधारण कर्तव्यमित्यत आह

षिन्द्रिय, षट् इन्द्रिय पंचेन्द्रिय, को भी प्रस नीबोके वेदोमं गिना दिया ॥  
= (रसन)शुनि क्वितने इन(मस्के द्रीन्द्रिय-मीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रिय)के प्राणैरे  
दि-न्द्रियस्पर्श तावत् षट् प्राणाः पूर्वोक्ताः एव चन्द्रियमीबके प्रमाण है । प्रथम कथित ही (वार स्पशनेन्द्रियमाण,  
कायबलमाण, उच्छ्वासनिारवासमाण, और आयुमाणजोकेन्द्रियमीय कैतोते है ) है  
= रसनान्द्रिय, रसनबल प्राण, अपिक है  
= वीनेन्द्रियमीबके सात(माण) है । वे ही (छात्रमीर) नासिका इन्द्रियभिनके अपिक है  
= चतुरिन्द्रियमीबके, आठ (माण) है वे (=वे)ही (=एव-सात) (मीर)चक्षुर्मण्यभिनके  
= अपिक है । पंचेन्द्रिय विर्यव असेनीके नो ( प्राण ) है  
= वी(आठ)(मीर)के इन्द्रियमाण भिनके अपिक है । (रसमूत्रमं) आदि शुश्वकर्णि  
= वी(मीर)के इन्द्रियमाण भिनके अपिक है । (पस्त) पिनामानो इरे गणनामीकी मर्यादा  
= पदेयहीदुरे (=निर्दिष्टानाम्) (पस्त) पिनामानो इरे गणनामीकी मर्यादा  
= निश्चय कराना (=अपधारणम्) कर्तव्य है वा निश्चयकरना बाहिये मतः करते है कि

= मयाप्राणावक (= व्यवस्थापकी) है तिस (आदि शुश्व) करि पंचे इन्द्रियसेक पर  
= वैन्द्रियमिजीब नहीं होतेही । एसाथयुगलमयसुषोमैआदियुगलकोम्यवस्थापकी है  
= चतुर्युगलपंचेन्द्रियीह समासमें युगल समुच्चय है वा सम्येकानवाका है  
= (मीर)के उच्छ्वासनिारवासमाण (चक्षुमीदिष्टिमाणमें) युगलमयैपगणितसंकेसा (व्यापार) है ।  
= एकरणमें मीरपीबस्थापीमें अपिक युगलचक्षुबलमते है इससेअनुवाकचक्षुबलमते है न

इतिः पुनः षट्प्राणः प्राणाः ?  
दि-न्द्रियस्पर्श तावत् षट् प्राणाः पूर्वोक्ताः एव चन्द्रियमीबके प्रमाण है । प्रथम कथित ही (वार स्पशनेन्द्रियमाण,  
कायबलमाण, उच्छ्वासनिारवासमाण, और आयुमाणजोकेन्द्रियमीय कैतोते है ) है  
= रसनान्द्रिय, रसनबल प्राण, अपिक है  
= वीनेन्द्रियमीबके सात(माण) है । वे ही (छात्रमीर) नासिका इन्द्रियभिनके अपिक है  
= चतुरिन्द्रियमीबके, आठ (माण) है वे (=वे)ही (=एव-सात) (मीर)चक्षुर्मण्यभिनके  
= अपिक है । पंचेन्द्रिय विर्यव असेनीके नो ( प्राण ) है  
= वी(आठ)(मीर)के इन्द्रियमाण भिनके अपिक है । (रसमूत्रमं) आदि शुश्वकर्णि  
= वी(मीर)के इन्द्रियमाण भिनके अपिक है । (पस्त) पिनामानो इरे गणनामीकी मर्यादा  
= पदेयहीदुरे (=निर्दिष्टानाम्) (पस्त) पिनामानो इरे गणनामीकी मर्यादा  
= निश्चय कराना (=अपधारणम्) कर्तव्य है वा निश्चयकरना बाहिये मतः करते है कि

(२) मर्यादापकी, तेम । पंचेन्द्रियम्, ऊर्ध्वम्  
चन्द्रियमिजीब ? नभ्यन्ति इति मर्यादायाः ?  
(३) चतुर्युगलपंचेन्द्रियीह समासमें युगल समुच्चय है वा सम्येकानवाका है  
= चतुर्युगलपंचेन्द्रियीह समासमें युगल समुच्चय है वा सम्येकानवाका है  
= (मीर)के उच्छ्वासनिारवासमाण (चक्षुमीदिष्टिमाणमें) युगलमयैपगणितसंकेसा (व्यापार) है ।  
= एकरणमें मीरपीबस्थापीमें अपिक युगलचक्षुबलमते है इससेअनुवाकचक्षुबलमते है न





सूत्र १६

पठानिवासी शगरूपसायय बकील कुव पदच्छेद और विषयस्यर्प्यं सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः

तेषामन्तर्मेदप्रदर्शनार्थमाह  
द्विविधानि ॥ १६ ॥

द्विविधानि ॥ १६ ॥  
द्विप्रकारणीत्यर्थ ॥ कौ पुनस्ती ह्यौ  
विधशब्द प्रकारवाची, ह्यौ विधौ येषां तानि द्विविधानि, द्विप्रकारणीत्यर्थ ॥ कौ पुनस्ती ह्यौ  
प्रकारौ? । द्रव्येन्द्रियं भावेन्द्रियमिति ॥

सर्वार्थ  
अप्याय २  
५६

को पदार्थ ज्ञान और दर्शन स्वरूप उपयोगमें कारणों उसीकानाम इन्द्रिय माना है । स्थानभादि पांच

इन्द्रियों उपयोगमें कारण है इसलिये उन्हें इन्द्रिय मानना युक्त है । बाहू पाणि पांच गुदा और किंग उपयोगमें  
कारणनी, इसलिये उन्हें इन्द्रिय नहीं कहा प्रासक्तता यदि यहाँपर जो क्रियाके साधनहों वे भी इन्द्रिय हैं यह इन्द्रिय  
सामान्यका लक्षण किया जायगा तो यद्यपि बोलना प्रादि क्रियाओंके कारणहोनेसे बाहू आदि इन्द्रियों की भावेंगी  
परतु क्रियाके साधन तो मस्तक आदि सभी कींग उपांग हैं । सर्वोक्तों इन्द्रिय कहना परैगा फिर किसको इन्द्रिय  
कहना किसको न कहना अपथा बाहू पाणि आदिपांचको कर्मैन्द्रिय कहना औरोंका न कहना यह अवस्थाही न बन  
सकेगी इस लिये जो क्रियाके साधन हों वे इन्द्रिय हैं यह इन्द्रिय सामान्यका लक्षण न मानकर जो उपयोगमें कारण  
हों वे इन्द्रिय हैं यही इन्द्रियका लक्षण मानना चाहिये। अतः जो सूक्ष्म कहीं वे उपयोगमें कारण हैं और वे ही इन्द्रिय हैं।  
= ज्ञान (इन्द्रियों) के प्रत्येक विधानके लिये (निम्नलिखित सूक्ष्म आचार्य) करते हैं कि

व्याप्यं भवत्तर्मेद-मरुतन-अर्पयेत् ॥ आशुः  
सूत्रम्—द्विविधानि = द्विविधानीन्द्रियाणि भवन्ति ॥ १६ ॥ ('इन्द्रिय' शब्दकी अतुवृत्तिपदग्रहणं सूत्रमेव)

सर्वार्थ - इन्द्रियाणि ॥ द्विविधानि ॥ यवन्ति ।  
इत्यर्थ - विपद्यन् ॥ प्रकारवाची ॥ दो ॥ विधा ॥ दोषात् ॥ (नरससूत्रम्) ॥ कियं शब्द प्रकारस्यैव है । दो है भवत्तर्मेद  
तानि ॥ द्विविधानि ॥ द्विप्रकाराणि ॥ अतिशयार्थः ॥ नो द्विविधानि है अर्थात् दोहो प्रकार सच इन्द्रिय है । येषामप्याय है  
कौ पुनस्ती ॥ दो ॥ पुनस्ती ॥ पुनस्तीन्द्रिय ॥ योवेन्द्रियस्य ॥ अति - फिर कौन का प्रकार है द्रव्येन्द्रिय आर भावेन्द्रिय येषे है

पदानिवासी श्रगकसासाप बर्हीलकव परच्छेय और विभक्त्यर्थं सशिव सर्वावर्षादिना शक्यश-रिन्वीभदुषाद भष्या २ सूत्र १८ =  
भावेन्द्रियमुच्यते—

॥ लब्धयुपयोगी भावेन्द्रियम् ॥ १८ ॥

लभ्यते लब्धि । का पुनरसौ ? । ज्ञानावरणक्षयोपशमविशेष ॥ यत्सन्निधानादात्मा द्रव्येन्द्रि-  
निवृत्तिरिति व्याप्रियते तन्निमित्त आत्मन परिणाम उपयोगस्तदुभय भावेन्द्रियमिन्द्रियफलम्

भावेन्द्रियम् ३॥ उच्यते ।

= यावन्निय क्रीमाधी है कि

लब्धयुपयोगी भावेन्द्रियम् ॥ १८ ॥

= लब्धि और उपयोग ( ये दो ) भाष इन्द्रिय है

सुषार्थ—लब्धि-उपयोगीभाव-इन्द्रियम् ३॥  
इत्यनुवाद-सुम्भनम् ३॥ लब्धिः ३॥ का ३॥ पुन ३॥ अतौ ३॥ = ज्ञान है (वर्ण) लब्धि है (परत) फिर वर (लब्धि) क्या (=का) है  
ज्ञानावरण-सामावरणीय कर्म का उपापशमरूप व्यक्तिका प्रकाश है (सो लब्धि) है ।  
अर्थात् ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशमोपशममेवात्मा हेतुवियुक्तवाक्यीशक्तिरेतोलब्धि है

यत्सन्निधानादात्मा ३॥ आत्मा हेतुव्येन्द्रियनिवृत्तिवद् ॥ अति ३॥ भिस (लब्धि) कृत्वाकारिभात्माद्रव्येन्द्रियरूप निर्देष्टि मति  
न्यानिवृत्ते तत्-निमित्तः ३॥ आत्मनः ३॥ परिणाम-उपयोग ३॥ अथापारकरवारे, मन्वरोरे तस लब्धिनित्कभात्माका (विपयमति) परिणामन उपयोगे  
अर्थात् जो इयके आकार परिणामरूप ज्ञानरो सो उपयोग है  
वदौ ३॥ उभयम् ३॥ भावेन्द्रियम् ३॥ इन्द्रिय-कृत्वा ३॥  
= एव हीनों भाष इन्द्रिय है । इन्द्रियका फल वा कार्य जो

( १ ) इस सूत्रका पाठ आर अर्थ दोनों संभवयुक्तों एक है । इस १८ वां सूत्र और स्वतन्त्र-रस-धातु-धनु-धागाणि उभीलवां सूत्रके मध्यमें  
शतमयप्रभाषाके समाप्यत्वात्सायापिगमसूत्र 'पृष्ठ ४४ में 'उपयोग इत्यर्थि' येसा सूत्र अर्थिद है ॥ स्पष्टावियु मतिज्ञानापरयोग इत्यर्थी ।  
स्वरा-रस-गन्ध-बर्ह-शब्द (इन्द्रियोंके विषयोंमें) मतिज्ञानका उपयोग होता है । येसा अर्थ इस सूत्रका है । हमारे यहाँ इसको मूलरूप नहीं माना है ।  
समाप्यत्वे श्रुतवाचकते यह दिव्ययी इस सूत्रमें दी है कि किसी किसीके मतमें यह मूलरूप नहीं है कोरे कहते हैं यह सूत्र सूत्र वा हेमाप्यत्वात्  
( २ ) जैसे किसी जीवकी सुम्भनेही शक्ति है परंतु उपयोग जो वैकल्पिक परिणाम है सो अर्थवरो अर्थ वस्तुओंमें लागता हो तो सुक्तानाहीं । और कोरे  
आत्मावाहाइ है और उपोष्यत शक्ति नहीं है तो आत नहीं उच्यता इसलिये लब्धि और उपयोग अब दोनों ही मिले तब शक्तिसिद्धि होती है ॥

एयानिवासो आरूपसहाय एकीकृत कृत परम्पदे और विमलत्यर्यसहित सर्वाथसिद्धिपिका शब्दशः हिन्दी अष्टादश प्रपाय २ एव १८  
 शुद्धानामात्मप्रदेशानां प्रतिनियतचतुर्गदीन्द्रियसस्थानेनावस्थिताना वृत्तिरभ्यन्तरा निवृत्ति ।  
 तेष्वामप्रदेशेष्विन्द्रियव्यपदेशमाद्यु य प्रतिनियतसंस्थानो नामकमौदयापादितावस्थ्याविशेष  
 पुटलप्रचय सा वाह्या निवृत्ति । येन निवृत्ते रूपकार क्रियते तदुपकरणम् ॥ पूर्ववत्तदपि द्विविधम्  
 तत्राभ्यन्तर कृष्णशुक्लमण्डलम् बाह्यमक्षिपत्रपद्महृयादि ॥ एवं शेषेष्विन्द्रियेषुज्ञेयम् ॥

शुद्धानाम् ॥ आत्ममरगानाम् ॥ मति-  
 नियतचतुः ॥ आदिन्द्रिय ॥ अस्यानम् ॥ अस्थितानां ॥ अक्षि-  
 अभ्यन्तरा ॥ निवृत्तिः ॥

=शुद्धचेतना वा आत्म्याके प्रदेशोंकी (केवल आत्म्याके प्रदेशोंकी)न्यारे न्यारे (=मति)  
 नियतचतुः ॥ आदिन्द्रिय ॥ अस्थितानां ॥ अक्षि-  
 अभ्यन्तरा ॥ निवृत्तिः ॥

बबकी पर्यनाखीक आकार सदृश, नासिका इन्द्रियके विषय पुण्य आकार समान, रसना इन्द्रियके अर्द्ध वक्रके आकारसम, स्पर्शन  
 इन्द्रियके अनेक प्रकारक मिय मिय आकारके समान, और इन सबका प्रमाण स्वरूप परिणत होना है वा अंतरण निवृत्ति है ॥  
 गणु ॥ आत्मप्रदेशेषु ॥ इन्द्रियस्यपदेशमाद्यु ॥  
 य ॥ मतिनियतसंस्थानाः ॥ नामकम् - वदय - आपादित -  
 अस्याविशेष ॥ पुटलप्रचयः ॥ सा ॥ आवासाः ॥ निवृत्तिः ॥

विशुद्धमात्मप्रदेशोंका जो भिन्न भिन्न रूपसे नेत्र इन्द्रियके परस्परके आकार, कर्ण इन्द्रियके  
 - तिन आत्म्याके (विशुद्ध) प्रदेशनिम्ने इन्द्रियनामके विद्यमानेपर वा धारनेपर  
 = आ प्रतिनियत (=न्यार न्यारे वा विपित) आकार सहित नामकर्मके उदयमनित  
 = विशेष दशा वा अवस्थ्यासहित पुटलके समूह सो वदिरंग निवृत्ति है । अर्थात्  
 वही आत्म्याके विशुद्ध प्रदेशोंमें इन्द्रियोंके नामसे कहेमानेवाले भिन्न भिन्न

पन ॥ निर्जन ॥ उपकार ॥ क्रियते ॥ तद् ॥  
 उपकारणम् ॥ पूर्ववत् ॥ अर्द्ध ॥ अक्षि ॥ द्विविधम् ॥  
 तत्र ॥ अभ्यन्तरा ॥ कृष्ण - शुक्ल - मण्डलम् ॥ आवासाः ॥  
 मक्षिपत्र - पद्म -  
 रूप आदि ॥ पुटलप्रचयम् ॥ इन्द्रियेषु ॥ ज्ञेयम् ॥

=मिससे नियुक्तिका उपकार क्रियावाता है वा सहायता कीमाती है वा  
 = उपकरण ही परखेकी मति (अर्थात् नैसि निवृत्ति) दो प्रकार है एक ही प्रकार है एक हीमाती है वा  
 = वहाँ (नेत्रविषय) अंतरंग (उपकरण) काका शुद्ध (वर्ण) अक्षय है । बाध (उपकरण)  
 = बाधनी (= पावण्य) या विभी (= अक्षिपत्र) और मौलके पटक (= अक्षि - पद्मना)  
 = आ आदि ॥ । उक्तेषु (स्पर्शन-श्रावण-रसना-श्रोत्र) इन्द्रियोंमें आत्मना आदि ॥

पुननिवृत्तौ ग्राह्यसमाय वशीकृत्य षडब्देद और विनस्तर्प्य सतिव सर्वार्थसिद्धिहा गुण्यकाः शिवीभनुबाद भाष्या २ सूत्र १८

भावेन्द्रियमुच्यते—

॥ लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥ १८ ॥

लम्भन लब्धि । क्व पुनरसौ? । ज्ञानावरणत्वयोपशमविशेष ॥ यत्सन्निधानात्मा द्रव्येन्द्रि-  
निवृत्तिप्रति व्याप्रियते तन्निमित्त आत्मन परिणाम उपयोगस्तदुभय भावेन्द्रियमिन्द्रियफलम्

भावेन्द्रियम् १॥ उपपत्ते १

० भाष्येन्द्रिय क्वीभावो रे कि

लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥ १८ ॥

द्वयार्थ—अस्मि-उपयोगौभाव-इन्द्रियम् १॥ =अस्मि और उपयोग ( ये दो ) भाव इन्द्रिय है

द्वयनुबाद—सम्भनम् १॥ अस्मि १॥ का १॥ पुन अमलौ १॥ =आम है ( नरी ) कस्मि है ((अन)किर वर(अस्मि) क्या (=का) है

ज्ञानावरण-क्षयापपाम-विशेष १। =अवर)ज्ञानावरणिय कर्मका वयोपयसक्य व्यक्तिका मकाश है (सोअस्मि) है ।

अर्थज्ञानावरणीयकर्मकेविशेषयुक्तयोपयममेभाल्याःमाविद्युद्वारापीशाकिरेसोअस्मिरे

यत्सन्निधानात्—आत्मादेन्द्र्येन्द्रियनिवृत्तिपर्यन्तमिति ॥ अतिअ=प्रित्त(अस्मि)कनिकदोकोरिआत्मादेन्द्र्येन्द्रियरूप निवृत्ति प्रति

व्याप्रियते वत्-निमित्तः १। आत्मनः १। परिणामः १। उपयोगः १। अत्रास्मिनिमित्तकामत्याका(विपयमति)परिणामन उपयोगे

वद १। उपययम् १॥ भावेन्द्रियम् १॥ इन्द्रिय-कहायुम् १॥ अर्थात् जो प्रेयके आकार परिणामनरूप ज्ञानको सो उपयोग है

वद १। उपययम् १॥ भावेन्द्रियम् १॥ इन्द्रिय-कहायुम् १॥ अर्थात् जो प्रेयके आकार फल वा कार्य जो

( १ ) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों संस्कारोंमें एक है । इस १८ वां सूत्र और स्वग्रह-रत्न-शास्त्र-समु-भागादि उरीसवों सूत्रके मध्यमें शतामरभाष्याके 'समाप्यतश्चार्थाविषयस्य' पृष्ठ ४४ में 'उपयोग स्मर्यादिषु' ऐसा सूत्र अर्थिक है ॥ स्मर्यादिषु मतिज्ञानापर्योग इत्यर्थे ।

स्मर-रत्न-शास्त्र-शास्त्रादिषुके विषयमौमतिज्ञानक उपयोग होता है । ऐसा अर्थ इस सूत्रका ही । हमारे यहाँ इसको मूलसूत्र नहीं माना है । समाप्यते शत्रुयापकन गत् इत्यर्थो इस सूत्रमें ही कि किसी किसीके मध्यमें यह मूलसूत्र नहीं है और कोरे कहते हैं यह सूत्र हा हैमाप्यतर्थाप

( २ ) इस किसी अपेकी सुननेकी शक्ति है परंतु उपयोग को वैल्यका परिणाम है सो अर्थवदो अर्थ पल्लुओंमें लग रहा हो तोसुनकानहीं । और और आजगतावाहाता है और इयोपशम शक्ति नहीं है तो ज्ञान नहीं सकता इसलिये सत्यि और उपयोग अब दोनों ही मिले तब ज्ञानकीसिद्धि होती है ॥



एतानिवासी आगरूपसहस्रप पक्षीक कृव पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वाभिसिद्धिपिका शब्दशः शिन्वी अनुवाद अध्याय २ सूत्र १८  
 शूद्धानामात्मप्रदेशानां प्रतिनियतचन्द्रादीन्द्रियसस्थानेनावस्थिताना वृत्तिरभ्यन्तरा निर्वृत्ति ।  
 तेज्वात्मप्रदेशेष्विन्द्रियव्यपदेशमात्रेण प्रतिनियतसंस्थानो नामकर्मोदयापादितावस्थायविशेष  
 पुद्गलप्रचय सा बाह्या निर्वृत्ति । येन निर्वृत्ते रूपकार क्रियते तदुपकरणम् ॥ पूर्ववत्तदपि द्विविधम्  
 तत्राभ्यन्तर कृष्णशुक्लमण्डलम् बाह्यमक्षिपत्रपक्षमहयादि ॥ एव शेषेष्विन्द्रियेषुज्ञेयम् ॥

शूद्धानाम् ॥ आत्म-शानाम् ॥ प्रति-  
 नियतचन्द्राः आदिन्द्रियसंस्थानम् ॥ अर्वास्थितानाम् ॥ वृत्तिः ॥ निमित्ततन्मादिक इन्द्रियोंके आकार करि अनस्थितवृत्ति (अर्वादि विष्टनेकी दशा)  
 अभ्यन्तरा ॥ निर्वृत्तिः ॥  
 = शूद्रपेवना वा आत्माके प्रदेशोंकी (केवल आत्माके प्रदेशोंकी) स्थारे स्थारे (अर्वादि)  
 = सो अभ्यन्तर निर्वृत्ति है । अर्वादि तत्सेष अंगुलके असंस्थावर्षाभागमात्र

विशुद्धमात्मप्रदेशोंका जो भिन्न भिन्न रूपसे नेत्र इन्द्रियके पदूरके आकार, कर्ण इन्द्रियके  
 बरबरी मथनाखीक आकार सवय, नासिका इन्द्रियके विद्य पुल्य आकार समान, रसना इन्द्रियके अर्द्ध चन्द्रके आकारसम, स्पर्शन  
 इन्द्रियके अनेक प्रकारक भिन्न भिन्न आकारके समान, और इन सबका प्रमाण स्वरूप परिणत होना है वह अंतरण निर्वृत्ति है ॥  
 तत्राभ्यन्तरप्रदेशेष्विन्द्रियव्यपदेशमात्रेण  
 य ईयतिनियतसंस्थानः ॥ नामकर्म-वदय-आपादित-  
 मरवस्थावियप ॥ पुद्गलप्रचयः ॥ सा ॥ पादा ॥ निर्वृत्तिः ॥  
 = तिन आत्माके (विशुद्ध) प्रदेशानिमें इन्द्रियनामके द्वियेमानेपर वा चारनेपर  
 = आ प्रतिनियत (स्थार स्थार) आकार सहित नामकर्मके उदयनमित  
 = विशेष दशा वा अवस्थासहित पुद्गलके समूह सो वरिण निर्वृत्ति है । अर्वादि  
 वर्गी आत्माके विशुद्ध प्रदेशोंमें इन्द्रियोंके नामसे करेजानेवाले भिन्नभिन्न

आकारोंके पारक संस्थान नामकर्मके उदयसे होनेवाले अवस्था विशेषसे युक्त आ पुद्गलवृत्ति है वर पादा-निर्वृत्ति है ॥  
 यन ॥ निर्वृत्तिः ॥ व्यकारः ॥ क्रियत I तद् ॥  
 उपकरणम् ॥ पूर्ववत्तदपि ॥ अर्वादि ॥ दिवियसम् ॥  
 वर ॥ अत्यन्त (सु) ॥ कृष्ण-शुक्ल-मण्डलम् ॥ बाह्यम् ॥  
 अक्षिपत्र-पक्ष-  
 दय आदि ॥ एतत्पुद्गलपुद्गल ॥ इन्द्रियपुद्गल ॥ पक्षम् ॥  
 = जिससे नियुक्ति का व्यवहार क्रियाभावा है वा सहायता की जाती है यह  
 = उपकरण है । पहले वत्तदपि (अर्वादि) से निर्वृत्ति दो प्रकार (वर्ण) अर्वादि प्रकार है  
 = तर्ही (नेत्रवर्ष) अंतरण (उपकरण) का सा पुद्गल (वर्ण) अर्द्धक है । बाह्य (उपकरण)  
 = बाह्यनी (अर्वावर्ण) या विर्वा (अक्षिपत्र) और आँलके पक्षक (अक्षि-पक्षक)  
 = दय आदि है । नेत्र सेष (स्पर्शन-मात्र) रसना ओर इन्द्रियोंमें जानना वारिने ॥

# ॥ स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥ १६ ॥

लोके इन्द्रियाणां पारतन्त्र्याविवक्षा दृश्यते । अनेनाक्षणा सुष्टु पश्यामि, अनेन कर्येन सुष्टु शृणोमीति ततः पारतन्त्र्यात्स्पर्शनादीनां करणत्वं । वीर्यान्तरायमतिज्ञानावरणक्षयोपशमा-

## स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥ १५ ॥

दृश्यं — स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुःश्रोत्राणि (एतानि पञ्चेन्द्रियाणि भवन्ति) । (पश्यन्मं दृश अनुवृत्ति रूपं इत् सूत्र में आतारे) पञ्चेन्द्रियाणि ॥ भवन्ति ।  
 इत्यनुवादः— चक्षुः ॥ इन्द्रियाणाम् ॥ पारतन्त्र्या-विषयाः ॥  
 इत्येतेऽनेन ॥ अनेन ॥ अस्त्वा ॥ सुष्टु ॥ पश्यामि ।  
 अनेन ॥ कर्येन ॥ सुष्टु ॥ शृणोमि । इति ॥ ततः ॥ पारतन्त्र्यात् ॥  
 स्पर्शनादीनां ॥ करणत्वम् ॥

=स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥ १५ ॥  
 =त्वचा(त्वक्)मीय, नाक(नासिका), नेत्र और कान ये  
 =पाँच इन्द्रियाँ हैं अर्थात् शानकरानेमें सहायक होनेसे इनको इन्द्रिय कहते हैं  
 =श्रोत्र वा ससारेमें इन्द्रियोंके परापीन विषया वा अर्थत्वा  
 =देखी जाती है। सनेत्रसे मखमकार देखता है ॥ (अस्त्वा) ॥ 'मसि' शब्दका है  
 =इस कानसे नीचे सुनता है । वहाँ परापीनतासे  
 =त्वचा(इन्द्रिय)आदिके करणपना है अर्थात् श्रोत्रमें  
 इन्द्रियोंके स्वकार्य करनेमें परतंत्रता अनुभवमें आती है इसलिये  
 स्थान आदि करणसाधन हैं क्योंकि जिस समय इन्द्रियोंकी परतंत्ररूपसे विषयाकी जाती है और आत्माको  
 स्वातंत्र्य मानानाता है उस समयमें इस आत्माद्वारा मखे प्रकार देखता है ॥ 'मि' इस कान द्वारा मखे प्रकार सुनता है ।  
 'मि' इस नासिका द्वारा मखे प्रकार सूंघता है ॥ 'मि' इस मीय द्वारा मखे प्रकार चखता है ॥ 'मि' इस शय द्वारा मखी शरीर  
 के किसी अन्य अणवक द्वारा मखे प्रकार स्पर्शनकरता है ॥ ऐसा व्यवहार होता है । यदि इन्द्रियोंको करणसाधन  
 न माना जायै तो संसारमें व्यवहार नहीं होसकता ॥ (आचार्य करण साधनको नीचे विशेषरूपसे समझाते हैं )  
 =वीर्यान्तरायनामा मतिज्ञानावरणं कर्मका ज्ञयापशुम और

स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥ १५ ॥  
 =स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि (एतानि पञ्चेन्द्रियाणि भवन्ति) । (पश्यन्मं दृश अनुवृत्ति रूपं इत् सूत्र में आतारे) पञ्चेन्द्रियाणि ॥ भवन्ति ।  
 इत्यनुवादः— चक्षुः ॥ इन्द्रियाणाम् ॥ पारतन्त्र्या-विषयाः ॥  
 इत्येतेऽनेन ॥ अनेन ॥ अस्त्वा ॥ सुष्टु ॥ पश्यामि ।  
 अनेन ॥ कर्येन ॥ सुष्टु ॥ शृणोमि । इति ॥ ततः ॥ पारतन्त्र्यात् ॥  
 स्पर्शनादीनां ॥ करणत्वम् ॥

वीर्यान्तरायमतिज्ञानावरणक्षयोपशम-

(१) स्वेतास्वर आश्रयक समाप्यतपसायाधिगमसुख में पर सूत्र उल्लेखवही है जो हमारे यहाँ है अथवा एक ही परंतु समाप्य ० में इस सूत्र की संख्या  
 वीसवी है क्योंकि अठारहवाँ सूत्रकेपीछे समाप्य ० में उपयोग स्पर्शासिधु' ऐसा उगीसवाँ सूत्र है । और हमारे यहाँ ऐसा उगीसवाँ सूत्र नहीं है ।



# ॥ स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥१६॥

लोके इन्द्रियाणां पारतन्त्र्याविवक्षा दृश्यते । अनेनाक्षणा सुष्टु पश्यामि, अनेन कर्णेन सुष्टु श्रुणोमीति तत पारतन्त्र्यात्स्पर्शनादीना करणत्व । वीर्यान्तरायमतिज्ञानावरणक्षयोपरामा-

स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥ १९ ॥

श्रुणुषुः—रसन-रसन-घ्राण-चक्षुःश्रोत्राणि । (एतानि पञ्चेन्द्रियाणि भवन्ति) । (प्रश्नार्थां सुषु अनुवृत्ति रूपेण इत्यस्य अनेन कर्णेन पञ्चेन्द्रियाणि) ॥ भवन्ति ।  
 इत्यनुवाद-श्रोत्राणि ॥ इन्द्रियाणाम् ॥ पारतन्त्र्या-विषयान् ॥  
 इत्यप्येवमननम् ॥ अस्पर्शादि ॥ सुष्टु रूपरथापि ।  
 अननम् ॥ कर्णेन ॥ सुष्टु ० भ्रुणोमि । इति ० तदा ० पारतन्त्र्यात् ॥  
 स्पर्शनादीनां ॥ करणत्वम् ॥

=स्वात् (त्वत्) शीप, नाक (नासिका), नेत्र और कान ये  
 =गोच इन्द्रियां हैं अर्थात् शानकरानमें सहायक होनेसे इनको इन्द्रिय करते हैं  
 =श्रोत्र वा ससारायें इन्द्रियोंके परायीन विषया वा अर्थसा  
 =देही जाती है इसने अर्थसे मलमकार देनवाहू ॥ (अस्पर्शादि) ॥ अत्रि'शुद्धका है  
 =इस कानसे नीके सुनवाहू । तहां परापोनतासे  
 =त्वचा (इन्द्रिय) आदिके करणपना है अर्थात् जोरुमें  
 इन्द्रियोंके स्वकार्य करनेमें परतंत्रता अनुभवमें आती है इसलिये

स्युन आदि करणसाधन हैं क्योंकि जिस समय इन्द्रियोंकी परतंत्ररूपसे विषयाकी जाती है और आत्माको स्पर्तंत्र्य मानानाता है उस समयमें इस आत्माद्वारा मले मकार देलता हूँ/यै इस कान द्वारा मले मकार सुनवाहू' ।  
 'यै इस नासिका द्वारा मले मकार सुनवाहू' / 'यै इस शीप द्वारा मले मकार वलवाहू' / 'यै इस शय द्वारा वा शरीर के किसी अन्य अवयव द्वारा मले मकार स्थानकरवाहू' ऐसा व्यवहार होता है । यदि इन्द्रियोंको करणसाधन न माना जावे तौ ससारायें व्यवहार नहीं होसकता ॥ (आचार्य करण साधनको नीचे विशेषरूपसे समझाते हैं )

=वीर्यान्तरायपतिज्ञानावरणक्षयोपराम-  
 (१) स्तोत्रात् आत्मायत्तत्परायापिगम्यत्ब-ने यह सुषु अन्वयः यही है जो हमारे यहां है अर्थमें एक है परंतु समाप्य०में इस सुषु की संख्या घिसनी है क्योंकि अकारणं सुषुकेपीके समाप्य०में 'उपयोग' स्थगित्यु' ऐसा उक्तीसर्वां सुषु है । और हमारे यहां ऐसा उक्तीसर्वां सुषु नहीं है ॥



भावनिदंश, स्पर्शन स्वर्श  
इन्द्रियक्रमेणैव व्याख्यात  
तत्किमुपयोगस्योपकारी उत  
भावात् किमस्यैषां सहकारित्वमात्रमेव प्रयोजनमुतान्यदपीत्यन आह—  
भावनिदंश १

भावे प्रयोगै अर्थात् व्याकरणे कर्मवाच्य, कर्तृवाच्य और भाववाच्य तीनमकारके  
षातुर्लोक प्रयाग है। यह जमीसर्गमें बहुत विद्यारूपस कर्मवचनका अनुवाद  
शुद्ध ६१ के पंक्ति ६से १८ तक और शुद्ध ६२ के पंक्ति ७ से १३ तक और कर्तृवचनका शुद्ध ६२ के  
पंक्ति १४से १८ तक और शुद्ध ६३ के पंक्ति ३ से ८ तक उल्लेख किया है ॥ भावसाधन, भाववचन,  
अथवा भावप्रयोग अर्थात् क्रियाका इसकारसे वाक्यमें जाना कि किससे उसकी भावरूपी अस्तव्या  
वा कथा आद होनाहै, इस शुद्ध ६४ की पंक्ति ११, १२ नीचे में बताते हैं कि  
स्पर्शन १॥स्पर्शः ३॥स्पर्शनं ३॥स्पर्शः ३॥  
गन्धनं ३॥गन्धः ३॥गन्धः ३॥गन्धः ३॥  
प्राप्तं ३॥प्राप्तः ३॥प्राप्तः ३॥प्राप्तः ३॥  
अप्र ३॥अप्रः ३॥अप्रः ३॥अप्रः ३॥  
न ३॥नः ३॥नः ३॥नः ३॥  
इतिप्रत्याख्यातः ३॥वदः ३॥वदः ३॥वदः ३॥  
वत ३॥वतः ३॥वतः ३॥वतः ३॥  
इन्द्रियाणां ३॥इन्द्रियाणां ३॥इन्द्रियाणां ३॥  
किमु ३॥किमु ३॥किमु ३॥किमु ३॥  
एव ३॥एव ३॥एव ३॥एव ३॥

=भावे प्रयोगे अर्थात् व्याकरणे कर्मवाच्य, कर्तृवाच्य और भाववाच्य तीनमकारके  
षातुर्लोक प्रयाग है। यह जमीसर्गमें बहुत विद्यारूपस कर्मवचनका अनुवाद  
शुद्ध ६१ के पंक्ति ६से १८ तक और शुद्ध ६२ के पंक्ति ७ से १३ तक और कर्तृवचनका शुद्ध ६२ के  
पंक्ति १४से १८ तक और शुद्ध ६३ के पंक्ति ३ से ८ तक उल्लेख किया है ॥ भावसाधन, भाववचन,  
अथवा भावप्रयोग अर्थात् क्रियाका इसकारसे वाक्यमें जाना कि किससे उसकी भावरूपी अस्तव्या  
वा कथा आद होनाहै, इस शुद्ध ६४ की पंक्ति ११, १२ नीचे में बताते हैं कि  
=स्पर्शना वा करना सो स्पर्श है। रसना सो रस है  
=स्पर्शना वा करना सो गर्भ है। देलना सो गर्भ है। शुद्धदाना सो शुद्ध है  
=इने(विषयों)का अनुकूल इन्द्रियोंके क्रयकारिणी कहा गया है  
=यहाँ पंक्ता है कि जो मन सो (=वाचत्) अनवस्थित होनेसे इन्द्रिय  
=नहीं है अर्थात् मनक अवस्थान वा स्थिति नहीं है इससे इन्द्रिय नहीं है  
=यैसे(यनक इन्द्रियपन) निषेधा है। क्या ( वह मन) उपयागका उपकारी है  
=यानही(नोकरोकि)उपकी (=वदुअपि)(वहमन)उपकारीहीइकियोंकितिस(पन)विना  
=इन्द्रियोंके विषयोंमें अपने अपने प्रयोजनरूप प्रवृत्तिका अभाव है  
=क्या न(इन्द्रियों)के इस(पन)का सहकारिपन मात्र  
=ही प्रयोजन है, अथवा और भी (कुछ प्रयोजन) है ॥ इसलिये करते हैं भावाव  
स्पर्शन आदि इन्द्रियोंके संपान मनका कोई निमित्त स्थाननहीं इसलियेवह इन्द्रिय  
नहीं कर

१५







एक प्रथममित्यर्थ । किं तत् । स्पर्शनम् । तत्केषाम् । पृथिव्यादीना वनस्पत्यन्ताना  
त्रेदितव्यम् ॥ तस्योत्पत्तिकारणमुच्यते ॥ वीर्यान्तरायस्पर्शनेन्द्रियावरणत्वयोपशमे सति शोभे  
न्द्रियसर्वघातिस्पर्धकोदये च शरीरनामलाभावष्टम्भे एकेन्द्रियजातिनामोदयवशवर्तितायां च  
सत्यां स्पर्शनमेकमिन्द्रियमाविर्भवति ॥ इतरेषामिन्द्रियाणां स्वामित्वप्रदर्शनार्थमाह—

### कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामैकैकवृद्धानि ॥२३॥

रूपयुगात् - एकस्य ॥ अयमस्य ॥ इति ० अर्थः ॥ इति ॥ तद्वत् ॥ = (मृदये) एक शब्दका) पहिवा, मयम ऐसा अमिमाय है । वह (पहिला) क्या है ?  
 सप्तमस्य ॥ अर्थः ॥ कृपास्य ॥ पृथिवी - आदीनास्य ॥  
 = स्पर्शनं अर्थात् स्वभा(इन्द्रिय) है । वह (स्पर्शन इन्द्रिय) किनके है । पृथिवी आदिक  
 पनसति - मन्वानास्य ॥ अर्थः ॥ अर्थः ॥ इत्यर्थः ॥  
 = बनसति पर्यवर्तनं मानना चाशिये । तिस (स्पर्शन इन्द्रिय) का उत्पत्तिक  
 कारणम् ॥ इत्यन्ते ॥ योयान्तराय - स्पर्शनन्द्रिय -  
 = कारण कहामाता है । वीर्यान्तराय और स्पर्शन इन्द्रिय  
 आरण्ययुगान्तरात् सति ॥ एक श्रेय -  
 = आरण्यनामा(आनाश्रयण) कर्मके लोपशय होनवर और रसना आदिमवशेय  
 इन्द्रिय सर्वपातिसर्षक - १) उदये ॥  
 = इन्द्रिय सक्षपी(हानावरणकर्मका)सर्वपाति सर्षककोका उदय (होने) पर  
 शरीर ॥ नामलाय - अयष्टम्भे ॥  
 = शरीर नामा नामकर्मके उदयक क्षापका अवलम्बन(होने) पर और(=व)  
 एकन्द्रियमादिनाम - उदय-वशवर्तितायास्य ॥  
 = एकन्द्रिय भाति नामक नामकर्मके उदयक वशवर्तिवना वा वशीभूतपना  
 मर्यादास्यस्यस्य ॥ एकस्य ॥ इन्द्रियस्य ॥ आविर्भवति ॥  
 = शनैर(=सत्याम्) (बीकके) एक स्पर्शन इन्द्रिय मगट होता है ॥  
 मर्यादा ॥ मृन्मृत्पाणाम् ॥ स्याद्विद-पदर्शनं अर्थस्य ॥ आह ॥ अन्य इन्द्रियोंके स्वामीपना दिग्वाकनेके लिये कहते हैं कि  
 मृन्मृत् कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामैकैकवृद्धानि ('स्पर्शनइन्द्रिय' की अनुवृत्ति १९, १५ सूत्रोंसेही)  
 मृत्स्य ॥ कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीनास्य ॥ अह, गिद्गार (=कृमि) आदिकके, चिखो आदिकके, योरा आदिकके, मनुष्य आदि कोंके

(1) 'उदये' शब्दके आगे एता आन पड़ता है कि 'सति पाशयगेव है क्योंकि इससे बोधोन्मत्ताय-स्यकमेन्द्रिय-आवरणत्वयोपशयसति'  
 पाशय मितानकरो ॥ (2) 'शरीरनामलाय' अर्थके स्वामिं राजवर्तिक में 'शरीरनामलाय' अर्थके 'आह' पाठ है इससेयं ००० पाशागल शरीरि  
 वा गतार च पाशय नामा नामकम् का लक्षणो अभिहितोता सता ऐतामनुभव किया है । सत्याके अनुवाक्योप-पाठ पर श्रीर च गोपयोगनामकर्मके  
 नाम रहनपर एता अनुवाक्य किया है । (3) इतेषावद्वे श्रोत दिग्गमर शोनी आकाशयोमे एत मृत्का पाठ श्रोत कर्त एक सा है ॥





एगानिवासी गणकप्रसाधय वहीलुच पदच्छद और विपक्षयर्ष सविष सर्वाथसिद्धिका शब्दः विन्दीयनुवाद् अर्थाय २ सूत्र २३  
एकैकमिति वीप्सायां हित्यम् । एकैकेन वृद्धानि एकैकवृद्धानि ॥ कृमिमादिं कृत्वा, स्पर्शना-  
धिकारात् स्पर्शनमादिं कृत्वा एकैकवृद्धानीत्यभिसम्बन्ध क्रियते ॥ आदिशब्द प्रत्येकं परिस-  
माप्यते । कृम्यादीनां स्पर्शनं रसनाधिकम् । पिपीलिकादीनां स्पर्शनरसने घ्राणाधिके ।

एक-एकम् १ ॥ हृदयानि १ ॥

= (स्पर्शन इन्द्रिय कषात्) एक एक (इन्द्रिय) बहती है अर्थात् खट इत्यादिकोंके  
स्पर्शन और रसना वा इन्द्रिय है । बिहती इत्यादिकोंके स्पर्शन, रसन, घ्राण य  
तीन इन्द्रिये है और, मच्छिका, खीबी, इत्यादिकोंके स्पर्शन-रसन घ्राण-बहुः य चार इन्द्रिये है और,  
मनुष्य, प्रत्ये गौ, सर्प इत्यादिकोंके स्पर्शन-रसन-घ्राण-बहुः आत्र ये पाँचो ही इन्द्रियां है

हृदयनुवादाः—एकैकम् १ ॥ इति ० र्वाप्सायां ॥ हित्यम् १ ॥ = एक-एक ऐसा चारचारकेअर्थमें (= वीप्सायाय्) वा चार (सूत्रमें) है

एक-एकम् १ ॥ हृदयानि १ ॥

एकैकवृद्धानि १ ॥ स्पर्शन-अपि चारत्वे

कृमियुग्मादिभ्यः, सा-स्पर्शनयुग्मे ॥ आदियुग्मे ॥ कृमिको आदिकर और (इन्द्रियनिर्मे) स्पर्शन को आदिकर (अपसे)

एक-एक वृद्धानि १ ॥ इति ० अपिसम्बन्धे क्रियते १ ॥ = एक एक (इन्द्रिय) बहती है । इसप्रकार सम्बन्ध (इस सूत्रमें) क्रिया है

आदिशब्दः १ ॥ प्रत्येकम् ० रिसमाप्यते १ ॥

इस समस्त उपयुक्तका सारांश यह है कि वनस्पत्यन्तानामेकम् सूत्रसे स्पर्शन (= एकम्, श्रीभानुहृषि इस सूत्रमें  
लाकर इन्द्रियोंको अपेक्षासे स्पर्शन इन्द्रियोंको प्रथम प्रकृत्यकारि पश्चात् स्पर्शन-रसन-घ्राण-बहुः-भोआणि,  
इस सूत्रसे कषानुसार एक एक इन्द्रियको वृद्धि रसना से प्राप्त पर्यंत प्रत्येक कृमिआदिकोंके, प्रत्येक  
पिपीलिका आदिकोंके, प्रत्येक अन्न आदिकोंके और प्रत्येक मनुष्य आदिकोंके यथासक्य शारीराधी है  
जैसाकि वृक्षिमें निम्न लिखित उदाहरणों स प्रगट है ॥

कृमिमादीनायुग्मे स्पर्शनयुग्मे ॥ रसना (रसन) अधिकम् १ ॥ = कृमि आदिके रसनाकरि अधिक स्पर्शन इन्द्रिय शरीराधी अर्थात् कृमिआदिके स्पर्शन-रसन है

पिपीलिका-मादीनाम् घ्राण अधिकम् १ ॥ स्पर्शन-रसने १ ॥ = बिहती आदिकोंके नासिकाकरि, अधिकत्वचा, रसना और शरीरत्वचा, रसन और घ्राण





संज्ञा नामैत्युच्यते । तद्वन्त सञ्ज्ञान इति सर्वेषामिति प्रसङ्गः ॥ सञ्ज्ञान सञ्ज्ञा ज्ञानमिति चेत् सर्वेषा प्राणिना ज्ञानात्मकत्वादतिप्रसङ्गः ॥ आहारादिविषयाभिलाष सञ्ज्ञेति चेत्तुल्यम् तस्मात्समनस्का इत्युच्यते ॥ एवं च कृत्वा गर्भगण्डजमुच्छ्रितसुषुप्त्याद्यवस्थायाम्

सञ्ज्ञा<sup>१</sup> नाम<sup>२</sup> इति उच्यते । सञ्ज्ञानं<sup>३</sup> सञ्ज्ञिनः<sup>४</sup> ।  
 इति सर्वेषामर्थः अतिप्रसंगः<sup>५</sup> ।  
 सञ्ज्ञानपूर्वः<sup>६</sup> संज्ञा<sup>७</sup> । गानपूर्वः<sup>८</sup> इति उच्यते ।  
 सर्वेषामर्थः प्राणिनाम् । ज्ञान-आत्म्यत्वात् । अतिप्रसङ्गः<sup>९</sup> ।  
 आहार-आदि विषय-अभिलाषः संज्ञा<sup>१०</sup> । इति उच्यते ।  
 तुल्यम्<sup>११</sup> ।

= (सैस) संज्ञा नाम है ऐसा कहा गया है । उस (नाम) वाले सभी हैं  
 = ऐसे समस्त (सर्वों) के अति प्रसंग हुआ अर्थात् संज्ञाका अर्थ नाम है किसीका ।  
 नामरूप संज्ञा जिसके हा सा सभी ऐसे करनेसे सर्वही प्राणी नाम सहित हैं  
 अतः मनसहित प्राणी भी संज्ञी बुधे और मनसहित भी संज्ञी बुधे अतः अतिप्रसंग हुआ  
 = यदि (=चेत्) संज्ञान (=महाज्ञान) संज्ञा ज्ञान ही वा  
 = समस्त जीवोंके ज्ञानरूप होनेसे अतिप्रसंग (आवा) है  
 = यदि (=चेत्) आहार आदिक योगोंकी (=विषय) कामना (=अभिधाय) संज्ञा है  
 (=तीभी) बुधे वा समान है अर्थात् तीभी वही बात है भावार्थ तीभी अतिप्रसंग  
 आता है क्योंकि भागोंकी अभिलाषा वी सैनी असेनी सपरी जीवोंके होती  
 है । तीनों का भावार्थ ऐसा है कि (१) यदि संज्ञा शब्दका अर्थ सचित नाम'माना जायगा तो वह सैनी असेनी समस्त  
 प्राणियोंमें पाया जाता है क्योंकि नाम पिना कार्य भी प्राणी नहीं है । वी असेनी जीवोंको भी संज्ञी कहना  
 पड़ेगा (२) 'संज्ञानं संज्ञा' महाज्ञानकी संज्ञा है वी वह ज्ञानभी सैनी असेनी सब प्रकारके जीवोंमें विद्यमान है  
 इसलिए असेनी जीवोंकोभी संज्ञी मानना पड़ेगा (३) यदि आहार, भय, पैशुन और परिग्रह संज्ञी  
 शब्दका अर्थ माना जाय ता य चारा आहार-भय-पैशुन-परिग्रह संज्ञायें भी समस्त जसारी जीवोंके  
 विद्यमान हैं इसलिये संज्ञा शब्दका आहार आदि अर्थ मानत परभी असेनी जीवोंको व्याहृति नहीं ब्राह्मणकी  
 इसलिये असेनी जीवोंकी व्याहृति के लिये सूत्रमें समनस्का'पदका उल्लेख सार्थक है  
 समनस्का<sup>१२</sup> इति उच्यते । एतत्त्वं च<sup>१३</sup> = तिससे (सूत्रमें) समनस्काः ऐसा (पद) कहा गया है । और (=च) इस प्रकार  
 हुआ । — गर्भ-अण्डन-मुच्छ्रित-सुषुप्ति-आदि अवस्थायाम् । = (सूत्रमें) समनस्काः विद्यायाः का प्रकण्ड इरकेगी, अंडन, मुच्छ्रित, सुषुप्त, आदिक अवस्थाओंमें  
 (१) प्राणिनाम् = प्राणियों । (२) उच्यते = कहा गया । (३) इति उच्यते = इससे कहा गया । (४) सर्वेषामर्थः = सब प्राणियोंके अर्थ । (५) अतिप्रसंगः = अत्यन्त प्रसंग । (६) सञ्ज्ञानं = ज्ञान । (७) सञ्ज्ञिनः = ज्ञान करनेवाले । (८) इति उच्यते = इससे कहा गया । (९) अतिप्रसंगः = अत्यन्त प्रसंग । (१०) संज्ञा = ज्ञान । (११) तुल्यम् = समान । (१२) समनस्का = समान । (१३) एतत्त्वं च = इससे कहा गया ।

पदानिवासी आरूपसाय व नीलकण्ठ पदच्छेद और विपत्तस्य सति सवाथसदिहा शब्दशाः शिन्वीभुजवाद मध्याय २ सुत्र २४, २५  
हिताहितपरीक्षाभावेऽपि मन सन्निधानात्सञ्चित्वमुपपन्न भवति ॥ यदि हिताहितादिवि  
पयपरिस्पन्द प्राणिनां मन प्रणिधानपूर्वक अथाभिनवशरीरग्रहण प्रत्यागूर्णस्य विशीर्ण-  
पूर्वमूर्तेर्निर्मनस्कस्य यत्कर्म, तत्कुत इत्युच्यते—

## ॥ विश्रहगतौ कर्मयोगः ॥ २५ ॥

रित-मरित-परीक्षा-अपावर्ण मरिः  
पन -समिषयानात् ॥ सञ्चित्वमुपपन्नम् ॥ भवति ॥

(=भीषोक्ती) रित अरितही परीक्षाके अभावर हानेपर भी

मूर्तमे यदि समनस्क शब्द न क्षाया मावा केवल संज्ञी शब्दका ही उल्लास

होता और संज्ञी शब्दका अर्थ रित अरितही परीक्षा करनेवाला माना जायगा तो जो नीय गर्भ वा अदेके

पीठर है वा पृच्छित वा सोये हुये है वेभी यद्यपि मन उनके विषयान है रित अरित ही परीक्षासे शून्य है

इसलिये वेभी सज्ञी न करेमावो इसलिये सर्वमे समनस्क शब्दका उल्लेख सार्यक है ॥

यदि रित-मरित प्रादि विषय-परिस्पन्दः  
प्राणिनाम्प्राणः-प्राणिपान-पूर्वकः अयः  
अभिनव-शरीर-ग्रहणम् ॥ मरिः ॥ मागूर्णस्यम्  
विशीर्णपूर्व पूर्वः ॥ निमनस्कस्यम्  
यत् ॥ कर्म ॥ तत् ॥ कुतः प्रति उच्यते ॥

(=परन) मा रित अरित आदिक विषयोक्ती रचना वा रितन (=परिस्पन्द)

=भीषोके मनके मयत्र (=प्रणिपान) निमिषरू है तो अय (=अय)

=नया शरीर ग्रहण(करने)को (=प्रति) उच्यमी

=और मयम शरीरके कृतमानेसे वा अपावर्णमाने से(=विशीर्ण)अनररित(आत्माके)

=मोक्ष(आमात्र)रूपे करति(=कुत)आ स्योकर(=कुत)रैयेसेमरनपरकहागयाहैकि

विश्रहगतौ कर्मयोग ॥ २५ ॥

=मनीन शरीर (ग्रहण वा पारण करने) के लिये गमन करनेमें (=जाती)

=कार्य(शरीर ही)योग है अर्थात् कामण शरीर द्वारा आत्माके मले

होत है। पाकार्यण शरीर समस्तकर्म ग्रहणकरनेका बीज और विश्रहगतिये

(१) इदंताम्बर और विगम्बर दोनो आकाशमन

















पूरुसूत्रे निश्रेयिगतिरपि कचिदस्तीति ज्ञापनार्थमिदं वचनम् ॥ ननु तत्रैव देशकालनियम उक्तं किं न? अतस्तसिद्धे ॥ यद्यसङ्गस्यात्मनोऽप्रतिबन्धेन गतिरालोकान्तादवधृतकाला प्रतिज्ञायते, सदेहस्य पुनर्गति किं प्रतिबन्धनी, उत मुक्तात्मवदित्यत आह—

पूर्व-सूत्रम् ॥ कश्चित् विभेदि-  
गतिः ॥ अपि अस्ति इति ज्ञापनार्थमिदं सूत्रम् ॥ ज्ञपनं = (शोचमौर पुत्रलोकां) गमन भी है । ऐसा सुचिचक्रनेके किये यह सूत्र है  
ननु गमनं एषं देशकालनियमः । उक्तम् ॥  
= (उचर) पहिले (कश्चीसर्वा) पूर्वमें (अनुभेयिगतिः) है परंतु कहीं श्रेणीके विक्रम  
= परत वरत (अनुभेयिगतिः सूत्रम्) ही स्रोत तथा कालका नियम करा गया है  
अर्थात् 'अनुभेयिगतिः' सूत्रमें काल और देशके नियमको प्रणय किया है और उसकाव  
नियममें मुक्तश्रीकोंके उचर गमन करवेसपय श्रेणिके अनुकूल गति बतलाई है इसलिये  
मुक्तश्रीकोंकी नौदररहित गति 'अनुभेयिगतिः' सूत्रसे सिद्ध होनेपर पुनः 'अभिप्रायानविस्य'  
इस सूत्रका निर्माण या प्रतिगतन निरर्थक ही है ॥  
= (उचर) प्रया ? (विद्वल सूत्रमें देश, कालका नियम करा करारागया अर्थात्) नरी (करारागया)  
= इसलिये उस (देश, कालके नियम) की सिद्धि का (यसूत्र) है अर्थात् आचार्य  
उचरमें करते हैं कि काल और देशका नियम 'अनुभेयिगतिः' सूत्रमें ही करा नहीं गया  
किंतु 'अभिप्रायानविस्य' इसी सूत्रके द्वारा शरीर काळ, देशके नियमकी सिद्धि हो,  
"किम्" निशा या विररकारके अर्थमें प्राया गान पड़ता है  
= (उचर) प्रया ? (विद्वल सूत्रमें देश, कालका नियम करा करारागया अर्थात्) नरी (करारागया)  
= इसलिये उस (देश, कालके नियम) की सिद्धि का (यसूत्र) है अर्थात् आचार्य  
उचरमें करते हैं कि काल और देशका नियम 'अनुभेयिगतिः' सूत्रमें ही करा नहीं गया  
किंतु 'अभिप्रायानविस्य' इसी सूत्रके द्वारा शरीर काळ, देशके नियमकी सिद्धि हो,  
"किम्" निशा या विररकारके अर्थमें प्राया गान पड़ता है  
= (उचर) प्रया ? (विद्वल सूत्रमें देश, कालका नियम करा करारागया अर्थात्) नरी (करारागया)  
= इसलिये उस (देश, कालके नियम) की सिद्धि का (यसूत्र) है अर्थात् आचार्य  
उचरमें करते हैं कि काल और देशका नियम 'अनुभेयिगतिः' सूत्रमें ही करा नहीं गया  
किंतु 'अभिप्रायानविस्य' इसी सूत्रके द्वारा शरीर काळ, देशके नियमकी सिद्धि हो,  
"किम्" निशा या विररकारके अर्थमें प्राया गान पड़ता है

वदिऽमसात्स्यः आत्मनः । अमतिरयेनैर्गतिः । = यदिकम् ररिता = असंगत्य) आत्माका वन्यकरि ररित गमन  
आ-लोकात्वात् । अथपूरुवकात् । अविज्ञायते । = लोकोक्ते अत वक (=आ) एकसमयमात्र काळबातगति प्रविश्याक्य करिये है  
पुन असादेरस्य गतिः ? किम् ? । प्रतिपन्थिनी । = फिर (=पुन) शरीरसङ्घि (आरमा) का गमन क्या अरकाप सशित वा मोडासशित है  
उत अमुक्त-आसात्पठं प्रति अतः अमाह ।  
= या (=उच) मुक्तआत्मा सददा है इसलिये (अग्निपसूत्रमें) करते हैं कि



एतन्निवासी ऋक्पुस्तकान् पकील कृत् पदकेद् और पिथस्वर्यसहित सर्वाथसिद्धिपिका शब्दशः शिन्दी अनुवाद अध्याय २ सूत्र २७  
इतरा गतिर्भजनीया ॥ पुनरपि गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

## ॥ अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥

विग्रहो व्याघात कौटिल्यमित्यर्थ । स यस्यां न विद्यतेऽसावविग्रहा गति ॥ कस्य? जीवस्य ॥  
कीदृशस्य? । मुक्तस्य ॥ कथं गम्यते मुक्तस्येति? । उत्तरसूत्रे ससास्त्रिह्यादिह मुक्तस्येति  
विज्ञायते ॥ ननु च अत्रुश्रेणि गतिरित्यनेनैव श्रेण्यन्तरसक्रमाभावो व्याख्यात । नार्थोऽनेन ।  
एतरीशुगति ॥ यमनीया ॥

=अन्य गमन नियम रहित है अर्थात् सीपागमन भी होता है एक भी होता है  
सु ० अविग्रहा-विशेष प्रविषाधि अर्थसू॥ आह I = फिरभी गमनके मयेद कथनके लिये करते हैं कि  
सूत्रम् अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥ = अविग्रहा (गति) मुक्तजीवस्य (भवति)  
व्यार्थः- अविग्रहा गति ॥ मुक्तजीवस्य ॥ भवति I = एकवाररहित, मोड़रहित गमन मुक्त आस्थाकारोवा है अर्थात् मुक्तभी एक एक समयमें सीपासाव

I = एकवाररहित, मोड़रहित गमन मुक्त आस्थाकारोवा है अर्थात् मुक्तभी एक एक समयमें सीपासाव  
अथ है ॥ अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥ = अविग्रहा (गति) मुक्तजीवस्य (भवति)  
व्यार्थः- अविग्रहा गति ॥ मुक्तजीवस्य ॥ भवति I = एकवाररहित, मोड़रहित गमन मुक्त आस्थाकारोवा है अर्थात् मुक्तभी एक एक समयमें सीपासाव

राजू गमन करावा हुआ सिद्ध क्षेत्रमें चला जाता है इतर उपर सुदवा नरी है  
अथ है ॥ अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥ = अविग्रहा (गति) मुक्तजीवस्य (भवति)  
व्यार्थः- अविग्रहा गति ॥ मुक्तजीवस्य ॥ भवति I = एकवाररहित, मोड़रहित गमन मुक्त आस्थाकारोवा है अर्थात् मुक्तभी एक एक समयमें सीपासाव

राजू गमन करावा हुआ सिद्ध क्षेत्रमें चला जाता है इतर उपर सुदवा नरी है  
अथ है ॥ अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥ = अविग्रहा (गति) मुक्तजीवस्य (भवति)  
व्यार्थः- अविग्रहा गति ॥ मुक्तजीवस्य ॥ भवति I = एकवाररहित, मोड़रहित गमन मुक्त आस्थाकारोवा है अर्थात् मुक्तभी एक एक समयमें सीपासाव



एतन्निवासी जगरूपसहाय यज्ञोक्त इव पदच्छेदं चौर निमित्यपर्यवसित सर्वायसिद्धिश्चिका शब्दसाः शिन्वी अनुपाद अथाय २ सूत्र २७  
इतरा गतिर्मजनीया ॥ पुनरपि गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥

विग्रहो व्याघात कौटिल्यमित्यर्थ । स यस्यां न विद्यतेऽसावविग्रहा गति ॥ कस्य? । जीवस्य ॥ कीदृशस्य? । मुक्तस्य ॥ कथं गम्यते मुक्तस्येति? । उत्तरसूत्रे ससारिग्रहादिह मुक्तस्येति विज्ञायते ॥ ननु च अनुश्रुणेण गतिरित्यनेनैव श्रेण्यन्तरसक्रमभावो व्याख्यात । नार्थोऽनेन ।

वृथी? गति? मजनीया? = अन्य गमन नियम रहित है अर्थात् सीधागमन भी होता है एक भी होता है  
पुनः? गति? विग्रह प्रविपापि अर्पयु? आह I = फिरसी गमनके प्रयेद इवनेके किये करते हैं कि  
सूत्रम् अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥ = अविग्रहा (गति) मुक्तजीवस्य (भवति)  
वृथार्थः - अविग्रहा? गति? मुक्तजीवस्य? अपत्ति I = एकवाररहित, मौद्गाररहित गमन मुक्त आत्माकारोवारे अर्थात् मुक्त जीव एक समयमें सीधासात

इतरानुपाद-विग्रह? वधापात? इतिव्यपु? = द्विविध-विग्रह है तो व्यापाव, यकवा वा इतिवता नरी है  
अप? इत? पत्त्ये? न? विद्यते? असरी? अविग्रहा? = अर्थमें है । पर (विग्रह वा यकवा) निसमं विद्यमान नरी है तो अविग्रह  
गति? इत्यर्थ? ? जीवस्य ? = गमन है । ( पर याद्गाररहित गति ) किसकी है? ( पर यकवाररहित गति ) यवनकी है  
शोशस्य? मुक्तस्य? इय? गम्यते? मुक्तस्य? इति? = किस प्रकारके (जीव) की है । मोक्षगीवकी हो मुक्तजीवका नाम कैसे जानाजाय?  
उपायु? ? संसारिन प्राणायु? इ? = अग्रिम (२-वर्ष) पूर्वमें संसारी शब्दके अणुहरनेसे यहाँ ( इस सूत्रमें )  
मुक्तस्य? गति? विज्ञायते? ननु? च? अनुश्रुणेण? ? गति? = आक्षेपीयका (अणु) ऐसा जानाजाता है ॥ अन्य परन' अनुश्रुणेणगतिः'  
इति? अनन? ? पद? अणु? - अन्तर-संक्रम-अपायः? = नस (यद्य) इतिवती श्रेणीसे विरुद्धगमनका अभाव  
व्यासपाय? ? न? अय? ? अनेन? ? = शर्णित है (इन्द्राकिये) इस (सूत्र) से (अनन) प्रयोजन नरी है अर्थात्  
इस सप्पारसर्वा सूत्रका अभाव निश्चय है अविभाय रहित है क्योंकि  
अनुश्रुणेणगतिः इति ननु जीवस्य इतिवती श्रेणीके अभावसे एक जीवका गमनसिद्ध है ।

सर्वानि  
अथापर  
७६

प्रमाणानाम्पि गोरुपागतान् यत्रोक्तं तत्र पूर्वसूत्रे नियोगांतरपि कचिदस्तीति ज्ञापनार्थमिदं वचनम् ॥ ननु तत्रैव देशकालनियम उक्तं किं न? अतस्तस्मिन् प्रतिज्ञायते, सदेहस्य पुनर्गतिं किं प्रतिबन्धिनी, उत मुक्तात्मवदित्यत आह—

पूर्व-सप्तम् ॥ इति० विभ्रं-  
गतिः ॥ अपि अस्ति इति ज्ञापनार्थमिदम् ॥ अतः ॥  
ननु ॥ अत्र ॥ एष देशकालनियमः ॥ अतः ॥

(वपर) वलि(कृषीसर्वा)सूर्यो(अनुभोगिगतिः) है एतु कर्त्तौ भेषिके विक्रम  
अर्थात्(अनुभोगिगतिःसकमे) ही क्षेत्र सया काखका नियम करा गया है  
नियमयै मुक्तजीविके कर्ष्य गमन करवेसमय भेषिके अनुकूल गति बचवायै है इसलिये  
इस सूत्रका निर्माण वा अविशदत निरर्थक ही है ॥  
(वपर)अथा ? (विकूल सकमे देश, काखका नियम करा करारागयाअर्थात्) नती (करारागया)  
नृसलिये वस(देश, कालके नियम)की सिद्धि का (यसक)है अर्थात् आषायं  
वपरमें करते हैं कि काल और देशका नियम 'अनुभोगिगतिः' सूत्रमें तो करा नहीं गया  
किं? अविश्रवा जीवस्य' इसी सूत्रके द्वारा बर्षापर काल, देशके नियमकी सिद्धि,।  
"किम्" निदा वा तिरस्कारके अर्थमें आया जान पड़ता है  
गदि० असत्स्यः आत्मनः ॥ अमतिकल्पेनैतन्निगतिः ॥ =पदि कर्म रति(=असत्स्य)आत्माका कल्पकरि ररित गमन  
या-उत्क्रान्तावः ॥ अथपुत्रकाळाः ॥ अतिशायते ॥ =लोकके अथ वक्त(=मा) एकसमयमात्र काखकानगति अविशारूप करिये है  
पुन ० सदस्यः ॥ गतिः ॥ किम्? ॥ अतिमत्तिनी ॥ =किर(=पुनः) शरीरसङ्घि (आत्मा)का गमन क्या अटकवा सरित वा गौडासरित है  
अ-उत्क्र- आत्मपत्वं ॥ इति ० अत ० अभाइ ॥  
न्वा (=उव) मुक्तआत्मा सदुद्य है इसलिये (अग्निपसूत्रमें) करते हैं कि

किम् ? ॥ न ० ,  
अत अत्र सिद्धः ॥

अर्थात्(अनुभोगिगतिःसकमे) ही क्षेत्र सया काखका नियम करा गया है  
नियमयै मुक्तजीविके कर्ष्य गमन करवेसमय भेषिके अनुकूल गति बचवायै है इसलिये  
इस सूत्रका निर्माण वा अविशदत निरर्थक ही है ॥  
(वपर)अथा ? (विकूल सकमे देश, काखका नियम करा करारागयाअर्थात्) नती (करारागया)  
नृसलिये वस(देश, कालके नियम)की सिद्धि का (यसक)है अर्थात् आषायं  
वपरमें करते हैं कि काल और देशका नियम 'अनुभोगिगतिः' सूत्रमें तो करा नहीं गया  
किं? अविश्रवा जीवस्य' इसी सूत्रके द्वारा बर्षापर काल, देशके नियमकी सिद्धि,।  
"किम्" निदा वा तिरस्कारके अर्थमें आया जान पड़ता है  
गदि० असत्स्यः आत्मनः ॥ अमतिकल्पेनैतन्निगतिः ॥ =पदि कर्म रति(=असत्स्य)आत्माका कल्पकरि ररित गमन  
या-उत्क्रान्तावः ॥ अथपुत्रकाळाः ॥ अतिशायते ॥ =लोकके अथ वक्त(=मा) एकसमयमात्र काखकानगति अविशारूप करिये है  
पुन ० सदस्यः ॥ गतिः ॥ किम्? ॥ अतिमत्तिनी ॥ =किर(=पुनः) शरीरसङ्घि (आत्मा)का गमन क्या अटकवा सरित वा गौडासरित है  
अ-उत्क्र- आत्मपत्वं ॥ इति ० अत ० अभाइ ॥  
न्वा (=उव) मुक्तआत्मा सदुद्य है इसलिये (अग्निपसूत्रमें) करते हैं कि

एयनिवासो अरूपतयाप यकीच कृत् एवच्छेद और विमत्स्यसंशय सर्वार्थसिद्धिचित्तं शब्दशः सिन्धी अनुवाद अथ्याय २ सूत्र २७  
इतरा गतिर्मजनीया ॥ पुनरपि गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥

विग्रहो व्याघात कौटिल्यमित्यर्थ । स यस्यां न विद्यतेऽसावविग्रहा गति ॥ कस्य? । जीवस्य ॥  
कीदृशस्य? । मुक्तस्य ॥ कथं गम्यते मुक्तस्येति? । उत्तरसूत्रे ससारिग्रहादिह मुक्तस्येति  
निज्ञायते ॥ ननु च अनुश्रेणि गतिरित्यनेनैव श्रेण्यन्तरसक्रमाभावो व्याख्यात । नार्थोऽनेन ।

उसी प्रकार निम्नलिखित दोन माडेलेनेपुढ वर गो मृषिकागति है, और उसके हानिमें चार समय लगते हैं । चारोंगवियोंमें परिष्ठी और निवृत्त है कि अद्युगतिमें सखारी जीय आहारक बना पड सकता है ॥ दण्डयमबहीकृत गोमूत्रसार गाया १०० के नीचे विक्र लेता है ॥

आहारका काल उच्छुभ स्वस्थगुणके अवस्थावतने माग ममाथ है । स्वस्थगुणका अवस्थानव्या भागके अने मण्ड्य होदि विरले समय ममाथ समाप्त-आ मरण मय भिन्न जीयके बन्धन विमदगति व होर सुखी एक समयरूप गति होर तान् अमाहारकपण्य न होहै आहारकपण्य ही रूरीर माय सुप्रभम विरे विमदगति के समय पद्याय प्रतना सब हो है बुदुरि अमाहारकका अवस्थकाल तीन समय पादि सांचका अमाहारकका ही रूरीर समय जानना अन विमदगति विरे प्रतने कास पयवही गो कम पार्श्वानिका मद्युष न हो है अरोडकामबनी अनुवाहित नाम्मटसार गाया १०० ॥

( ) इस अट्टारसर्वानुक्रममें व दण्डयमबुधपाय । विमदवती वाविमदवती सोति (सर्वार्थसिद्धिचित्त इसी सुत्रके नीचे वचने) = धामरु सुसुदय वा समूहने लिये है (सखारी जीवद्वीगति कोकि पड अट्टारसर्वानुक्रममें व दण्डयमबुधपाय । विमदवती वाविमदवती सोति (सर्वार्थसिद्धिचित्त इसी सुत्रके नीचे वचने) = धामरु सुसुदय वा समूहने सावधानीनिष्ठ भी हाहै बुदुरि मुकशीयके भी हा है । बुदुरि पाण्डियुकाविरे एक मोडो होहैपाका काल शेष समय ही है

( ) "धामरुसुसुदय-३ २ धामरु उपपाद उमं प्रति अन्ववी गतिरपिमहा कुटिता विमदवती" तस्याय एत्रवार्तिके पण्ड २७ ॥ इस अट्टारसर्वानुक्रमके शिरेहै माणार्थ इव अट्टारसर्वानुक्रममें जो केवल सखारी जीवोंके अन्वर्गहैसयगति (विमदगति और अविमदगति) काप्रत्ययके अर्थ व ही सांगतिका माणुषिका व इति । तत्रापिमहा मायामिकी = सांगतिकागति और गोमृषिकागति परेहैहैहोमयमकीरुगति औहैसोते,वाविमदगतिहै

अर्थात् मोडारहितगति रूओ जो बाण निवृत्ते समान सरलरूपीगीगति है अद्युगतिहैकोय अथवाय तीग(पाण्डियुकागति सांगतिकागति गोमृषिकागति) विमदवतीमोडोडावितहै = तिनमें रूगतिके समान जो है सो रूगतिहै । यहाँ उपमाअर्थ गया है ॥

परगीगतिव्यासपरैरात्रुम्भी, तथासखारीरुणिसिध्यात्वाचकीपालां = जैसे वाणकीगति लक्ष्यरूपामपयत् सरल है तैसे संसारनिष्ठ तथा विद्यबुधे जीवनिष्ठ अरुगतिरुक्तसमर्थिकी तस्यायत्सयगति धम् १४४ २७ = सारुगतहै ही एक समयकीहै माणार्थ भिन्न प्रकार अपने लक्ष्यस्याततक पाणुसीगति

रूपा विमदवत्या रूगनिरिरेरुगति । (= रूगनिप्रय रूगति) क उपमायक ? = तिनमें रूगतिके समान जो है सो रूगतिहै । यहाँ उपमाअर्थ गया है ॥

परगीगतिव्यासपरैरात्रुम्भी, तथासखारीरुणिसिध्यात्वाचकीपालां = जैसे वाणकीगति लक्ष्यरूपामपयत् सरल है तैसे संसारनिष्ठ तथा विद्यबुधे जीवनिष्ठ अरुगतिरुक्तसमर्थिकी तस्यायत्सयगति धम् १४४ २७ = सारुगतहै ही एक समयकीहै माणार्थ भिन्न प्रकार अपने लक्ष्यस्याततक पाणुसीगति

अर्थात् मोडारहितगति रूओ जो बाण निवृत्ते समान सरलरूपीगीगति औहैसोते,वाविमदगतिहै = तिनमें रूगतिके समान जो है सो रूगतिहै । यहाँ उपमाअर्थ गया है ॥

परगीगतिव्यासपरैरात्रुम्भी, तथासखारीरुणिसिध्यात्वाचकीपालां = जैसे वाणकीगति लक्ष्यरूपामपयत् सरल है तैसे संसारनिष्ठ तथा विद्यबुधे जीवनिष्ठ अरुगतिरुक्तसमर्थिकी तस्यायत्सयगति धम् १४४ २७ = सारुगतहै ही एक समयकीहै माणार्थ भिन्न प्रकार अपने लक्ष्यस्याततक पाणुसीगति

# ॥ विग्रहवती च संसारिणः प्राक्तुर्भ्यः ॥ २८ ॥

विग्रहवती च संसारिण प्राक्तुर्भ्यः ॥ २८ ॥

-विग्रहवती (गति) अविग्रहा गति (च) संसारिण मात्-चतुर्भ्यः ॥ २८ ॥

संसारिणः ॥ मात्-चतुर्भ्यः ॥

=संसारी जीवका चार समयस परिवे २ होता है भावार्थ विग्रहगतिमें

ये चारगतियां होती हैं। आगममें क्रमसे इन गतियोंकी श्रुणति, पाण्डित्यगति, बांगलिकागति, और गामुषिदा गति इसप्रकार चार संज्ञामानी हैं। चारोगतियोंमें श्रुणति मोडरहित है और शेष गतियां मोडराहित हैं। इन चारो गतियोंका स्पष्ट अर्थ ऐसे है कि जिस प्रकार अपने स्वस्थ स्थानवत्क बाणकी गति सीधी होती है वसी प्रकार संसारी और सिद्ध जीवोंकी जा मोडरहित सीधीगति होती है उसको श्रुणति कहते हैं। इस श्रुणति विषयै एक समय खगता है अर्थात् एकही समयमें शरीर ऊड़ना और दूसरा शरीर प्ररख करना ये सब कार्य जानते हैं। इसलिये श्रुणतिमें संसारी जीव अनाशरक नहीं शोवारीजिस प्रकार शयते तिरछी ओर फेंके हुये पदार्थकीगति एक मोडरालेखर होती है। वसी प्रकार संसारा जीवकी जो गति एक मोडरालेखर हो वह पाण्डित्यगति कहलाती है और उसगतिमें दो समय लगते हैं। ( ) जिस प्रकार बांगल इलमें दो सगह मोडराली है वसी प्रकार जिस गतिमें दो मोडरालेखरसे बांगलिकागति करते हैं। और उसरु हानेमें तीन समय लगते हैं। ( ) तथा जिस प्रकार गौक भ्रूममें बहुत मोडरालेखर

१. विग्रहवती = मोडरूप माडरपाती माडरसहित कल्याणरहित विग्रहसहित कुटिलगति (२) यानो आकाशगतिमें इसदुखका पाठ औरअर्थयकसाध  
(३) पंचम आर्क'हास है यह श्रुणयाद्वय नमें जानेके लिये संसारी जीवों की सीधी भी गति होती है और मोडराली कुटिलगति भी जाती है  
एक प्रकार दोनों गतिकी गतियोंके संतुल्यदे लिये है अर्थात् संसारी जीवकी अविग्रहगति भी होती है और विग्रहगति भी होती है परंतु मुक्त जीवकी  
केवल अविग्रहगति होती है और एक समय केवल श्रुणति इस अविग्रहगतिका काल एक समय है मुक्तजीवका भी शरीर संसारी  
शरीरकी संसारीजीवकी अविग्रह गति में (अश्रुणति) सीधीगति श्रुणतिमें एकही समयमें शरीर अनाशरक होती है कि संसारीजीव अन्य लेनेमें अवस्थयी  
नहीं होता आशरक बना रहता है। श्रुणतस महायत्न की असा फि इसका अनुभव है यह आशरक है कि संसारीजीव अन्य लेनेमें अवस्थयी  
एक या दो या तीन समय तक अनाशरक रहने की शोभाअनाशरका मुखके अनुकूल रहता ही है अर्थात् संसारी जीव अस्की चारुकाके अनुसार एका  
नहीं है अनाशरक न शोभाया विग्रहगतिम आशरक की पना अनाशरकी वनके इन अनाशरकी कुटिलगतिमें यह विग्रहकी विभेय दय लेपुण्यमें अविग्रहगतिमें

पट्टनिपासी जगन्नाथदास बलीकृत पदच्छेद और विपत्त्यर्थे सारित सर्वाथेयसिद्धि का अन्वयः सिन्धी मनुवाद मध्याय २ सूत्र २८

उत्ती प्रकार निरुपगतिमें वही गो मूर्धिकागति है, और उसके इतने घार समय कागत है । धारोगतिमें परिणी

और निरुपगत है कि अतुगतिमें संसारी जीव आहारक बना रह सकता है । दोड़कमसहीकृत गोमन्दवार गाथा १०० क नीचे सिद्ध लेख है ।  
 आहारका काल अकृत स्वयमुक्त अवस्थागतः मास मगण्य है । स्वयंयुल्लसा अस्त्यवर्षा मासके अंते प्रत्येक द्वौदि तिकने समय प्रमाण्य  
 आहारकका काल है । इहाँ मदन जो मरण तो प्राण्य पूरी मर्त्ये वीधे होर ही हार तवो अनाहार होर इहाँ आहारका काल इतना जैसे कक्षा ? ताका  
 समाधान-जो मरण मर्य क्रिस अथिक पण्डित्य विपदागति म होर सुधी एक समयकय गति होर ताके अनाहारकयका न होर आहारकयका ही रवेरि  
 ताने आहारकका पूर्णक काल अकृत्यपनेतिरि कक्षा है । पुरि आहारकका अकृत्यकाल तीन समय घटि साखका प्रकारइयां मास आगत  
 जान सुदमय विपे विपदागतिके समय प्रकार इतना काल हो है बहुरि अनाहारकका काल कामेख गरीर विपे अकृत्य तीन समय अकृत्य एक  
 समय आगत जान विपदागति तिय इतने काल पतवरी जो काम वार्थामिका मइख न हो है इदोइकमततरी अनुनाशिल गामन्दवार गाथा १०० ह'  
 ( ) एत अट्टारिसर्वांशुक्ते क शरणसमुकथाय । निरुपवती वालिमइवती वेति' (सर्व शैविसिद्धिपुत्रि एसी सुक्के नीचे वेत्ते) = अतुप सतुपय वा सतुप  
 लिये है । (संसारी जीवकीगति कर्त्तिक यह अट्टारिसर्वांशुक्केयल संसारी जीवास संभय तकाहै) विपदासहित भी (= च) और विपदासहितभी (= च है म  
 ( ) तदा इपुगति तो विपदासहित है । ताका अकृत्य अंस इपु कदिये तीर साहे सो क्या विभावै पद्वे वेसे इपुगति है याका काल एक समय ही है  
 साधुजीविके भी होरि बहुरि मुकामीके भी हा है । बहुरि पाविमुक्तिये एक मोगा होरीयाका काल योग समयहै अथयंजीकृणा वचनिकापुत्र २७-  
 ( ) 'यथापुत्रसमुकथाय-२ २ ॥ अतुप उपपात्तुं न प्रति अरुकी गतिरविमहा कुटिला विपदवती' तस्याय राज्याति क पत्र २७ ॥ एत अट्टारिसर्वां  
 शुकमे अतुप संशिये है अथयं अकार उपपात्तुं न प्रति अरुकी गतिरविमहा कुटिला विपदवती' तस्याय राज्याति क पत्र २७ ॥ एत अट्टारिसर्वां  
 शुकमे अतुप संशिये है अथयं अकार उपपात्तुं न प्रति अरुकी गतिरविमहा कुटिला विपदवती' तस्याय राज्याति क पत्र २७ ॥ एत अट्टारिसर्वां  
 ( ) 'आर्त्ता अतुपवती' गतीनायागोकासंबा । इपुगति पाविमुक्ता = ये आर्त्ता अतुपवतीके नाम है कि इपुगति पाविमुक्तागति  
 सांगतिका गावृत्तिका च इति । यत्राविमहा प्रायमिक्ती = सांगलिकागति और गोपृत्तिकागति येसेहेल्लामयमसीपुगति औरैलोतेअविपदागतिहै  
 अथयं मोगासहितगति इपु जो पाय विषके समान धरलहेतीयोगति है अतुपगतिऔर  
 = अथयं तीन (पाविमुक्तागति सांगलिकागति गोपृत्तिकागति) विपदावर्णमैमोगासहितहै  
 इपुगतिरिपुगतिः (= इपुगतिअप इपुगति) क उपगार्थः = तिनमें इपुगतिके समान मो है सो इपुगतिहै । यहाँ उपगार्थय क्या है ।  
 यपुगेगतिरालसवेअथयं, तथासंसारिणी (विषयीकजीवानी = जैसे बाणकीगति लस्यस्थानपत्र सरल है जैसे संसारिके तथा सिद्धयुगे जीविके  
 अतुपेगतिरकथमचिकी' तस्यायैराकवाति कय, पृष्ठम् २७ = सरलगतिहै सा एक समयकीहै भाषाये भिस प्रकार प्रपये लस्यस्थापत्र क थाणकीगति



कालात्रारणार्थं प्राक्चतुर्थं इत्युच्यते । प्रागितिचन मर्यादार्य, चतुर्थत्समयात्प्राग्वियग्रहवती  
 गतिर्भवति न चतुर्थे इति । कुत इति चेत्-सर्वोच्छ्रविग्रहनिमित्तनिकुटक्षेत्रे उत्पित्सु प्राणी  
 निकुटक्षेत्रानुपूर्व्यनुश्रेष्यभावादिषुगत्यभावे निकुटक्षेत्रप्रापणनिमित्तां त्रिविग्रहा गतिमारमते  
 नोर्ध्वाम् । तथाविधोपपादक्षेत्राभावात् ॥

एगति संसारी और मुक्त दोनों प्रकारके जीवोंके होती है परत शेष गतियों केवल संसारी जीवोंके होती है ॥  
 इत्यनुपाद-काल-अत्रारण-अर्थः॥ प्राक्-चतुर्थः॥ इति॥ काक-कालके निश्रय करने क लिये चार (समय) से पहिले ऐसा (वाक्य सूत्रमें)  
 उच्यत । प्राक्-इति॥ अत्रारण-अर्थः॥ यथादा-अर्थः॥ ॥  
 चतुर्थः॥ समयः॥ प्राक्-विग्रहवती॥ गतिः॥ यवति ।  
 न च चतुर्थे इति । कुत । इति॥ केव ।  
 सर्वोच्छ्र-विग्रह-निमित्त-निकुट क्षेत्रे इति॥ उत्पित्सु ।  
 प्राणीः॥ निकुट-क्षेत्र-आनुपूर्वी-अनुश्रेण्य-अभावात् ।  
 एगति-अभावेः॥ निकुटक्षेत्र-प्रापण-निमित्तम् ।  
 त्रि-विग्रहात्॥ गतिम् । आरमते । न च ऊर्ध्वाम् ।  
 तथाविध-उपपादक्षेत्र-अभावात् ।

न ही शानो है उनी प्रकार संसारी और सिद्ध जीवोंकी आ मात्रा द्रिष्ट सीधी गति है होती है उसे एगुगति वा वाणगति कहत है इत एगुगतिमें  
 एक समय सगला है अर्थात् एक ही समय में शरीर सुझका और दूसरा शरीर प्रकृत करता ये सब कार्य हो जाते हैं । इसीलिये एगु गतिमें  
 मर्यादी जीव अनाहारक नहीं है आहारक ही रहता है उक्त चारों गतियों में पहिली एगुगति संसारी और मुक्त दोनों प्रकारके जीवोंके होती है  
 परत अन्धकार नीज गतियों अथवा संसारी जीवोंके होती है ॥  
 ( ) यदी बात कि संसारी जीव और मुक्त जीव दोनों के अविग्रह गति होती है और अविग्रह गतिका एक समय है । अविग्रह गतिमें संसारी जीव  
 अनाहारक नहीं रहता है सोचकारिकके पूछ ३३३ ३३३स और सर्वव्यतिक्रमिकके ३०वीं सूत्रके इत्याप्यनोले॥ अनाहारिकि निरुच्छरं कार्मकशरीर सञ्जात  
 उपपाद च र्भ गति क्षरत्ये गता आहारका एतत्पुं शिषु समपपु अनाहारकः = कर्म कर्मकारिका अथवा अनाहार की है कर्मनेण शरीरकी विस्मयकतामें  
 उपपन्नके क शरीर आर मातृशरीरसमय ( = अचतुर्गति ) में जीव आहारक है अन्य नीज चतुर्वीर्य (अन्धमे एक प्रकार से मीरका वा सीज जोड़े लिये  
 उत्पत्ति है ) जीव अनाहारक है ] अथ है कि अचतुर्गति काका अन्धकारि जीव विद्यमान है भी आहारक है ॥

चशब्द समुच्चयार्थ । विग्रहमती चाविग्रहवती चेति ॥ विग्रहवत्या गते कालोऽवधृत ।  
अविग्रहाया कियान् काल इत्युच्यते—

एक समयो यस्या सा एकसमया । न विद्यते विग्रहो यस्याः सा अविग्रहा ॥ गतिमतां हि  
जीवपुद्गलानामव्याघतेनैकसमयिकी गतिरालोकान्तादपीति ॥

पठगण १। समुच्चय-अण १।  
विग्रहवती १। प० अविग्रहवती १। प० इति ०  
विग्रहवत्या १। गते १। कालः १। अत्रपुत्रा १।  
अविग्रहाया १।

= (इस सूत्रमें) चकार समुद्रय (=समुच्चय) के लिये है अर्थात् संसारी जीवकी ( गति )  
= विग्रह सहित मी (ञ्व) है विग्रह रहित मी इस प्रकार है  
= विग्रहवाले (जीव) तिका गमनका काल निश्चय वा निर्णीत किया  
करते है एक ही समयमें शरीर छोड़कर उसी समय में अन्य धारण करलेते है और विग्रहगतिमें  
भी अनाधारक नहीं होते आधारक ही बने रहते है और युक्तनीवोंकाली सीवैयोंकोपचारवेर  
= एका काल है इस प्रकार (मन होने पर) कहा जाता है कि  
= एक समयाऽविग्रहा ( गति भवति ) ॥ २९ ॥

कियान् १। काल १। इति ० उच्यते १ ॥  
एकैसमयाऽविग्रहा १ ॥ २९ ॥  
इतरणं - एकसमयाऽअविग्रहा १। गति १। भवति १।

इत्यर्थ - परा १। समय १। यस्या १। सा १। एकसमयाऽनैक १। गति १। भवति १।  
विग्रहो १। विग्रहा १। यस्या १। वा १। अविग्रहा १।  
गतिवत्या १। हि १। जीव - पुद्गलानाम् १। अस्यापातेन १।  
एकसमयिकी १। गति १। आ-लोकान्तात् १। अविग्रहा १। गति १।  
१ २९ ॥ अविग्रहायाके समाख्यापर्याप्तियाम सूत्रमें एक समयोऽविग्रहा = विग्रह रहित गति एक ही समयमें होती है । यतीं आलायाने एकसमये

शून्य वा अविग्रहकरि  
पर्यंत भी है

अनादिकर्मवन्धसन्ततो मिथ्यादर्शनादिप्रत्ययवशात्कर्मप्यादानो विग्रहगतावप्याहारक  
प्रसक्तस्ततो नियमार्थमिदमुच्यते—

॥ एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः ॥ ३० ॥

अनादिकर्मवन्धसन्ततो॥ मिथ्यादर्शनादि प्रत्यय-

नशात् कर्मणि॥ आदानादि विग्रहगतौ॥ अर्थः

आहारकः अस्वकः भवताः अनियमार्थम् ॥ इदम् ॥

“एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारक”

सूपार्थः— नीचाः विग्रहगतौ॥ एकम्

द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः ॥ अनाहारकः ॥ यद्यति ॥

= अनादिकर्मवन्धकी संवानविधौ मिथ्यादर्शनादिकके कारण (अत्यय)

= अशय (यद्भीष) कर्मोका ग्रहण कला है। विग्रहगतिये मी

आहारकः अस्वकः भवताः अनियमार्थम् ॥ इदम् ॥ अर्थः

= जीवो विग्रहगतौ एकं द्वौ त्रीन् वा समयाननाहारक भवति

= जीष नशीन शरीर धारण करनेके लिये गमन करनेमें एक समय

= दो समय अथवा तीन समयतक अनाहारक (= नोकर्मवर्गशाके अण्णरहित) है।

यावार्थ जो भीव सीपा जाय उपने है आहारक है। यह भीष उसी समय

शरीर त्याग करवाँ और उसी समयमें श्चजुगति द्वारा जन्म लेखेवाँ अनाहारक

नहीं शता है आहारकही बना रहता है और जो एक मोदलिकर उपजता है सो एक समय अनाहारक है

दूसेसमय आहारक है जो दाय माङ्गलकर उपजता है सो दोय समय अनाहारक है तीसे समय आहार

अण्ण करता है और जा तीन माङ्गलकर उत्पन्न होता है सा तीन समय तक अनाहारक है चौथे समय

आहारक है अर्थात् चौथे समयमें शरीर मांसिको अण्ण करके आहारक होमाता है ॥

(१) इनेतर आहारके समायो में एक ही वानाहारक देला पाठ इस सूत्रका है। हमारे पहाँ के पाठसे “नीन्” शब्द स्पष्ट है। इस पाठके ही अनुकूल उक्तके यही—एक वा हा समय तक जीव अनाहारक रहता है। ऐसा अर्थ किगा है हमार यहाँके अनुसार एकसमय दोसमय वा तीससमयतक जीव मिग्रहगति में अनाहारक रहता है यही अर्थभेद है। अब दोनों समयव्यापका विग्रहवती च सुसाखियज्याक चतुस्य। इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है तब इनेतरके समायोत्पत्त्यार्थीधिगामसुगमें इससुगके पाठमें नीन् शब्द शाना बाहिये नहीं ता विग्रहवती च संवला- रिय नाक चतुस्य और इससुगका अर्थ आपसमें मेल नहीं काता संभव है कि नीन् शब्द रहगया हो ॥

(२) प्रथम-एक ही तीन समय तक जीव अनाहारक रहता है यही पर आहार कियेका अर्थस्वरूप काक है। जहाँ कथिकल्प अर्थ होता है यहाँ पर लक्ष्मी विभक्ति शानो है इतिदिने एक जो नीन् यही पर आहार पर कथिपर इती सिधु। यक ज्ञानो विभक्ति देनो कथिदिने ? (देनो समयव्यतिकरलोच ५०॥) अनाहारकी = कथिकल्प अर्थमें यद्यपि विभक्ति इतिदिने आहारमें कथिकल्प १॥ ५० ॥ कथिकल्प अर्थ कायार्थी अनाहारक अनाहारक

एतन्निष्ठायां जगरूपसहाय प्रकीर्ण कृत्वा परस्परं चौर विपत्त्यर्थं सति सर्वाभिसिद्धिर्वा शक्यता । एता अत्रुपाद् अथाप्य २ सूत्र ३०  
अत्रिकारात्समयाभिसम्बन्ध । वाशब्दो विकल्पार्थः । विकल्पश्च यथेच्छातिसर्ग ॥ एकं वा द्वौ वा  
त्रौन्वा समयाननाहारको भवतीत्यर्थः ॥ त्रयणां शरीराणां पष्णां पर्यासीनां योग्यपुद्गलग्रहण-  
माहार । तदभावादनानाहारक ॥ कर्मादान हि निरन्तरं, कर्मणशरीरसद्भावे ॥ उपपादबलेन प्रति  
श्लब्धया गतो आहारक । इतरेषु त्रिषु समयेषु अनानाहारक ॥ एव गच्छती

अत्रुपाद् अविद्यात्वं समय-अविस्मय-पद-वाशब्दः ॥ अकारण(बय)से (समय)से समयका संबंध है । (समय) वा शब्द  
विद्या प्रयं ॥ विकल्पः प्रकृत्या ॥ इच्छा-  
प्रतिगर्गः ॥  
पृच्छः वा शब्दः वा शब्दः वा समयान् ॥  
अनाहारकः ॥ भवति । इति ॥ अर्थः ॥ प्रयाणाय ॥  
शरीराणाम् ॥ अणाम् ॥ पर्यासीनाम् ॥  
याग्य पुद्गल-अणुम् ॥ आहारः ॥ अणु-समासात् ॥  
अनाहारकः ॥ कर्मे आदानम् ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ निरन्तरम् ॥  
कर्मण्यशरीरसद्भावे ॥ उपपादबलेन ॥ प्रति ॥  
शक्यता ॥ गतो ॥ आहारकः ॥ इतरेषु त्रिषु  
समयेषु  
अनाहारकः ॥ ॥ एवम् गच्छतः ॥  
अस्यात्समयाभिसिद्धिर्वा अथाप्य एक समय दो समय तीन समय से अनाहारक है । अन्य तीन  
वियदा है तथा तद् नियम है कि अत्रिण कालकृत अणुत्वं संयोग यदा है यदात्र अणिकल्प अथवे विद्यमान होते तस्मिं समसो विमर्शकी  
वागक द्वितीया विमर्शकी ही होती है इत्यन्तिये गुणम् एक ही शब्द द्वितीया विमर्शकीका प्रयोग ही ठीक है । द्वितीया विमर्शकीका प्रमाण यह है कि  
अथाप्यपि ३-५ कालावकाशोऽत्यन्त संयोगे ॥ द्वितीया, अथाप्य संयोग गम्यमाना ही तौ काल और अथाप्यती ॥ अथाप्यती शब्दोंमें द्वितीया विमर्शकी  
मासमयीनि ॥ मासम् अथोत् ॥ अत्रे इत्यन्ते मासत्वं पठुता है । यहाँ मासते स्थानमें मासम् द्वितीया विमर्शकी लाने हैं । मासस्य किरणिते ॥ मासमें  
शोवार पठुता है अथाप्यकेयु पर्वका ॥ शोयके एक भागमें पर्वत है यदा शोनेतया इत्यन्तम् अथाप्य संयोग तस्मिं ॥

मयमिं  
अथाप्य

अथाप्य  
अथाप्य

अनादिकर्मबन्धसन्ततो मिथ्यादर्शनादिप्रत्ययवशात्कर्मण्य्यादानो विग्रहगतावप्याहारक  
प्रसक्तस्तनो नियमार्थमिदमुच्यते—

# ॥ एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः ॥ ३० ॥

अनादिकर्मबन्धसन्ततो॥ मिथ्यादर्शनादि प्रत्यय-  
वशात् कर्मणि॥ आदानो विग्रहगत्वोऽपि  
आहारकः प्रसक्तः ततः अनियमार्थो॥ इत्यु॥  
एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकं  
सुषार्यो-नीय विग्रहगत्वोः एक्युः  
दोऽप्यौत्वाऽसमयात् आनाहारक भवति ।

= मनादिकर्मबन्धकी सतानविषे मिथ्यादर्शनादिकके कारण (=प्रत्यय)  
=यस (यश्रीच) कर्मोका प्रणय कता है। विग्रहगतिये भी  
=आहारक(का)प्रसंग आता है विस(हे)से नियमके अर्थ यह कहा जाता है कि  
=जीवो विग्रहगतौ एक द्वौ त्रीन् वा समयाननाहारक भवति  
=नीव नवीन शरीर धारण करनेके लिये गमन करनेमें एक समय  
=दो समय अथवा तीन समयतक अनाहारक(=नोकर्मकर्णणाके अणुरहित)है ।

माषार्थे नो जीव सीमां जय उपमे है आहारक है । यह जीव वसी समय  
शरीर त्याग करताहैऔर वसी समयमें श्रुतगति द्वारा जन्म लेखेताहैअनाहारक  
वना रहता है और जो एक मोड़लेकर उपमता है सो एक समय अनाहारक है  
दूसरसमय आहारक है जो दाय मोड़लेकर उपमता है सो दोय समय अनाहारक है वीने समय आहार  
श्रण करता है और जो तीन मोड़लेकर उत्पन्न होता है सा तीन समय तक अनाहारक है चौथे समय  
आहारक है अर्थात् चौथे समयमें शरीर मांसिको प्रणय करके आहारक होजाता है ॥

(१) इत्येवमत्र आजायते समाख्यो मे एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः एता पाठ इव सूत्रका है । हमारे यहाँ के पाठसे "वीन" शब्द व्युत्प है । इस  
पाठके ही अनुकूल उनके यहाँ -एक वा दो समय तक जीव अनाहारक रहता है" ऐसा प्रय किया है हमार यहाँके अनुवार एकसमय दोसमय  
या तीससमयक जीव विग्रहगति में अनाहारक रहता है यही अयमेव है । अब शानो सामप्रदायका विग्रहगती च संसारिण्य्याक श्रुत्या इव  
मूत्रपा पाठ और अर्थ एक है तव इत्यागत्योके समाख्यतस्यायिपिगमयुतामे इससूत्रके पाठमें जीव शब्द होना चाहिये नहीं तो विग्रहगती च संसा-  
रिण्य्याक श्रुत्या और इससूत्रका अर्थ आपसमें मेल नहीं पाता समर्थ है कि जीव शब्द रह गया हो ।

(२) 'मूल-एक वा तीन समय तक जीव अनाहारक रहता है यहाँ पर आहार क्रियाका अन्विकल्पना कात है । जहाँ अधिकरण फर्य होता है यहाँ  
पर वसती विभक्ति शानो है इनशिरे एक दो चौथे पर आहार क्रियाका अन्विकल्पना करी शिष्ट पर ३० नो जीविकीन होती कातिके ? (अतो सार्वभ्ययिकत्वोऽपि  
-११२६ अउत्तरायती = अयिकत्वम् अर्थमे सत्यती विभक्तिः दोतीके) काप्यते अतिक्रमत् ३१ अ ३१ । अयिप्यारण्यका अर्थ आहारक है (अप्यार) यहीप्यारण्यका

मित्रश्रागर्भं । मानोपभुक्ताहाररथाहा गर्भं । उपैत्युपपद्यतेऽस्मिन्निति उपपाद । देवनारको-  
त्पत्तिस्थानविशेषसंज्ञा ॥ एते त्रय सप्तरिणा जीवानां जन्मप्रकारा शुभाशुभपरिणामनिभि  
तत्तुर्भेदविपाककृता ॥

अथाधिकृतस्यसप्तरिणियोगोपभोगोपलब्ध्याधिष्ठानप्रवणस्यजन्मनोयोनिविकल्पावकव्याइत्यतआह

मित्रश्रुत्तुर्गर्भः वाऽव्याज उपयुक्त आहार- = मिश्रित होना (= मिश्रण) सागर्भ है । अथवा मातासे जायदुये (उपयुक्त) आहारके  
गणनादि। गर्भः। = निगलनसे होना सोगर्भ है अर्थात् माताके आहारको अपना आहार बनाया जाय

रविनि उपपद्यत । अग्निर्दे इति उपपाद । = अग्निसर्वे पशुपत्ता है (= रवौति/या भिसर्भे उरजता है (= उपपद्यत) ऐसा उपपाद है  
अर्थात् भिसर्भे पशुपत्तरि वा भिसका आहारको उपपत्ता है सा उपपाद है

इद नारः-गत्याति-स्थान-रिषय-संज्ञा ॥ = इब और नारदियोंक उपजनन स्थानका (उपपाद यः) विशेष नाम है

एत त्रयः संसारिणो जीवानां मन्म-यत्तारगः = ए तीन भेद ससारी मणियोंके मन्मक हैं वा मन्मशरण करनेके हैं ।

गुण-अशुभ-परिष्ठाप निमित्त-कर्मभेद- = येतीनों मन्म) अर्च्छे घुरे पाबोंके कारणसे कर्मोंके भेदोंके

विपाककृताः। = उदयस क्रिये जाति है अर्थात् परिणामोंके कार्य कर्म कन्वके भेद हैं और कर्म कर्मोंके  
फल कर्म भेद हैं क्योंकि कारणके अनुकूलता सो कर्मोंके कार्य दोल पदवार है । शुभअशुभ  
मिसपकारका कर्म होना है उसीके अनुकूल कर्मोंकी उत्पत्ति होती है ।

अथ अधिकृतस्यः। = अथ भिस(अग्निका) ऊपरसे अग्निकार वा मन्मशरण बलाआहार और

सप्तरि-रिषय-उपमाय-उपसंस्थि- = जो संसारीनीबोला विषययोगोंकी (संसारि-विषययोग) शक्ति (= उपसंस्थि) के

अधिष्ठान-परिष्ठाप-निमित्त-कर्मभेद- = अध्यापयत शरीरके उत्पत्तिमें (= अधिष्ठापन) कारण है वा प्रतीक है (= अधिष्ठापन) उसमन्मके

यानि रत्नानि। = यानियोंके भेद (= रत्नानि) कर्म वा श्रिये । इस क्रिये करते हैं कि

(१) उत्पत्ति-उप उपचर्ग सतीपके कर्मों है प्रति से ए गुण रका है । ई अर्थात् किलीय गलका पातु परस्मैपद 'आता' के अर्थमें अध्यापयतु ५६  
के अनुसार है का गुण ए हो कर ति लभ्य युक्त एक यवन परस्मैपद वर्तमान कालकी ओझी एति बना उपपत्ति = उत्पत्ति = समीप (= उप)  
आता है = प्रति उपपद्य समीप आता है अर्थात् पशुपत्ता है ३(२) उपपद्यते = उप पद-य-ते ॥ उप = आत्मा (पशुपत्तु ३७) पशु पित्वादि  
गुण गलका आत्मान पवी पातु जिसका कर्म प्रति होना-- है । य विकल्प है जो बहुत गलकी पातुओं के पीछे औप-से-ने इत्यादि प्रत्य  
यों के पहिले ओझा आता है और ते आत्मानेपर एक यवन अन्व गुण वर्तमान कालका मन्मय है । उपपद्यता शब्दार्थ आरम्भता की (संसारमें)  
आता है। एसा है अर्थात् उपपत्ता है ॥

ऽभिनवमूर्त्यन्तरनिर्घृतिजन्मप्रकारप्रतिपादनार्थमाह—

॥ सम्मूर्च्छनगर्भोपपादाज्जन्म ॥ ३१ ॥

त्रिषु लोकधूर्धमधस्तिर्यक् च देहस्य समन्ततो मूर्च्छन सम्मूर्च्छनमवयवप्रकल्पनम् ।  
स्त्रिया उदरे शुक्रशोणितयोरंगण

अभिनवमूर्ति अन्तर-निर्घृति जन्म-

मन्त्रा-प्रतिपादन अर्थपूर्वम् ॥ आर ।

'सम्मूर्च्छनगर्भोपपादाज्जन्म ॥ ३१ ॥ = सम्मूर्च्छनात् गर्भात् उपपादात्<sup>(१)</sup> - जन्म ॥ ३१ ॥

मूर्त्तौ-सम्मूर्च्छनार्थम् ॥

गमात् ३ ।

उपपादात् ३ ।

जन्म ३ ॥

= नवीन अन्य शरीरकी रचना (= निर्घृति) का और जन्मके

= भेद अनावनके किये वा करनेके किये कहते हैं कि

= सम्मूर्च्छन (अर्थात् वीनलोकमें बर्षा तथा भ्रूवव सहित शरीरके वनन) से

= गर्भ (अर्थात् भावाकारज और विवाक धीर्यके संयोग वा सङ्ग) से

= उपपाद ( अर्थात् भिस स्यान्में आकार उल्लासों बर्षा) से-उपपादशुभ्यासे

अथवा उपपाद स्यान्से । (उपपाद-देव और नारिकियोंके उत्पन्न होनेके स्यान्)

= (सीबके) नवीन शरीरका धारण (= जन्म) है ॥ इस सूत्रका सारांश यह है कि

सम्मूर्च्छनजन्म, गर्भजन्म, उपपादजन्म ये ही तीन भेद जायके हैं ॥

सूत्रका अन्यपाठ - सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थः-सम्मूर्च्छनगर्भ उपपादात् जन्म ॥

उपपादात् त्रिषु लोकेषु इत्यर्थम्-अपसृतिर्यक्-व-तीनलोकमें ऊपर नीचे और (=व) तिर्यक्

दृश्यम् ॥ समन्तत ० मूर्च्छनपूर्वम् ॥ सम्मूर्च्छनपूर्वम् ॥ = चारी और वा सर्षा ( = समन्ततः) शरीरका धनमाना (= मूर्च्छन) सो सम्मूर्च्छन है

अथवा उपपादजन्म ३ ॥

त्रिषु लोकेषु इत्यर्थम्-अपसृतिर्यक्-व-तीनलोकमें ऊपर नीचे और (=व) तिर्यक्

दृश्यम् ॥ समन्तत ० मूर्च्छनपूर्वम् ॥ सम्मूर्च्छनपूर्वम् ॥ = चारी और वा सर्षा ( = समन्ततः) शरीरका धनमाना (= मूर्च्छन) सो सम्मूर्च्छन है

अथवा उपपादजन्म ३ ॥

१ दस्तावेजके समाख्यमें उपपादात् शब्दके स्थानमें उपपादात् शब्द है और मूर्च्छनपूर्वम् शब्दके स्थानमें उपपादात् शब्द है ॥

(२) यद्यपि अत्र ३ उपपादात् शब्दके स्थानमें उपपादात् शब्द है और मूर्च्छनपूर्वम् शब्दके स्थानमें उपपादात् शब्द है ॥

मूर्च्छनपूर्वम् शब्दके स्थानमें उपपादात् शब्द है और मूर्च्छनपूर्वम् शब्दके स्थानमें उपपादात् शब्द है ॥

उपपादात् शब्दके स्थानमें उपपादात् शब्द है और मूर्च्छनपूर्वम् शब्दके स्थानमें उपपादात् शब्द है ॥

मर्त्या  
अध्याय  
८७

मित्थण गर्भं । मावोपमुक्ताहारगरणाहा गर्भं । उपेत्युपपद्यतऽसंमन्त्रिति उपपाद । देवनारको  
त्यत्तिस्थानविशेषसंज्ञा ॥ एते त्रय ससारिणां जीवाना जन्मप्रकारा शुभाशुभपरिणामनिमि  
त्तमर्भेभेदविवाककृता ॥

अथाधिष्ठितस्य सारित्रिपयोपयोगोपलब्ध्याधिष्ठानप्रवणस्य जन्मनोयोनिविकल्पावक्तव्या इत्यत आह

विभ्रणस्य<sup>१</sup> गर्भं<sup>२</sup> ॥ मा<sup>३</sup>मा<sup>४</sup> उपमुक्त आहार<sup>५</sup> - मिभित् प्रोक्त<sup>६</sup> (मिभ्रण) सोगर्भं<sup>७</sup> है । अथवा यातासे बायेदुये (उपमुक्त) आहारके  
गण<sup>८</sup>द्वारे<sup>९</sup> गर्भं<sup>१०</sup> ॥  
वैभिति उपपद्यत I अग्निद्वारे इति उपपादः<sup>११</sup> = निगलनसे होना सोगर्भं इति याताके आहारको गणना आहार बनाया जाय  
द्व नारक उत्पत्ति-स्थान-विशेष-संज्ञा ॥  
एत स्य ॥ ससारिणां जीवानां जन्म प्रकाराः ॥ = ये तीन भेद ससारी प्राणियोंके जन्मक है या यदमारण करनेके है ।  
शुभ-अशुभ-परिणाम-निमित्त-कर्मभेद-  
विवाककृताः ॥

अथ<sup>१</sup> अधिष्ठितस्य<sup>२</sup> ॥  
ससारि-त्रिपय-उपयोग-उपलक्ष्य-  
यानिष्ठितस्य<sup>३</sup> विकल्पाः<sup>४</sup> इति<sup>५</sup> मा<sup>६</sup>मा<sup>७</sup> उपमुक्त आहार<sup>८</sup> I = यात्रियोंके भेद (= विकल्प) कृता जायते । इस सिधे कहे है कि  
(१) उच्यते - उप उपसर्गं सतीयेके कर्मसे है एति में ए गुण ईका है । ई अगति कृतिय गणना पातु परस्मैपद 'जाना'के कर्ममेंही अप्यायर एत ५६  
के अनुसार ई का गुण ए हो कर ति कर्म्य गुण एक पक्ष परस्मैपद संतमान कालको जोड़ो एति यता उपपद्यति = उच्यते = समीप (= उप)  
जाता है = एति स्मरण्य समीप जाता है अतएव पशुवता है म(२) उपपद्यते = उप-पशु-य-ते ॥ उप = आरम्भ (एतच्छब्दको गुण उच्यते) पशु विवादि  
यो के पक्षसे जोड़ा जाता है और तिसका कर्म माति होता है । ए विकल्प है जो अशुभ गणकी पातुओं के पीछे औप-से-ते इत्यादि मत्स्य  
भाम होता है ऐसा है अप्याय उपपद्यता है ॥

अथ<sup>१</sup> अधिष्ठितस्य<sup>२</sup> ॥  
ससारि-त्रिपय-उपयोग-उपलक्ष्य-  
यानिष्ठितस्य<sup>३</sup> विकल्पाः<sup>४</sup> इति<sup>५</sup> मा<sup>६</sup>मा<sup>७</sup> उपमुक्त आहार<sup>८</sup> I = यात्रियोंके भेद (= विकल्प) कृता जायते । इस सिधे कहे है कि  
(१) उच्यते - उप उपसर्गं सतीयेके कर्मसे है एति में ए गुण ईका है । ई अगति कृतिय गणना पातु परस्मैपद 'जाना'के कर्ममेंही अप्यायर एत ५६  
के अनुसार ई का गुण ए हो कर ति कर्म्य गुण एक पक्ष परस्मैपद संतमान कालको जोड़ो एति यता उपपद्यति = उच्यते = समीप (= उप)  
जाता है = एति स्मरण्य समीप जाता है अतएव पशुवता है म(२) उपपद्यते = उप-पशु-य-ते ॥ उप = आरम्भ (एतच्छब्दको गुण उच्यते) पशु विवादि  
यो के पक्षसे जोड़ा जाता है और तिसका कर्म माति होता है । ए विकल्प है जो अशुभ गणकी पातुओं के पीछे औप-से-ते इत्यादि मत्स्य  
भाम होता है ऐसा है अप्याय उपपद्यता है ॥



अभिनयमूर्त्यन्तरनिर्वृत्तिजन्मप्रकारप्रतिपादनार्थमाह—

॥ सम्मूर्च्छनगर्भोपपादाज्जन्म ॥ ३१ ॥

त्रिषु लोकपूर्वमधस्तिर्यक् च देहस्य समन्ततो मूर्च्छन सम्मूर्च्छनमवयवप्रकल्पनम् ।  
त्रिया उदरे शूक्रशोणितयोगरण

अभिनयमूर्ति अन्तर-निर्वाष क्रम-  
प्रकार-शशिपादन मयसूरी॥आ।।।

'सम्मूर्च्छनगर्भोपपादाज्जन्म' ॥ ३१ ॥ = सम्मूर्च्छनात्-गर्भति उपपादात्-जन्म ॥ ३१ ॥

शूक्राणि-सम्मूर्च्छनात् ॥

गपात् ॥

उपपादात् ॥

न्य ॥

=नवीन अन्य शरीरकी रचना(=निर्वृत्ति) का और अन्यके  
=भेद बनावनके खिये वा कानके खिये करते हैं कि  
=सम्मूर्च्छन(अर्थात् वीनखोकरमें बहा वहां अववव सहित शरीरके वन) से  
=गर्भ (अर्थात् पावाकरत्र और पिताक वीर्यके संयोग वा सवय) से  
=उपपाद ( अर्थात् जिस स्थानमें आकार उत्पन्न हो वहां) से-उपपादशय्यासे  
अथवा उपपाद स्थानसे । (उपपाद=देवभौरनारिकियोंके उत्पन्न होनेके स्थान)  
=(नीबक) नवीन शरीरका धारण(=जन्म) है ॥ इस दुवला सारांश यह है कि  
सम्मूर्च्छनजन्म,गर्भजन्म,उपपादजन्म ये ही तीन भेद ज-पके हैं ॥

सूत्रकाअन्यपाठ -सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ॥ ३१ ॥

शूक्राणि-सम्मूर्च्छन-गर्भ उपपादात्-जन्म ॥  
उत्पन्नत्वात् त्रिषु-लोकेषु-उत्पन्न-अपस्-तिर्यक्-च-वीनखोकरमें ऊपर नीचे और (=च) तिर्यक्  
दस्त्विति॥ समन्तत मूर्च्छनसूरी॥सम्मूर्च्छनसूरी॥=चारी और वा बहा वहां (=समन्ततः) शरीरका बनाना (=मूर्च्छन)को सम्मूर्च्छन है  
अपपर वचननम् ॥

त्रिया उदरे शूक्र-शोणितपादात् ॥ =नारीके उदरमें वीर्य (=शुक्र) और खोह (व्योणित) पिष्टना (आरण्य)  
१ इच्छासकके समावयवम्-उपपादात्-अपस्-तिर्यक्-च-वीनखोकरमें ऊपर नीचे और (=च) तिर्यक्  
२ यद्यपि जन्मके उपपादात्-अपस्-तिर्यक्-च-वीनखोकरमें ऊपर नीचे और (=च) तिर्यक्

व्यानिवासी मगुरुपसाप वकीषा कृत पत्रवेद और निपत्त्यर्थासिद्धि सपर्ययसिद्धिका शय्याः शिल्पी अमुनात् अथाप २ सूत्र ३२  
 आरामनश्चैतन्व्यविशेषपरिणामश्चित्तस्य सह चित्तेन वर्तते इति सचित्तभाशीत इति स्पर्शविशेष  
 शुक्रादिवदुभयवचनरात्तद्युक्त इव्यमप्याह ॥ सम्यग्भृत सवृत । सवृत इति दुरुपलक्ष्य प्रवेश  
 उच्यते ॥ सह इतरैर्वर्तन्त इति सेतरा । सप्रतिपक्षा इत्यर्थ ॥ के पुनरितरे ॥ अचित्तोष्णविवृता ॥

(७) संवृतपानि-जीवका वर उत्पत्ति स्थान है जिसके पृष्ठ भा-आदित वा हके हों जैसे देव, नारकी और एकेन्द्रजीव संवृत  
 पानि वाल हैं-जिस स्थान पर हमरी उत्पत्ति होती है वर स्थान हका हुआ रखारै उपड़ा हुआ नही रहता है ।  
 (८) विवृत वा । जीवका वर उत्पत्ति स्थान है जिसके पृष्ठलक्ष्य संकल्प माट पीले-जैसे को भीष दा इन्द्रिय तीन इन्द्रिय और  
 निवृत्तियानि वा इन्द्रिय हैं वे विवृत यानि वाले हैं-उनकी उत्पत्ति का स्थान उपड़ा हुआ वा सुखा हुआ रहता है ॥

(९) संवृतविवृतपानि-जीवका वर उत्पत्ति स्थान है जिसके पृष्ठलक्ष्य संकल्प कितने ही युद्ध हों कितने ही उपदे रूप हों जैसे जो जीव  
 गर्भमद्वि संयुक्तविषयस्य मिश्रणानि वाले हैं उनकी उत्पत्तिका स्थान कुछ हका हुआ सो कुछ उपड़ा हुआ रहता है ॥

सुप्तनुगाद आत्मनः ॥ संतत्य-विशेष-परिणामः ॥ चित्तं ॥  
 सहचित्तेन ॥ ॥ वर्तते ॥ इति ॥ सचित्तं ॥  
 शीत ॥ इति ॥ सपर्ययसिद्धिः ॥ युक्त्यादिसत्त्व ॥ उभय-  
 वचनत्वात् ॥ ॥ अद्व युक्त्यु ॥ ॥ द्रव्यमूर्त्ति ॥  
 अपि ॥ चार ॥

= शेषक जानेसे उस(शीत)मिश्रित(=युक्त)द्रव्य (अर्थात् शीतलद्रव्य) का  
 इसलिये शीत शीतलद्रव्यका भी कहते हैं ॥  
 = पहले प्रकार विराडुभा भाञ्जादित वा आहत है सो सवृत है  
 = नदीदित्याभारनीरुत्पत्त्यागवारै मिसका (=दुरुपलक्ष्य) पदेगुरेसासंवृतकरानावा  
 = बखटा करि सहित प्रवर्तता है ऐसा सेतरा( शय्याका अर्थ ) है  
 = विपक्षी वा विरोधवाचिपक्षि का है ऐसा अभिप्राय है । और इतर जोन है  
 (=उपर)अविष और उष्ण और विहत(पयासस्य सचित्तशीत-संवृत से उखटे) है

= शेषक जानेसे उस(शीत)मिश्रित(=युक्त)द्रव्य (अर्थात् शीतलद्रव्य) का  
 इसलिये शीत शीतलद्रव्यका भी कहते हैं ॥

= पहले प्रकार विराडुभा भाञ्जादित वा आहत है सो सवृत है  
 = नदीदित्याभारनीरुत्पत्त्यागवारै मिसका (=दुरुपलक्ष्य) पदेगुरेसासंवृतकरानावा

= बखटा करि सहित प्रवर्तता है ऐसा सेतरा( शय्याका अर्थ ) है  
 = विपक्षी वा विरोधवाचिपक्षि का है ऐसा अभिप्राय है । और इतर जोन है  
 (=उपर)अविष और उष्ण और विहत(पयासस्य सचित्तशीत-संवृत से उखटे) है

= शेषक जानेसे उस(शीत)मिश्रित(=युक्त)द्रव्य (अर्थात् शीतलद्रव्य) का  
 इसलिये शीत शीतलद्रव्यका भी कहते हैं ॥

= पहले प्रकार विराडुभा भाञ्जादित वा आहत है सो सवृत है  
 = नदीदित्याभारनीरुत्पत्त्यागवारै मिसका (=दुरुपलक्ष्य) पदेगुरेसासंवृतकरानावा

पुष्पार्थ  
 श्रियायः

एतानिवासी जगत्सप्तसाय व मीलकृत पदच्छेद और विपक्षत्पर्यं सारित सर्वायसिद्धिज्ञा शब्दशः शिवी मनुवाद भाष्याय २ सूत्र ३२

# ॥ सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥ ३२ ॥

“ सचित्तशीतसंवृता सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनय ॥ ३२ ॥

रुतार्थ-सविष-शीत-संवृताः ॥  
सा-देवराः ॥  
वषयक्याः विभ्रामाः ॥  
वद-योनयः ॥  
=सविष, शीत, संवृत (और सविष-शीत-संवृत इन एक एकके)  
=मणिपत्नी, विपत्नी वा उखटे (मो अविष-उष्ण-विहृत) सडित (=सा)  
=और (सविष-शीत-संवृत) एक एकके विभ्र (नैसेतविवाविष, शीतोष्ण, संवृतविहृत) सारिव  
=उन (सम्पूरुर्बर्नाद बन्ना) श्री योनिये वा उत्पत्तिस्थान है (=योनय) अर्थात्

- (१) सपित्त्यानि नीषका वर उत्पत्तिस्थान है जो चेतना सारित हो जैसे असाधारण शरीर वाले जीवोंके एतरी शरीरमें बहुत नीष ई तिससे परस्पर आधयसे सविष है
- (२) अविष योनि नीषका वर उत्पत्तिस्थान है नरार्थपुरलक्षरूप वा पुरलक्षव व अचित्त हो नैसे देव नारिकीयोंके उगमने के स्थान अविष है
- (३) सचित्ताविष-नीषका वर उत्पत्तिस्थान है नरार्थ चेतना और अचतन पुरलक्षके स्कन्धों जैसे जो नीष गर्भसे आयमान है गर्भम ई वे सचित्ताविषस्कन्ध मिभयोनिके पारक है क्योंकि वनके उत्पत्तिक स्थानस्वरूप पावाके उदरमें धीर्य, और रज (साह) अविष पदार्थ है उनका संयन्त्र सचेतन मावाके आत्माके साथ है ॥
- (४) शीतपानि-नीषका वर उत्पत्तिस्थान है नरार्थ शीत स्थीक्य पुरलक्षों जैसे किस्ती किस्ती देव और नारिकीयोंके शीतरूप पुरलक्षके रूपाही उत्पत्तिस्थान है (किस्ती किस्ती देव नारिकीयोंके उष्णरूपही पुरलक्ष स्वरूप उत्पत्तिका स्थान है)
- (५) उष्णयोनि नीषका वर उत्पत्तिस्थान है नरार्थ उष्णरूपे देव नारिकीयोंके शीतरूपे है अतः वे शीतोपनिवाले भी शीत ई और उष्ण यानिवाले भी शीत है
- (६) शीते प्योनि-नीषका वर उत्पत्तिस्थान है नरार्थ शीताप्येके विभ्ररूप पुरलक्षों अर्थात् देव और नारकी और अग्निक्ताय मिथयानिवाले होते हैं इस प्रकार उनमें शीत, उष्ण, और शीताप्योनों प्रकारकी योनियोंका होना संभव है ॥

(१) अतः यहाँ की बुद्ध्या पुरलक्षमें संवृता पाठ है यही क ही पर (संवृता) पाठ है उदा अतः यहाँ (संवृता) पाठ है उल्लेख अनुकूल यहाँ आशयोंका पाठ एक है अर्थात् नी एक है संवृता = कदा कदा विनाशक संवृता यीने पाठ हीक है ॥

एवमिवासा। अणुरूपसहाय यकील कृत्व पक्वच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वाथिसिद्धिचिका शब्दः। शिवी मनुवाव भष्याय २ सूत्र ३२  
 आत्मनश्चैतन्यविशेषपरिणामचिन्तना सह चित्तेन वर्तत इति सचित्तः॥शीत इति स्पर्शविशेष  
 शुद्धादिवदुभयवचनत्वान्नाद्युक्त द्रव्यमप्याह ॥ सम्यग्भूत संवृत । सवृत इति दुरुपलक्ष्य प्रदेश  
 उच्यते ॥ सह इतरैर्वर्तत इति सेतराः । सप्रतिपक्षा इत्यर्थ ॥ के पुनरितरे? अचिन्तोष्याविवृता ॥

(७) संवृत्तपानि-जीवका वर उत्पत्ति स्थान है जिसके पुत्रल आ-आश्रित वा इके ही जैसे देव, नारकी और एतेन्द्रियजीव सहव  
 योनि वाल है-जिस स्थान पर इनही उत्पत्ति होती है वर स्थान इका हुआ रहता है जयदा हुआ नहीं रहता है ।  
 निवृत्तियाणि । जो इन्द्रिय है वे विवृत योनि वाले है-उनकी उत्पत्ति का स्थान अयदाहुमा वा दुल्लाहुमा रहता है ।

(८) विवृत वा । जीवका वर उत्पत्तिस्थान है जिसके पुत्रल रूप रहन्य माद हीले-जैसे को जीव वो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय और  
 निवृत्तियाणि । जो इन्द्रिय है वे विवृत योनि वाले है-उनकी उत्पत्ति का स्थान अयदाहुमा वा दुल्लाहुमा रहता है ॥  
 गर्भभरि संवृत्तविवृत रूप निभयोनि वाले है। उनकी उत्पत्ति का स्थान अयदाहुमा वा दुल्लाहुमा रहता है ॥

वृत्तपुत्राद् आत्मनः । संवृत्य-विशेष-परिणामः । चिन्तः ।  
 सहसंविचनेन ॥ वर्तते । इति सचित्तः ।  
 शीत ॥ शक्तिः स्पर्शविशेषः । शुद्धादिवत् उभय-  
 वचनत्वान्दुः । सह युक्तः ॥ प्रकृतम् ॥  
 अचिन्तमाह ।

सम्यग्भूतः । संवृतः ।  
 इत्-उपलब्धः । प्रदेयः शक्तिः । संवृतः । उच्यते ।  
 सहसंविचनेन ॥ वर्तते । इति सचित्तः ।  
 स-नविविपक्षाः ॥ इति मयाः । केः । पुनः इतरैः ॥  
 अचिन्त-उच्य-विहताः ॥  
 = वायु क जानेसे उस (शीत) पिखित (= युक्त) द्रव्य (अर्थात् शीतलद्रव्य) का  
 इसखिये शीत शीतलद्रव्यका भी कहते हैं ॥  
 = नवदिल्यामौनशीलसप्यागारै (जिसका (= दुरुपलक्ष्य) प्रदेश) से सासंभव करमावा  
 = बलदा करि सचित्त वर्तता है ऐसा सेतरा ( शुद्धका अर्थ ) है  
 = विपक्षी वा विरोधवालीविधि का है ऐसा अभिप्राय है । और इतर कोन है  
 (= उपर) अविष और उच्य और विवृत (पयासंस्थ सचित्त-शीत-संवृत से उच्यते) है

उभयात्मको मिथ । सचित्ताचित्त शीतोष्ण संबन्धविवृत इति ॥ चशब्दः समुच्चयार्थ । मिथश्च  
 योनयो भवन्तीति ॥ इतरथा हि पूर्वोक्तानामेव विशेषण स्यात् ॥ एकश्च इति वीप्सार्थ ॥ तस्य  
 ग्रहणं क्रममिथप्रतिपत्यर्थम् ॥ यथैवं विज्ञायेत । सचित्तश्च अचित्तश्च शीतश्च उष्णश्च सवृत्तश्च  
 विवृतश्चेति ॥ मैव विज्ञायि सचित्तश्च शीतश्चेत्यादि । तद्ग्रहण जन्मप्रकारप्रतिनिर्देशार्थम् । तथा सम्भू  
 र्छन्दादीना जन्मना योनय इति त एते नव योनयो वेदितव्याः ॥ योनिजन्मनोरविशेष इति चेत्

(सचिष-शीत-संहर को ययासस्य अचित्त-उष्ण-विवृतसे मिलाओ तो)  
 = दोनों रूप मिथ है । (वे) सचिषाचिष, शीतोष्ण, और  
 = संहरवसिहर इस प्रकार(मिथ) है । प्रकार समुच्चय के लिये है

(यदि च शब्द समुच्चय वा समाहारके लिये न हो तोऔर मिथयोनियेनहोता)  
 = पहिले बने हुये (सचिष-शीत-संहर) का ही (मिथशब्द) विशेषण हो भाष्य ॥  
 = एकपद(=एकशः)ऐसा(शब्द)आरकारकेलियेही किम(एकशःशब्द)काआदान  
 = क्रमसे(सचिष शीत-संहरका ययासस्य अचिष-उष्ण विहरके साथ) मिथकी  
 = यापि वा त्रुचिके लिये है । जैसे इसप्रकार जानो कि  
 = सचिष और अचिष और (च) शीत और (च) उष्ण  
 = और(=च)संहर और(=च)विहर ऐसे(समकामिमिथ) जैसे पतिजानो कि  
 = सचिष और शीत इत्यादिका(मिथ) है । (सम्भू)संहर(शब्द) का आदान  
 = जन्मक मेरीके जनाइनके लिये है । तिन  
 = सम्पूर्ण काविक जन्मही(येनच)योनिये वा उत्पत्तिस्थान है  
 = त इतनी सब योनिये जानना चाहिये  
 = चाकि और जन्मये पर्यवर्ती(=अचिष्य) ऐसी शीतशीतोष्ण (में) करते है कि

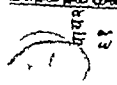
उभय-आत्मकः १ । मिथः १ । सचित्ताचित्तः १ । शीतोष्ण १ ।  
 सवृत्तविवृत १ । इति-चशब्दः १ । समुच्चय-अर्थः १ ।  
 मिथः १ । च-योनय १ । यानय १ । प्रतिनिर्देशार्थम् १ । दि\*

एत उक्तानाम् १ । एव-उच्यते १ । स्यात् १ ।  
 एकशः इति-वीप्सा-अर्थः १ । तस्य १ । प्रत्ययम् १ ॥  
 इय-मिथ-  
 प्रतिपत्ति अर्थम् १ ॥ यथा-परम्-विश्रायेत १ ।  
 सचिषः १ । च अचिषः १ । च-शीतः १ । च-उष्णः १ । च-  
 संहर १ । च-विहर १ । च-उति-उमा-परम्-विज्ञायि १ ।  
 सचिषः १ । च-शीतः १ । च-इत्यादिः १ ॥ शब्द-अण्यम् १ ॥  
 अन्य प्रकार प्रति निर्देश-अर्थम् १ ॥ तेषाम् १ ।  
 सम्पूर्वनादीनाम् १ । जन्मानाम् १ ॥ योनयः १ । इति\*  
 त १ । एतम् नव १ । यानयः १ । वदितव्याः १ ।  
 यानि जन्मनो १ ॥ अचिष्यताः १ । इति-च-  
 त्वम्

न आधाराधेयभेदात्तमेद ॥ त एते सचित्तादयो योनय आधारा । आधेया जन्मप्रकाराः ॥  
यत् सचिन्तादियोन्यधिष्ठाने आत्मा सम्मूर्च्छनादिना जन्मना शरीराहारेन्द्रियादियोग्यान्मु-  
द्रलानुपादत्ते ॥ देवनारका अचित्तयोनय । तेषां हि योनिरुपपाददेशपुद्गलप्रचयोऽचित्त ॥  
रार्भजा मिश्रयोनय । तेषां हि मातुरुदरे । शुक्रशोणितमचित्त, तदात्मना चित्तवता मिश्रणा-  
न्मिश्रयोनि ॥ सम्मूर्च्छनजास्त्रिविकल्पयोनय । कौचित्तयोनय । अन्ये अचित्तयोनय । अपरे  
मिश्रयोनय ॥ सचित्तयोनय साधारणशरीरा । कुत । परस्परश्रयत्वान् ॥ इतरे अचित्तयोनयो-

न ० आधार-आधेय-येश्वरैः  
वदु भक्तः १ ते १ ॥ एते १ सचित्त-आदयः १ ॥ गानपः १ ॥ यतः ० सचिद-  
अपारा १ ॥ आधेयाः १ ॥ जन्म-प्रकाराः १ ॥ यतः ० सचिद-  
आदि-योनि अधिष्ठानः ॥ आत्मा १ ॥ सम्मूर्च्छनजादिना १ ॥  
जन्मना १ ॥ शरीर-आधार-इन्द्रिय-आदि योग्यान् १ ॥  
पुद्गल यः १ ॥ उपारुपे देव-नारकाः १ ॥ अचित्त-योनयाः १ ॥  
व्याप्त्युद्दि ० यानि-उपपाददेश-पुद्गल-प्रचयः १ ॥  
अचित्त १ ॥ गर्भजा १ ॥ मिश्रयोनयाः १ ॥ वेत्ता १ ॥ त्रिकपादः १ ॥ ॥  
वदु १ ॥ शुक्र-शोणितयुग्म ॥ आधेयता १ ॥ अदृ-चित्तवताः १ ॥  
आत्मना १ ॥ मिश्रणवदु ॥ मिश्रयोनिः १ ॥ सम्मूर्च्छनजा १ ॥  
त्रि-विधजन्ययोनय १ ॥ कौचित्त-सचित्त-योनयाः १ ॥ अन्ये १ ॥  
अचित्त योनय १ ॥ अपरे १ ॥ मिश्र-योनय १ ॥  
सचित्त योनय १ ॥ साधारणशरीराः १ ॥  
वृत् ० परस्पर  
आधयत्ववदु १ ॥ इतरे १ ॥ अचित्त-  
यानया १ ॥

=नहीं, (यानि और जन्मों से)। आधार और आधेय के भेद से  
=उत्त(योनि और जन्म)में भेद है । वे इतनी(=एते)सचित्त आदि (यानिसे)  
=आधार या आत्मय हैं । जन्मके भेद से वे आधेय या आधितर हैं। क्योंकि सचित्त  
=आदिक यानियोंके आधारभित्त हैं चैतन्य (आत्मा) सम्मूर्च्छन आदिक  
=जन्मकार शरीर आधार इन्द्रिय आदिक योग्य  
=पुद्गलोंका प्रणय करना है । देव और नारकी अचित्त योनियाल हैं  
=क्योंकि तिन(देव-नारकीयों)शरीरानि उपगनेकास्यान(=उपपाददेश)पुद्गलकास्तेप  
=आधेयतागर्भितत्वसम्बन्धुगीभित्त(आधेयताचित्त)योनियाल है। क्योंकि तिनहीमावाके  
=वदुतें शरीर और कोहू(रज)अचित्त है । उस(माता)का चित्तान्  
=आत्मनाशुक्र-शोणितप्रचयके) पिशापसे विभयोनि है । सम्मूर्च्छनजन्मकावे  
=दीन प्रकारके यानियाल हैं । कितने सचित्त यानियाल हैं । दूसरे  
=अचित्तयोनिय हैं । (नहीं)मिश्रयोनियालें भयात् सचित्ताचित्त योनियालें हैं  
=सचित्तयोनिस साधारणशरीरियालें हैंभयात् नितकेपरशरीरयत्तुत्तनीवोतेरे  
=वयोह(साधारणशरीरियालें सचित्तयोनिय हैं)भयोकि आपसमें(एकत्रीवदुसके)  
=आधयसे वा आधारसे है ।(साधारण शरीरसे) विभ(सम्मूर्च्छनजन्म)अचित्त  
=योनियालें हैं भयात् उनके उपगनका स्यात् भवेत्तन् पुद्गलके स्वरूपरी है ॥



मिथयोनयश्च ॥ शीतोष्णयोनयो देवनारका तेषा हि उपपादस्थानानि कानिचिच्छीतानि, कानि  
चिदुष्णानीति ॥ उष्णयोनयस्तेजस्काधिका ॥ इतरं त्रिविकल्पयोनयः केचिच्छीतयोनय केचि  
दुष्णयोनय अपरे मिथयोनय इति ॥ देवनारकैकेन्द्रिया सवृतयोनय ॥ विकलेन्द्रिया विवृतयो-  
नय ॥ गर्भजा मिथयोनय ॥ तद्वेदाश्चतुरशीतिशतसहस्रसंख्या आगमतो वेदितव्या ॥ उक्त च ।

मिथयोनयः १ प० शीत-उष्ण-योनयः २ देवनारकाः ३ = और (= च) सषिष्ठाषिच यानिज हैं । देव और नारकी शीवोष्ण योनिय हैं

तपायः ४ शि० उपपादस्थानानि ॥ कानि चिदुष्णयोनयानि ॥ १ गन्धानि चिदुष्णानि ॥ इति नैका कायिकाः २ = शीत हैं कितने उष्ण हैं । तैजसस्त्वयके जीव

उष्ण-योनयः ३ प० तैजसः ४ त्रिविकल्प-योनयः ५ केचिदुष्ण

गीतयोनयः ६ पृथिव्यु-उष्णयोनयः ७ भारेण

विधयोनयः ८ इति उष्ण-नारकप्रकृष्टियाः ९

महायोनयः १० त्रिकल्प-नारकप्रकृष्टियाः ११

वित्तयोनयः १२ गर्भजा ३ मिथयोनयः १३

उक्तं १ = चतुरशीतिशतसहस्रसंख्या ॥

आगमन-० चिदुष्णानि ॥ उक्तम् ॥ ॥ ६०

लिखितस्याङ्क (= नित्य-द्वार-पाठ)

मन्त्रः १० नारकः ११ च तदुष्णः १२ च

रिचिद्विषयः १३ पृथिव्युष्ण-उष्णयोनयः १४

सु-लिखित-निरिय यत्राः १५ सु-निरिय त्रियं क तमः १६

पातमपुत्र सद्वारस्सा (चतुर्दश) अनुप्य शतसंख्या १७

= योकि (= हि) तिन (देव-नारकिन) के उपमनेके ठिकाने कितने

= उष्णयोनिकाळे हैं । मिथ प्राणी तीन प्रकारके योनिवाले हैं । ऊँई

= शीत योनिय हैं । ऊँई उष्ण यानिज हैं । अन्य

= मिथ (शीवोष्ण) योनिवाले हैं । देव और नारकी और एकेन्द्रिय जीव

= सवृतयोनिकाळे हैं । विकलन्द्रिय जीव अर्थात् द्विन्द्रियसे चौदन्द्रियतक

= विवृत वा निवृत यानिज हैं । गर्भज मिथयोनिय हैं अर्थात् गर्भसे उत्पन्न हुये

= तिन (नवयोनियो) ऋ भेद चौरासीसो सरल गणना अर्थात् चौरासीवाल गिनती

= शास्त्रसे मानना चाहिये । कदाभी है

= निष्पत्तिगोद, इतरनिगाद, यादृ (शुक्तिबीजायिक, अपृष्ठायिक, अमिष्ठायिक, वायुकायिक) की

= सात सात और (= च) बनस्पतिकायिका, वृक्ष और (= च)

= विकलन्द्रिय जीविये छह ही अर्थात् शीन्द्रियमें दो, शीन्द्रियमें दो, चतुरिन्द्रियमें दो

= सु-नारक और त्रिविकल्पी चार चार ( और )

= चौरासीवाले अनुप्य शतसंख्या (= चतुर्दश + १० + ६ + १२ + १४ सब चौरासीवाल हैं )

एवमेतस्मिन्मन्त्रयोनिभेदसङ्घटे त्रिविधजन्मनि सर्वप्राणभूतामनियमेन प्रसक्ते तदवधारणार्थमाह  
**॥ जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः ॥ ३३ ॥**

मातृर्षः-नित्यनिगाद, इतरनिगाद पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, और वायुकायिक, इन ब्रह्मी सात सात खाल यानिये ७२संख्याकहुरी, नित्यविक्रियायिकी दशखाल यानिये, दोषत्रियवाले जीवोंकी दोखाव, रीतन्द्रियवाले जीवोंकी दोखाव, चाररन्द्रियवाले जीवोंकी दोखाव ऐसे इनविक्रियवाले जीवोंकी दोखाव यानिये दुई। दबोही चारखाल नारिकियायिकी पाखाव पंचेन्द्रिय विक्रियोंकी चारखाल ऐसे ये चारखालयोनिये दुई यन्त्रयोंकी चारखाल योनिये मिलकर एतर्ष ( ४२ + १० + १ + १२ + १४ ) चौरासीखाल दुई

एतन्मन्त्रयन्त्र १ नवयोनिये भेदसङ्घटे १।  
 त्रिविधजन्मनि १॥ सर्वप्राणभूतामनियम् १॥  
 मतकः १॥ मन्त्र-अवधारण मन्त्र १॥ आह १।  
 = ऐसे तिस नवभेदरूपयानि सङ्घटिं

**सूत्रम् जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः**  
 मातृर्षः-जरायुम-अण्डज  
 पोतानाम् १। गर्भः १। अन्तर्ग १।

=जातानेपर वस(नियम)के निश्चय करणके लिये अर्थात् निश्चये कालेक लिये करते हैं कि  
 =जरायुजाण्डजपोतानां गर्भ ( जन्म ) ॥ ३३ ॥  
 =जरायुमें उत्पन्नमानवाले(जीव)निष्ठा, और भ्रंशमें उपजनेवाले (जीव) निष्ठा, और

व्याप्त एक प्रकारकी शैलियोंसे खिचये हुए पैदा होते हैं उनको जरायुम करते हैं जैसे मनुष्य  
 अर्थात् एक प्रकारकी शैलियोंसे खिचये हुए पैदा होते हैं उनको जरायुम करते हैं और जो  
 अर्थात् एक प्रकारकी शैलियोंसे खिचये हुए पैदा होते हैं उनको जरायुम करते हैं जैसे मनुष्य

माताके वदरसे निकलतेही चलने फिले लागता है वह पावन है जैसे शायी, विष्टी, तिस, बंदर इत्यादि  
 (क) माताके वदरसे निकलतेही चलने फिले लागता है वह पावन है जैसे शायी, विष्टी, तिस, बंदर इत्यादि  
 शायी एक प्रकारकी शैलियोंसे खिचये हुए पैदा होते हैं उनको जरायुम करते हैं जैसे मनुष्य  
 अर्थात् एक प्रकारकी शैलियोंसे खिचये हुए पैदा होते हैं उनको जरायुम करते हैं जैसे मनुष्य

(१) माताके वदरसे निकलते ही चलने फिले लागता है वह पावन है जैसे शायी, विष्टी, तिस, बंदर इत्यादि  
 शायी एक प्रकारकी शैलियोंसे खिचये हुए पैदा होते हैं उनको जरायुम करते हैं जैसे मनुष्य  
 अर्थात् एक प्रकारकी शैलियोंसे खिचये हुए पैदा होते हैं उनको जरायुम करते हैं जैसे मनुष्य



मिथ्योन्नयश्च ॥ शीतोष्णयोन्नयो देवनारका तथा हि उपपादस्थानानि कानिचिच्छीतानि, कानि  
चिदुष्णानि ॥ उष्णयोन्नयस्तेजस्कायिका ॥ इतरे त्रिविकल्पयोन्नयः केचिच्छीतयोन्नय केचि  
दुष्णयोन्नयः अपरे मिथ्योन्नय इति ॥ देवनारकैकेन्द्रिया सवृतयोन्नय ॥ विकलेन्द्रिया विवृतयो-  
न्नय ॥ गर्भजा मिथ्योन्नय ॥ तद्रेदाश्चतुरशीतिशतसहस्रसंख्या आगमतो वेदितव्या ॥ उक्त च ।  
शिबिदत्रादु सत्तय तरुदस वियलिदिएसु ऋषेवासु रणिरयतिरिय चउरो चोद्वस मणुए सदसहस्सा

मिथ्यानयाः १० शीत-उष्ण-योन्नयः ११ देवनारकाः १२ और (=घ) सविषाषिष यानिज १३ । देव और नारकी शीतोष्ण योन्नय १४

नगाम् १५ १६ उपायादस्थानानि १७ कानिचित् १८

शीतानि १९ कानिचित् उष्णानि २० । इति तैः कायिका २१ ॥ शीत २२ ॥ कितने उष्ण २३ । तैजसकायके ऋष

उष्ण-योन्नयः २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५०

शीत योन्नय ५१ । केई उष्ण यानिज ५२ । अन्य

शीतयानयः ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८०

मिथ्यानयः ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५ १०६ १०७ १०८ १०९ ११०

मरुतयानयः १११ ११२ ११३ ११४ ११५ ११६ ११७ ११८ ११९ १२० १२१ १२२ १२३ १२४ १२५ १२६ १२७ १२८ १२९ १३० १३१ १३२ १३३ १३४ १३५ १३६ १३७ १३८ १३९ १४०

विवृतयनयः १४१ १४२ १४३ १४४ १४५ १४६ १४७ १४८ १४९ १५० १५१ १५२ १५३ १५४ १५५ १५६ १५७ १५८ १५९ १६० १६१ १६२ १६३ १६४ १६५ १६६ १६७ १६८ १६९ १७०

नन्देदाः १७१ १७२ १७३ १७४ १७५ १७६ १७७ १७८ १७९ १८० १८१ १८२ १८३ १८४ १८५ १८६ १८७ १८८ १८९ १९० १९१ १९२ १९३ १९४ १९५ १९६ १९७ १९८ १९९ २००

आगपत २०१ २०२ २०३ २०४ २०५ २०६ २०७ २०८ २०९ २१० २११ २१२ २१३ २१४ २१५ २१६ २१७ २१८ २१९ २२० २२१ २२२ २२३ २२४ २२५ २२६ २२७ २२८ २२९ २३०

लिदिदपाद २३१ २३२ २३३ २३४ २३५ २३६ २३७ २३८ २३९ २४० २४१ २४२ २४३ २४४ २४५ २४६ २४७ २४८ २४९ २५० २५१ २५२ २५३ २५४ २५५ २५६ २५७ २५८ २५९ २६०

मणु २६१ २६२ २६३ २६४ २६५ २६६ २६७ २६८ २६९ २७० २७१ २७२ २७३ २७४ २७५ २७६ २७७ २७८ २७९ २८० २८१ २८२ २८३ २८४ २८५ २८६ २८७ २८८ २८९ २९०

रियनिदिएसु २९१ २९२ २९३ २९४ २९५ २९६ २९७ २९८ २९९ ३०० ३०१ ३०२ ३०३ ३०४ ३०५ ३०६ ३०७ ३०८ ३०९ ३१० ३११ ३१२ ३१३ ३१४ ३१५ ३१६ ३१७ ३१८ ३१९ ३२०

पुर लिरियनिरिय चउरो ३३१ ३३२ ३३३ ३३४ ३३५ ३३६ ३३७ ३३८ ३३९ ३४० ३४१ ३४२ ३४३ ३४४ ३४५ ३४६ ३४७ ३४८ ३४९ ३५० ३५१ ३५२ ३५३ ३५४ ३५५ ३५६ ३५७ ३५८ ३५९ ३६०

चानमणुए सदमरस्ता ३६१ ३६२ ३६३ ३६४ ३६५ ३६६ ३६७ ३६८ ३६९ ३७० ३७१ ३७२ ३७३ ३७४ ३७५ ३७६ ३७७ ३७८ ३७९ ३८० ३८१ ३८२ ३८३ ३८४ ३८५ ३८६ ३८७ ३८८ ३८९ ३९०

वामुदेसु ३९१ ३९२ ३९३ ३९४ ३९५ ३९६ ३९७ ३९८ ३९९ ४०० ४०१ ४०२ ४०३ ४०४ ४०५ ४०६ ४०७ ४०८ ४०९ ४१० ४११ ४१२ ४१३ ४१४ ४१५ ४१६ ४१७ ४१८ ४१९ ४२०

पनुत्ये शतमस्वालि ४३१ ४३२ ४३३ ४३४ ४३५ ४३६ ४३७ ४३८ ४३९ ४४० ४४१ ४४२ ४४३ ४४४ ४४५ ४४६ ४४७ ४४८ ४४९ ४५० ४५१ ४५२ ४५३ ४५४ ४५५ ४५६ ४५७ ४५८ ४५९ ४६०

= नित्यनिगाद, इतरनिगाद, ग्राह (शुक्लीकायिक, अपृष्ठायिक, अनिगायिक, वायुकायिक) की

= सात सात और (=य=व) बनस्पतिकायिककी, दश और (=च)

= विकलन्द्रिय जीवित्तैपें द्वाद ही अर्थात् द्वीन्द्रियमें दो, शीन्द्रियमें दो, शतुन्द्रियमें दो

= मुर-नारक और तिर्यकोकी चार चार ( और )

= चारदरकाळ मनुष्यभित्तै हैं (अर्थात् २१ + १० + ९ + १२ + १४ सप्त चौरासीकाळ हैं)



यज्जालव्याधिपरिवरण विततमासशोणितं तज्जरायु । यन्नखत्वक्सदृशशुभापातकाठिन्य  
शुक्रशोणितपरिवरण परिमण्डलतदण्डम् । किञ्चित्परिवरणमन्तरेण परिपूर्णवयवो योनिनिर्ग  
तमान एव परिस्पन्ददि सामर्थ्योपपेत पोत ॥ जरायु जाता जरायुजा । अण्डे जाता अण्डजा ।  
जरायुजाथ अण्डजाथ पोताथ जरायुजाण्डजपोता गर्भयोनय ॥ यद्यमीषा जरायुजाण्डजपोताना  
गर्भोऽवधिष्यते, अथोपपाट केपा भवतीत्यत आह—

इत्यनुवादः—यद् १ ॥ जातवत्स्थानि-परिवरण १ ॥ = जो आखक सदृश बीषका आच्छादन (=परिवरण)  
विषम-पौंस-स्थानिकम् १ ॥ तद् १ ॥ नख १ ॥ जो पौंस और शशिर (=स्थानिक) स्रि व्याप्तो सो जरायु है । जो नौ (=नख) के  
रक्त-सदृशम् १ ॥ उपास-कठिन्यम् १ ॥ =त्वचा वा शिथिलकेसमान कठोरता वा कड़ागन युक्ति (=उपास) हो  
गुम्-शान्ति-परिवरणम् १ ॥ परिस्पन्दत्वम् १ ॥ =निस (सचा) में बीर्य लोह वेष्टित हो गोलाकारसा हो  
नद् १ ॥ अण्डम् १ ॥ =सो अण्ड है अर्थात् नौ नखकी छात्रके समान कठिनरो, बीर्य और रजसे  
आच्छादितहो और गोशुक्रारो उसको अण्डकते है  
मिथित्-परिवरणम् १ ॥ अन्तरेण परिपूर्ण-वयवम् १ ॥ =कोई वस्तु (=किञ्चित्) आवरण विना (=अन्तरेण) संपूर्ण अवयव सञ्चित  
यानि-निर्गतवामः १ ॥ एव परिस्पन्द आदि-सामर्थ्य  
उपेत १ ॥ पात १ ॥ =सहितहा सा पोत है अर्थात् निसक छपर जरा वा अण्ड कुक्षमी आवरण नही  
जरायुर्जाता १ ॥ जरायुजा १ ॥ अण्डे १ ॥ जाताः अण्डजा १ ॥ =जरायुर्मे उत्पन्नहुये जरायुज है । अण्डेविषे उपने सेो अण्डन है  
जरायुजा १ ॥ व १ ॥ अण्डजाः १ ॥ च १ ॥ पाता १ ॥ व १ ॥ =और जरायुसे उपजनेवालो और अण्डेसे उत्पन्न होनेवालो और पोत  
जरायुज अण्डज-पाता १ ॥ गर्भ-यान्यम् १ ॥ =पयासस्य) जरायुज-अण्डज-पात है (और ये सब) गर्भयोनियालो है  
यदि १ ॥ अयोपाम् १ ॥ जरायुज-अण्डज-पोतानाम् १ ॥ =जो इन (=अयोपाम्) जरायुज-अण्डज-पोतोंका (अपमनेका स्थान)  
गम १ ॥ अवधिष्यते १ ॥ अण्ड-उपपाट १ ॥ केपाम् १ ॥ =गर्भ निष्पत्तिपागया है तो अण्ड उपपाट (अन्तःक्रिय(गीर्भो) के  
परति १ ॥ इति १ ॥ अमः १ ॥ आह १ ॥ =ज्योतारै इति १ ॥ अमः १ ॥ आह १ ॥ =इति १ ॥

॥ देवनारकाणामुपपादः ॥ ३४ ॥

देवान। नारकाणा च उपपादो जन्म वेदितव्यम् ॥ अथान्येषा किं जन्मेत्यत आह-

॥ शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥ ३५ ॥

गर्भजेभ्य औपपादिकेभ्यश्चान्ये शेषा। तेषा सम्मूर्ध्वजन्मेति॥ एते त्रयोऽपि योगो नियमार्था।

सूत्रम्— "देवनारकाणामुपपाद ( जन्म भवति ) ॥३४ ॥

स्वार्थ - नारकाणाम्। उपपाद - जन्म। भवति - इत्यनुवक्ति-शेषानाम्। नारकाणाम्। च उपपादोऽन्ये। वेदितव्यम्। अय-अन्येषाम्। किम्-जन्म। इति-अत-आर-इ

सूत्रम्— "शेषाणा सम्मूर्च्छनम्

स्वार्थ -शेषाणाम्। सम्मूर्च्छनम्। जन्म। भवति-इत्यनुवक्ति-गर्भजेभ्यः। औपपादिकेभ्यः। कश्चन्ये। शेषाः। वेपाम्। सम्मूर्च्छनम्। जन्म। इति-पते-प्रप-अपि-यागाः। निवर्णार्थाः।

(१) इत्यते यदा इति चरु का श्रुद पाठ सर्वत्र एक है। 'नारक्येयानामुपपादः' ऐसा पाठ समाख्ये का है दोनों प्राजाप्यों में अर्थ एक सा है। (२) दोनों आशायोंमें इति चरुका पाठ और अय एकसादे। 'नारक्येयुः' की मतिवियों में सम्मूर्च्छन संमूर्च्छन सम्मूक्य सवूर्क्य ये चार पाठ प्राप्त हैं चाटो डीक है ( अन्वया १ ४४ ५४०, ५४१, ७०१ ) सूत्रके अंतमें अर्था-सम्मूर्च्छनम्' इति पाठ पाणिनि और शाब्दार्थरत्नमाला में श्रुद शैल्यस्यैकम् आदिये है।

यज्जालवत्प्राथिपरिवरण विततमासशोणित तज्जरायु । यन्नखत्वक्सदृशशुभापातकाठिन्यं  
शुक्रशोणितपरिवरण परिसम्बलतदण्डम् । किञ्चित्परिवरणमन्तरेण परिपूर्णवयवो योनिनिर्ग  
तमान एव परिस्पन्दादि सामर्थ्योपपेत पोत ॥ जरायौ जाता नरायुजा । अण्डे जाता अप्ण्डजा ।  
जरायुजाश्च अण्डजाश्च पोताश्च जरायुजाण्डजापोता गर्भयोर्नय ॥ यद्यमीषा जरायुजाण्डजापोतानां  
गर्भोऽवधिच्यते, अथोपपाद केषा भवतीत्यत आह—

इत्यनुवाद—यद् १॥ आलवत्कामाण्य-परिवरण १॥ = जो जालक सदृश बीषका आच्छादित (=परिवरण)  
वितत-मास-क्याणितम् १॥ तद्, जरायुः १॥ यद् १॥ नल = जो मांस और रुधिर (=श्याणित) हरि व्याप्त हो सो जरायु है । जो नौ (=नल) के  
सक-सदृशम् १॥ उपाच-काठिन्यम् १॥  
शुक्र-शोणित-परिवरणम् १॥ परिस्पन्दम् १॥  
तद् १॥ अपण्डम् १॥  
किञ्चित्-परिवरणम् १॥ अन्तरेण ० परिणम् १॥ अण्डम् १॥  
यानि-निर्गतमात्र १॥ एव ० परिस्पन्द आदि-सामर्थ्य  
उपेत १॥ पात १॥  
जरायुजाता १॥ जरायुजाः १॥ अण्डे १॥ जाताः १॥ अपण्डमाः १॥ = जरायु में उत्पन्न हुए जरायुज हैं । अण्डे से तो अण्डज  
जरायुजाः १॥ एव ० अपण्डमाः १॥ एव ० पाता १॥ १०  
जरायुज अण्डज-पोता १॥ गर्भ-यानयः १॥  
पदि ० अमीयाम् १॥ जरायुज-अण्डज-पोतानाम् १॥  
गर्भ १॥ अपण्डियते १॥ अपण्डपादः १॥ केपम् १॥  
परिनि १॥ इति ० अण्ड-अण्ड १॥

= जो जालक सदृश बीषका आच्छादित (=परिवरण)

= जो मांस और रुधिर (=श्याणित) हरि व्याप्त हो सो जरायु है । जो नौ (=नल) के

= त्वचा वा छिन्नकेसेमान कठोरता वा कृदायन शुद्धीत (=उपाच) हो

= भिन्न (त्वचा) में वीर्य छोड़ देष्टित हो गात्राकारसा हो

= सो अण्ड है अर्थात् जो नलकी छाछके समान कठिन हो, वीर्य और रखते

आच्छादित हो और गोत्राकार हो उसको अण्डकहते हैं

= कोई बस्तु (=किञ्चित्) आनरण विना (=अन्तरेण) संपूर्ण अण्डव्यव सञ्चित

= यानिसे निकलने पर ही इतन बहान आदि सामर्थ्य

= सरिता सा पोत है अर्थात् जिसके रूप अण्डा वा अण्डकृष्मी आनरण नहीं

होता है याताके बदरसे निकलने पर ही इतने बहाने से पोत कहते हैं

= जरायु में उत्पन्न हुए जरायुज हैं । अण्डे से तो अण्डज

= और जरायुसे उपजनेवाले और अण्डेसे उत्पन्न होनेवाले और पोत

= (यथासंख्य) जरायुज-अण्डज-पात हैं (और य सब) गर्भयोनिवाले हैं

उन्को इन (=अमीयाम्) जरायुज-अण्डज-पोतोंका (अपण्डेका स्थान)

= गर्भ निष्पत्तिपाद है तो सब जरायुज (अण्ड) किन् (बीजों) के

= जोतादे रसकिये (आचार्ये बगले रूपमें) कहते हैं कि

॥ औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकर्मणानिशरीराणि ॥ ३६ ॥  
 विशिष्टनामकर्मोदयापादितवृत्तीनि शीर्यन्त इति शरीराणि ॥ औदारिकादिप्रकृतिविशेषद्वयप्राप्त-  
 वृत्तीनि औदारिकादीनि ॥ उदारं स्थूलम् । उदारं भवभौदारम् । औदारं प्रयोजनमस्येति  
 औदारिकम् ॥ अष्टगुणैश्वर्ययोगादेकानेकाणु-

सूत्रम्— " औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकर्मणानिशरीराणि ॥ ३६ ॥ [योगवाचो;

गुणार्थः औदारिक-वैक्रियिक-

आहारक

नैजस-कार्यखानिः॥

शरीराणि ॥

प्रत्ययं-विशिष्ट-नामकर्म उदय भाषादित-वृत्तीनिः॥ औदारिक-  
 शीर्यन्त इति शरीराणिः॥ औदारिक-

मादि-कृति-

त्रियेष-उदय-नाम-वृत्तीनिः॥

औदारिक मादीनिः॥ उदारम् ॥ स्थूलम् ॥

उदारम् ॥ अयम् ॥ औदारिकम् ॥ औदारिकम् ॥

अष्टगुण-श्वर्य-योगादौः एक-अनक-अणु

अत्रियेतेसेनेपागस्यवशरीर, मितस्यैपकमनेकस्थूलसम्पत्तिकाभारीत्स्यद्विकारदानेकी-  
 ॥ औत्स्यपदार्थकनिर्णयेकेक्षिये वा प्रदिक्षिणपक्षा सन्नाह भाननेकेक्षिये वा अस्यपके  
 ररकृत्यक क्षिये मयत्तरी गुल्यस्थानवर्ती मुनिवर्गेके मगदरो [वा उन कर्मोका सम्पत्त

॥ वा वेमका कारणो वा मितस्यै वेम रता हो, शानापरणादि आठकर्मोका वा कार्यो हो  
 ॥ संसारी औवोके ये औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, नैजस, कार्यखि, क्रमसे पांच शरीर हैं ॥

॥ औदारिक नामा नामकर्मके (वैशिष्ट्यनामकर्म) उदयसमो मास इत्ये (वृत्तीनि)

॥ सो गच्छते है-सुदृढ है वा ऊड़ते है (शीर्यन्ते) ऐसे शरीर हैं जो औदारिक

॥ वैक्रियिक, आहारक, नैजस, कार्यख, (शरीरनामा नामकर्मकी) मकृषिवर्गेके

॥ विमोपस्य उदयकरि-उदय मासभवर्तते है (वृत्तीनि) वे( क्रमावृत्तसार )

॥ औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, नैजस, कार्यख हैं (औदारिक) उदार है सो स्थूल है

॥ स्थूलविषे हो सो औदार है । स्थूलरोना व स्थूलपना है

॥ यथाअनमित्तका देसा औदारिक है

॥ अष्टगुण वा विभूतियोके ईस्वरपनेके संयोगसे वा सम्बन्धसे एक अनेक खोवा

(१) इमारयेवो उदा गुण केग है वही सर्वत्र इस एक का एक ही पाठ है । उदाग्य० में 'वैक्रियिक' उदयके स्थान में 'वैक्रिय' उदय है । दोनों आत्मार्थोंमें  
 उग पाठ और अय एक ही । (२) आठ प्रकारकी सिद्धियाँ और विभूतियोंके नाम अमरकोश स्वर्गवर्ग, श्लोक० में देस है कि 'अधिका महिमा चैव गरिमा  
 महिमा तथा । महिमाऽसास्यमीशिव । पथीस्य चारुसिद्धयः । ( ५ ) कृषिमय ( ५० ) घोटापन कर्णान् क्रिसस जीव घोटावा रूपचर सय स्वात्मो

पानिमासी जगरुपासाय वकील कृत पदच्छद और विपस्ययं सशिव सवार्यं सिद्धिका शय्या हिन्दी अतुवाह अत्याय २ वृथ ३५  
उभयतो नियमश्चद्रष्टव्य ॥ जरायुजाण्डजपोतानामेव गर्भ । गर्भ एव च जरायुजाण्डजपोतानाम् ॥  
देवनारकाणामेवोपपाद । उपपाद एव देवनारकाणाम् ॥ शेषाणामेव सम्मूर्च्छनम् । सम्मूर्च्छनमेव  
शेषाणामिति ॥ तथा पुन संसारिणा त्रिविधजन्मनामाहितवहुविकल्पनवयोनिभेदानां शुभा-  
शुभनामन्मन्त्रिपाकनिर्वर्तितानि वन्धफलांनुभवनाधिष्ठानानि शरीराणिकानीत्यत आह—

सिद्धि  
सुत्र ३५

- च ० उपपात ० नियमः ३ । श्लोकः ३ ।
- जरायुज-अद्वज-पातनाय ३ । एव ० गर्भ ३ ।
- प ० गम ३ । एव ० जरायुज-अद्वज-पातनाय ३ ।
- इव-नारकाणाम् ३ । एव ० उपपाद ३ ।
- उपाद ३ । एव ० देवनारकाणाम् ३ ।
- शेषाणाम् ३ । एव ० सम्मूर्च्छनम् ३ ।
- सम्मूर्च्छनम् ३ । एव ० शेषाणाम् ३ । इति ०
- इति निरिप जन्मनायुः ॥ शेषाणाम् ॥ आरिक्त-यु-विकृत- ॥
- नपयानिपदानाम् ॥ संसारिणाम् ॥ शुभ अशुभ
- नामन्मन्त्रिपाक निर्वर्तितानि ॥ कल्प-कल अनुभव
- अधिष्ठानानि ॥ शरीराणि ॥ इति ॥ इति ॥ आह
- = और (=ब) ( इव गर्भज, औपपादिक और सम्मूर्च्छनोंके ) दोनों और नियम षानो
- = (सो उपयुक्त नियम दोनों का एसे है कि ) जरायुज, अद्वज, पोतनिके ही गर्भ है
- = और (ब) गर्भ ही है (जन्म) जरायुज, अद्वज, पोतनिके यावार्थ दोनों वाप्योका यहै कि
- जरायुज, अद्वज और पोतनिके ही गर्भ जन्म है दूसरे प्रकारके जीवोंके गर्भ जन्म
- नहीं है वा गर्भ जन्म ही न कि और कोई कल्प है जिनके ऐसे जरायुज अद्वज पोतन है ।
- = देव और नारदियोंके ही उपपाद (जन्म) है ( न कि किसी और जीवोंके )
- = उपपाद ही है ( जन्म न कि कोई और जन्म ) जिनके ऐसे देव नारदी है
- = बचे हुये (जीव) निके ही सम्मूर्च्छन (जन्म) है ( न कि किसी और जीवोंके )
- = सम्मूर्च्छन जन्म ( न कि कोई अन्य जन्म ) है बचे हुये जीवोंके ॥
- = और तीन प्रकारके हैं जन्म जिनके और प्राण किये हैं (=आरित) बहुत विकल्प रूप
- = न यौनिके भेद जिनन ऐसे संसारी जे हैं जिनके श्रम, अश्रम
- = नाम कर्म करिखे और वषको जा फल है विसके अनुभव करने के
- = स्थान वा आधार शरीर (ते) कितन है । इस लिये कहेते हैं कि अर्थात् गर्भ आदि तीन
- प्रकारक जन्म और अनेक भेदोंसे युक्त नों प्रकारकी यौनियोंके प्रकारक संसारीजीवोंके श्रम-  
अश्रम नाम कर्मों से स्थित और रूप कल्पके फलके अनुभव के स्थान शरीर कितन है ।

॥ औदारिकत्रैक्रियिकाहारकतैजसकर्मणानिशरीराणि ॥ ३६ ॥

त्रिंशत्तनामकर्मोदयापादितवृत्तीनि शीर्यन्त इति शरीराणि ॥ औदारिकादिप्रकृतिविशेषद्वयप्राप्त-  
वृत्तीनि औदारिकादीनि ॥ उदारं स्थूलम् । उदारे भवमौदारम् । औदारं प्रयोजनमस्येति  
औदारिकम् ॥ अष्टगुणेश्वर्ययोगादेकानेकाणु-

सूत्रम्— 'औदारिकत्रैक्रियिकाहारकतैजसकर्मणानिशरीराणि ॥ ३६ ॥ [योग्यसारे]

मूलार्थः औदारिक त्रैक्रियिक-

आहारक

तैजस-ज्ञानाणाभिः॥

शरीराणि ३॥

मूलार्थं त्रिंशत् नामकं उदय आपादित-वृत्तीनिः॥ औदारिक-

शीर्यन्त १ इति ० शरीराणिः॥ औदारिक-

आदि-महति-

विशेष-उदय-भाम-वृत्तीनिः॥

औदारिक आदीनिः॥ उदारम् ३॥ स्थूलम् ३॥

उदारम् ॥ अस्पृः॥ औदारम् ३॥ औदारम् ३॥

मयोजनम् ३॥ अस्य ३॥ इति ० औदारिकम् ३॥

अष्टगुण-परवर्ग-योगादौ एक-अनक-अणु-

= त्रिंशत्संख्येयस्य शरीर, त्रिसर्वैकभवेऽस्त्यस्तस्मात्प्रकाराणीत्यादिबिभक्तारणेनेही

= नामसम्पदार्थकस्मिर्ण्यकेशिष्ये वा ऋद्विस्मिपका सद्भावा माननेकोशिये वा अस्यपपके

दूरकलक शिष्ये मपच ही गुणस्थानवर्ती मुनियौके मगवरो [वा उन कर्मोंका सम्बन्धो

= मा तजका कारणः वा त्रिसर्वे वेम रक्ता रो, ज्ञानावरणादि आवरणोंका वा कार्य ही

= संसारी जीवोंके ये औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्यणि, प्रपत्ते पाच)शरीर ही।

= सा गलते है-सकत है वा भक्तव है (शीर्यन्ते) ऐसे शरीर है वा औदारिक

= वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्यण, (शरीरनामा नामकर्म्यही) महत्त्वियौक

= विशेषरूप उदयकरि (= उदय प्राप्त)प्रवर्तते है (= वृत्तीनि) ये (अप्यानुसार)

= औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्यण है (= वादीनि) उदार है सो स्थूल है

= अस्पृशिये हो सो औदार है । स्थूलाहाना न स्थूलपना है

= मयोजनमितिका ऐसा औदारिक है

= अष्टगुण-परवर्ग-योगादौ एक-अनक-अणु- = ' अष्टगुण वा त्रिंशत्तियौके संयोगस वा सम्बन्धसे एक अनेक छोटा

(1) इत्यारथो जहाँ शुद्ध ज्ञान है वहाँ सर्वत्र एक ही पाठ है । उदात्त ० में 'वैक्रियिक' शब्दके ज्ञान में 'वैक्रिय' शब्द है । बोली भाषायामें  
यत्र पाठ औदारिक एक ही (2) आठ प्रकारकी त्रिंशत्यौ औदारिकोंके नाम अकारकोग स्वर्गवर्ग-स्वोक्त ० में येस है कि 'वैक्रियना मदिमा चैव गरिमा  
नदिमा तथा । मतिव्याप्याम्पनीशित्व । मशीर्य चारुसिद्धका ( य ) वैक्रियन् ( पु० ) जोटापम अर्थात् त्रिसते मीय जोटासा रूपपर सब जानीमें





विविध  
ध्याय  
६६

पदानिवासी अणुरासहाय प्रतीककृत पदच्छेदं और विपरत्पर्यं सतिव सर्वसिद्धिका शब्दशः शिन्दीमनुवाद मध्याय २ सुत्र ३६  
रूढिवशाद्धिशिष्टविषये वृत्तिरवसेया ॥ यथौदारिकस्येन्द्रियैरुपलब्धस्तथेतरेषां कस्मान्न भव-  
तीत्यत आह—

परशब्दस्यानेकार्थवृत्तिवेदपि विवक्षातो व्यवस्थार्थगति ॥  
॥ परम्परं सूक्ष्मम् ॥ ३७ ॥

=रुचिक वशसे विशेषणार्थम्<sup>(१)</sup> कार्यणशरीर ही को कार्यका कार्यकल्प )  
=श्रण है (=उपलब्ध) तैसभन्य ( वैकल्पिक आहारक-तैमस-कार्यण शरीर ) का इन्द्रियोक्ति  
=स्योक्त वा क्रिसखिये(इन्द्रियोदात्ता श्रण)वाही होता है । इसखिये काले है कि  
=(तेषाम् औदारिकादिशरीराणाम् परंपरसूक्ष्मम् (भवन्ति)) ३७  
=(पूर्वकी अपेक्षासे)मूल्य वा असूक्ष्मं अर्थात् औदारिककी अपेक्षासे नैकियिकसूक्ष्म,  
वैकल्पिककी अपेक्षासे आहारकसूक्ष्म, आहारकसे तैमससूक्ष्म, तैमससे कार्यणसूक्ष्म, ॥  
=विषयज्ञाने(परंपर) व्यापार्या (अर्थात् विशेष्य अवस्था )के अर्थमें प्राप्तिरे वा प्रपत्ते रे ॥

विविध्यात्, विशिष्ट-विषये रे  
उपलब्धिः, अवसेया, यथा, औदारिकस्य, इन्द्रियैः, निवृत्ति कालार्थम् ॥  
कस्यात् रे न-प्रवृत्ति । इति-अव-आहार ।  
सूत्रम् परम्परसूक्ष्मम्<sup>(२)</sup>  
व्यायाः- 'तेषाम् ॥ परम् ॥ परम् ॥ परम् ॥  
सूक्ष्मम् ॥ परन्ति ।

परशब्दपर-परशब्दस्य, अनेक अर्थ-वृत्तियोगे ॥ अर्थ-परशब्दस्य ॥ अर्थ-परशब्दस्य ॥  
विषयज्ञाने, व्यवस्थार्थम् - अर्थ-परशब्दस्य ॥ अर्थ-परशब्दस्य ॥  
(१) अर्थ शरीरको कारण निमित्त ही तौ कामेकको क्ता निमित्त ही कामेकका कामेकता निमित्त ही वा अर्थके परिणाम निष्पादनार्थादिकनिमित्त ही  
परं परं सूक्ष्मं देसा पाठ ही कही कही परं परं सूक्ष्मं पाठ ही । काकाल इत्यादिप्रकारके अन्वयत यत्र पाठ ही सूक्ष्म ही परं परं निमित्त ही  
(२) पूर्वापेक्षया परत्वादिने नवमेषुशरीरैः(वेकोटिप्युत्पीकमप्याय, पुच्छ, ३) परंपरणीकमप्याय, पुच्छ, ३) परंपरणीकमप्याय, पुच्छ, ३) परंपरणीकमप्याय, पुच्छ, ३) परंपरणीकमप्याय, पुच्छ, ३)  
पूर्व अपेक्षया परत्वादिनि परत्वं व्यपस्यार्थः ॥  
इति परत्वं परत्वं परत्वं परत्वं ॥  
= पहिले (शरीर) की विवक्षापरि अगले (शरीर) का (धूम) होता (परत्वं)  
= देसे(धूम) पर शब्द विशेष्य अवस्थाके परं ही (व्यपस्यार्थके अर्थमें आया ही )

एतन्निपातो नाकारसहाय पक्षीव शुभ इदच्छेद और विपास्यसहित सर्वार्थसिद्धिपिका शब्दयाः द्विवी अनुवाद अर्थात् २ इत् ३१  
 महच्छरीरविधकरण विक्रिया, सा प्रयोजनमस्येति वैक्रियिकम् ॥ सूक्ष्मपदार्थनिज्ञानार्थमस-  
 यमपरिजिह्वीर्षया वा प्रमत्तसंयतेनाद्दियते निर्वत्यन्तेतदित्याहारकम् ॥ सर्वेषां कुर्मनिमित्तत्वेऽपि  
 वा भवं तत्रैजसम् ॥ कर्मणां कार्यं कर्मणम् ॥ सर्वेषां कुर्मनिमित्तत्वेऽपि तेजसि

मात्-शरीर-विक्रियकरणत्वेऽपि विक्रियात् ॥  
 साऽप्योमनसम् ॥ अस्मात् ॥ इतिकवैक्रियिकम् ॥  
 एतस्य पदार्थ-निर्वाचन-अर्थम् ॥ वा असंय-  
 वीक्रियीर्षया ॥ प्रमत्तसंयतम् ॥  
 आरिपत्त ॥ निर्वत्येते ॥  
 तद्वत् ॥ इति ॥ आहारकम् ॥  
 यद्वा शरीर अन्नक प्रकार(=विक्रिय) करना सो विक्रिया है  
 =विक्रिया (=सा) है मरणमनननिसका ऐसा वैक्रियिक है  
 =सूक्ष्म पदार्थोंके निर्णयके लिये अथवा प्रसयमने  
 =रुकरनेकी इच्छासे मरणविरत शब्दों गुणस्थानवर्ती युनिकरि  
 =सा ऐसा आहारक(शरीर)औसांशयार्थिके शब्दों गुणस्थानवर्ती ही युनिकरि किया जाता है  
 शयका शून्या निकलता है उसका आहारक शरीर बनते हैं ॥  
 =नो वेजका कारण अर्थात् देहको शक्ति रूप करनेको निमित्तअथवा वेजकेविषयेअथ  
 =सो नैजस है ॥ कर्मोना कार्यं सो कर्मण है  
 =सर्व (शरीरों) का कर्म कारण शून्यप भी अर्थात् कर्मके कारण सर्व शरीर हैं सोभी

जानके या गमन कराने (८) महिसम् (दुर्बिण) मरण बहुरूपन जिससे जीव बड़ी मृतकम स्थानोंमें जाके (९) गरियम् (दुर्बिण) शारीरय  
 (१) अण्डमन=रूपु-न हनकाय(श) प्राप्ति (क्री०)=जिससे मन मोगी वस्तु मिलती है (१) प्राकाम्य (न०) प्राकाम्य इत्यादिप्रायत रूप प्रेरणय ॥  
 (१) शिवा (न०) शिवा अथ मारि आठ प्रेरणों मेंसे सत्वर मालिक पत्ता (६) वशित्य (न०) = यद्यपि स्वामीपता अर्थात् नितेन्द्रिय  
 शयनस्य जित्तुं इन्द्रजाली ही शून्यरा सोके पचयप्रकोश गुण ६ में यह है अथिया लक्षिया प्राप्ति ॥ प्राकाम्य प्रदिया तथा ॥ इन्द्रियव नितेन्द्रिय  
 तथा कामा एवायिता ॥ शाने सोम्यके विक्रामसे प्रगत शला है कि इत सोम्ये नित्यम् के आत्मने कामपया (सा) यता" है ॥ इन्द्रियव नितेन्द्रिय  
 (१) पलायं य ओङ्कार आरभमाण्य प्रकल्प एवायते एर अन्वि प्रयोग और भावे मरणेन आने है ॥ इन्द्रियव नितेन्द्रिय  
 जिसके पहिले एवाय प्रकल्प नहीं था सो बडे आत्मने दि शोनाके और ॥ ६ = दि क्ताका + छि + य + नै = आदियतेनाकिर + यत् + य + नै = निर्वत्यन्तम्



पृथग्भूतानां शरीराणां सूक्ष्मगुणेन वीप्सानिर्देशं क्रियते परम्परमिति ॥ औदारिकं स्थूलं, तत् सूक्ष्मं वैक्रियिकं, तत् सूक्ष्मं तैजसं, तैजसात्कार्मणं सूक्ष्ममिति ॥ यद्वि परम्परं सूक्ष्मं, प्रदेशतोऽपि नूनं परम्परं हीनमितिविपरीतप्रतिपत्तिनिवृत्त्यर्थमाह—

## ॥ प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ॥ ३८ ॥

= { संज्ञा(नाम)अव्यय(स्वरूप) प्रयोजन आदिके भेदसे } प्रथमं शुभ  
 = (औदारिक आदिक) शरीरसे है विनकां सूक्ष्मगुण करि वीप्सात्मनिर्देश  
 = क्रियोगया है कि परे परं सूक्ष्म हैं अर्थात् नाम स्वरूप प्रयोजन आदिके  
 भेदसे भिन्न जो औदारिकआदिक शरीर हैं उनका यथा सूक्ष्मगुणके साथ  
 वीप्साका निर्देश है कि आगे आगे क शरीर सूक्ष्म सूक्ष्म है  
 = इसप्रकारकि औदारिक शरीर स्थूल है । विस (औदारिक)से सूक्ष्म वैक्रियिक है  
 = विस (वैक्रियिक शरीर)से सूक्ष्म आहारक (शरीर) है । विस(आहारक)से सूक्ष्म  
 = वैजसशरीर है । विस तैजस(शरीर) से सूक्ष्म कार्मण (शरीर) है  
 = ना भगले अगले(शरीरपूर्वपूर्वकी अपेक्षासे) सूक्ष्म है तो परमाणुओंकी अपेक्षासे  
 = यी निरसदेहकरि (= नून)उपर उपर शरीर हीनहोगे अर्थात् मत्स्येक अग्रिमअग्रिम  
 शरीरमें पहिले पहिले शरीर से छोड़े छोड़े प्रदेश होंगे  
 = ऐसी विरुद्ध शब्दिके दूर करनके लिये कहे हैं कि  
 " प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ॥ ३८ ॥  
 = अग्रिम अग्रिम (शरीर) प्रदेशोंकी अपेक्षासे, तैजसस पहिलेक (शरीर)  
 = अग्रसंख्यात गुणों है अर्थात् औदारिक शरीरमें भिन्नने परमाणु हैं उनसे संख्यातगुणों

(१) प्राचीन इतिहासकार तथा विद्वान् आचार्योंसे इस सूत्रका एक अर्थ निकलता है । परं परं वाक्य की अनुपस्थिति से ही तैजसस में आती है ।  
 (२) प्राक्तैजसात् परं अर्थ है कि परतः परतः अग्रिम शरीरोंके अर्थसे ही तैजसस अर्थ निकलता है । शरीरोंके अर्थसे ही तैजसस अर्थ निकलता है ।

पदानिगाप्ती जगत्प्रसाधाय बकीकृ ६ व पदच्छेद और विपत्त्यर्थपरिहारित सर्वाभ्यासिद्धिद्वयिका शब्दशः शिन्वी अनुवाद आध्याय २ सूत्र ३८  
प्रदिश्यन्त इति प्रदेशा परमाणव । सख्यामतीतोऽसख्येय । असख्येयो गुणोऽस्य  
तदिदमसख्येयगुणम् ॥ कुत प्रदेशात् । नावगाहत् । परम्परमित्यनुवृत्ते शकामर्णात्प्रसङ्गे  
तन्निःसुर्थमाह प्राक्तैजसादिति ।

परमाणु वैकिकिक शरीरमें है और वैकिकिक शरीरसे असख्यात गुण परमाणु आहारकशरीरमें है  
इत्यनुवादः यद्विरपन्नोऽइति ० अवेद्याः १ परमाणवः २ ॥ वा अभिवाण्यदोकर प्रसूण क्रियायें हैं ऐस श्वेश है वा परमाणु है ॥  
या भिनकरि प्रयाणकरिये है ऐस श्वेश है अर्थात् निनके द्वारा भिन्न भिन्न  
अंगक्रिये जाय सो श्वेश है ॥

संख्यामर्त्त ॥ अतीत १ असख्येयः २ असख्येयः ३ गुणः ४ ॥ ० जो गणनासे याहिराजो है असख्यात है अतल्यात है यथाकार ० वा ० गुणक  
अस्य ५ तद् ६ ॥ इदम् ॥ असख्येयगुणम् १ ॥ कुतः ० २ असख्येयगुणा है स्वीकर वा करारसे (असख्येयगुणा) है  
प्रदेशात् ० अयोगाहतः ०  
= परमाणुओं (की अवेक्षा)स (असख्येयगुणा) है अयोगाहता (की विख्या) से  
= असख्येयगुणा) नहीं है अर्थात् औदारिकसे वैकिकिक शरीर असख्यातगुण है  
और वैकिकिकस आहारक असख्यातगुण है सो औदारिकसे गणनामें वैकिकिककी  
परमाणुओंकी गणना असख्यातगुणा) है नकि उसकी अयोगाहता असख्यातगुणी अधिक है  
इसी प्रकार वैकिकिकसे आहारकके परमाणुओंकी गिनती या संख्या असख्यातगुणी है नकि  
आहारक शरीरकी अयोगाहता वैकिकिक शरीरसे असख्यातगुणी अधिक है

परम् १ ० परम् १ ॥ इति ० अनुवृत्ते १ ॥  
वा ० कार्ष्णिकार्थ १ ॥ मसहे है  
वद-निवृत्ति-अर्थम् १ ॥  
माक ० वैजसात् १ ॥ इति ० आह १

= (एवं तीव्रतां वृत्ते इत्यनुवृत्ते) "परं परं" ऐसी अनुवृत्ति (रु कारण) से  
= कामण (शरीर) परन्तु (अन्ना) (इस परं परं की अनुवृत्ति) सर्वपरान्तर  
= विस (मसंग) के निरपेके क्षिप वा निवारणके लिये (इत्यनुवृत्ते)  
= नैतस शरीरसे परिले वलिते (अ्याकू वैजसात्) ऐसा मान्य करा है

( १ गुण = क्रियेयको गुणिये जैसे यदि ११ को ६ से गुणाकला बोले ११ गुण है ॥ गुणक या गुणाकार जिसमेंकले गुणाकरा यहाँ ६ गुणक  
या गुणाकार है ११ x ६ = ६६ को गुणकत्व कहते हैं । गुणाकरनेकी क्रियाको गुणन कहते हैं ॥

एतन्निगामी नगरुपसहाय नकील कृत पदच्छद और विषयत्पर्यं सति सवार्थ सिद्धिका शब्दश' हिन्दी मनुवाद अध्याय २ सूत्र ३८  
 औदारिकवादसख्येयगुणप्रदेश वैक्रियिकम् ॥ वैक्रियिकादसख्येयगुणप्रदेशामाहारकमिति ॥  
 कोरुणाकार ? पद्योपमासख्येयभाग ॥ यद्येव परम्पर महापरिमाण प्राप्नोति । नैवम् ।  
 न धविशेषापरिमाणभेदाभाव । तूलनिचयाय पिण्डवत् ॥ अथोत्तरयो किं समप्रदेशत्वमुत्तरिति  
 कश्चिद्विशेष इत्यत आह—

औदारिकवादः ॥ अतस्यप्यगुण प्रदर्शः ॥ वैक्रियिकः ॥ (=रमखिये) औदारिकशरीरसे असख्यातगुणे प्रदेशनाखा वैक्रियिक शरीर है  
 वैक्रियिकादः ॥ असख्येयगुणप्रदेशम् ॥ इति ०  
 आहारकम् ॥ इति ० गुणाकारः ॥ ?  
 पद्योपमासख्येय-भागः ॥ यदि ० एषम् ०  
 प्रदर्शः ॥ एषम् ॥ महात् ० परिमाणम् ॥ आमाति ० = अग्रिम अग्रिम (=परपर) शरीर गहन आकार वा स्थूलता हो मासरोता है  
 न ० एषम् ०  
 पद्योपमासख्येय-परिमाण-प्रदेश-अमातरः ॥  
 तूल-निचय-अपस-विण्डवत् ०  
 अयं उपारयाः ॥ इति ० इति ॥ मयपदयत्पम् ॥ अस्ति ०  
 उन ० क्विप् ० विशेषः ॥ इति ० यत ० आह ०  
 (=अपस) आहल हो (संज्ञकशरीर) और कार्यणशरीर) में क्या समान प्रदेशता है ?  
 (=अपस) आहल हो (संज्ञकशरीर) और कार्यणशरीर) में क्या समान प्रदेशता है ?

(१) मयपदयत्पम् इति मयपदयत्पम् ॥ अस्ति ०  
 मयपदयत्पम् ॥ इति ० यत ० आह ०  
 (=अपस) आहल हो (संज्ञकशरीर) और कार्यणशरीर) में क्या समान प्रदेशता है ?

## ॥ अनन्तगुणो परे ॥ ३६ ॥

प्रदेशत इत्यनुवर्तते, तेनैवमभिसम्बन्ध क्रियते-आहारकालेजस प्रदेशतोऽनन्तगुण, तेज सात्कर्मण प्रदेशतोऽनन्तगुणमिति ॥ को गुणाकार ? अभव्यानामनन्तगुण । सिद्धानामनन्तोभाग ॥ तत्रैतत्संख्यकृत्यवत् । मूर्तिमद्ब्रह्मोपचित्वात्संसारिणोजीवस्याभिप्रेतगति-सूत्रम्—

१. शा - परम् ३<sup>॥</sup> परम् ३<sup>॥</sup> परे ३<sup>॥</sup>

मदशत \* अनन्तगुणे ३<sup>॥</sup> मतत ।

= (प्रदेशत पर पर) अनन्तगुणे परे (भवत) ॥ ३६ ॥

= अग्रिम अग्रिम ( = पर पर ) अवशेष वा अन्य दो ( तैजस और कार्मण शरीर )  
= अदेशोक्ती अपेक्षासे ( पूर्व पूर्ण शरीरसे ) अनन्तगुणे है अर्थात् आहारक शरीरसे  
तैजसशरीरसे अनन्तगुणे प्रदेश अधिक है और तैजस शरीरसे कार्मण शरीरसे  
अनन्त गुणे प्रदेश अधिक है ॥

इत्यनुवर्तते — मदशत \* इति \*

अनुवर्तते । तत् ३<sup>॥</sup> परम् \*

अभिसम्बन्धः ३ क्रियते । आहारकाले ३<sup>॥</sup> तैजसम् ३<sup>॥</sup>

मदशत \* अनन्तगुणम् ३<sup>॥</sup> तैजसात् ३<sup>॥</sup> कार्मणम् ३<sup>॥</sup>

परः ३ गुणाकारः ३

अभयानाम् ३ अनन्तगुणः ३ सिद्धानाम् अनन्त ३

भाग ३ शस्यन्वत् \*

व्यञ्जनावत् ३ स्वात् ।

संसारिणः ३ जित्तय ३ अभिप्रेत-गति-

( १ ) देशात्पर और विगमत् दोनों आभाषोर्मे इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसाथ है । हमारे यहाँ कहीं पर 'अनन्तगुण परे' पाठ है और कहीं कहीं

पर-अनन्तगुण पर पाठ है दोनों पाठ ठीक हैं (अप्याय १ दिव्यपी १४० ५४१) १४ पर की अनुसृष्टि ३० वां घृण से और प्रदेशका कोशिकासे आती है

= अग्रिम अग्रिम ( = पर पर ) अवशेष वा अन्य दो ( तैजस और कार्मण शरीर )  
= अदेशोक्ती अपेक्षासे ( पूर्व पूर्ण शरीरसे ) अनन्तगुणे है अर्थात् आहारक शरीरसे  
तैजसशरीरसे अनन्तगुणे प्रदेश अधिक है और तैजस शरीरसे कार्मण शरीरसे  
अनन्त गुणे प्रदेश अधिक है ॥  
= अनुवर्तते वा आकर्षित होता है । जिस ( प्रदेशका वाक्य ) करि इस प्रकार  
= संयोग क्रियागया है कि आहारकशरीरसे तैजसशरीर  
= परमाणुओंकी अपेक्षासे अनन्तगुण है तैजसशरीरसे कार्मणशरीर  
= अदेशोक्ती विवक्षासे अनन्तगुण है ॥  
= अनुवर्तते वा गुणक कर्म अनन्त है ( क्योंकि अनन्तके अनन्त भेद है )  
= भाग है ( सो अनन्त गुणक है ) ( मरन ) भाग वा वीरके फाल (= अल्पक ) के सख्य  
= ( तैजस और कार्मण शरीर सहित ) संसारी जीवके जनियोग (= अभिप्रेत ) गुणम





मूर्तिमत्तो मूर्त्यन्तरेण व्याघात प्रतीघात । स नास्त्यनयोरित्यप्रतीघाते ॥ सूक्ष्मपरिणामा-  
दय यथिठे तेजोऽनुप्रवेशवत् जसकार्मणयोर्नास्ति वज्रपटलादिषु व्याघात ॥ ननु च वैक्रियि-  
काहारकयोरपि नास्ति प्रतीघात । सर्वज्ञाप्रतीघातोऽत्र विवक्षित । यथा तैजसकार्मणयोगो-  
लोकान्तात् सर्वत्र नास्ति प्रतीघातः । न तथा वैक्रियिकाहारकयो ॥

धृत्पदुपदः-मूर्तिमत्तर्माः मूर्ति-अन्तरण्ये॥व्याघातः॥मूर्तिमानका (मूर्तिमत्त) अन्य मूर्तिमानकरि रूपाय (व्याघात) है सा  
प्रतीघातः॥ सा ५ न० अक्षेण T अनयो इ॥  
इतिव्यपरीयात्॥सूक्ष्मपरिणामावोऽप्यस्य तिरिभेदे तेजसु-वेत्तं दोनो मतिपात रतिरै । सूक्ष्मपरिणाम(किंकारण) से लोहेके पिढये अन्निका  
अनुपवेशवत्-तैजस-कार्मणयोः॥  
न० अस्ति T अणपटलादिषु व्याघातः॥

वैक्रियिका आहारकयोः॥ अस्ति न अस्ति प्रतीघातः॥  
सर्वत्र व्याघातः॥ अणपटलादिषु व्याघातः॥  
यथा-तैजस आणखयोः॥ आ० लोकांतावः॥ सर्वत्र०  
न० अस्ति प्रतीघातः॥ न० अथावैक्रियिक आहारकयोः॥ व्याघातः॥

व्यतिपातः॥ अणपटलादिषु व्याघातः॥  
वैक्रियिक और आहारक (शरीर) का (व्याघात)  
अर्थात् लाकके अन्तर्गत तैजस और कार्यण शरीरोंका रूपा मी प्रतिघात नहीं होता  
वैक्रियिक और आहारक शरीरोंका तैसा अस्तिप्रतिघात नहीं किंतु उनका प्रतिघात ऐसे  
होमाता है कि केवली और भूत केवलीके बिना जिसका समापान न हो सके ऐसी  
तत्त्वविषयक गूढ शंका हो जानेपर उसकी निश्चिन्ते किये मगध गुणस्थान वर्ती संयमी

एतान्नासी नगरूपसाय बह्वीय कृव पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वाण्यसिद्धिचिह्ना शब्दश्चः हिन्दी अनुवाद अध्याय २ सूत्र ४०, ४१  
आह किमेतानेव विशेष उत कश्चिदन्वयोऽप्यस्तीत्याह—

॥ अनादिसम्बन्धे च ॥ ४१ ॥

चशब्दो विकल्पार्थ । अनादिसम्बन्धे सादिसम्बन्धे चेति ॥

युक्तिं आशारकशरीरकी मूढता होती है और जहाँ केवली वा भ्रुककेवली विराजते हैं वहाँतक जाकर फिर आशारक शरीर खोद जाता है । केवलियोंकी स्थिति शार् द्वीपसे बाहिर नहीं होती इसलिये आशारक शरीरकी गमन अधिकसे अधिक शार् द्वीप पर्यंत ही है । मनुष्योंका वैकिक्यिक शरीर मनुष्यलोक(=शार् द्वीप) पर्यंत ही गमन करता है तथा देवोंका वैकिक्यिक शरीर ब्रह्मनाली पर्यंत गमन करता है अधिक नहीं इसलिये य दोनों शरीर वैजस और कार्मण्य शरीरोंक समान सर्वत्र अप्रतिघात नहीं हैं ॥ अतः इस सर्वत्र गमनकी विशेष अपेक्षासे वैजस और कार्मण्य शरीरोंको इससूत्रमें अप्रतिघात कहा है ॥

आह । सिन्धुपतानात् १। एवमविशेषः १।

उत० अत्रिद० अन्य १। अवि० आस्ता इति० आह । = ध्यवा (= उत) कुब और (= अन्य) भी है । ( निम्नसूत्रमें) करते हैं कि सूत्रम् — "अनादिसम्बन्धे चा ॥ ४१ ॥" = (परे जीवस्य) अनादि सम्बन्धे च भवत ॥ ४१ ॥

व्याख्या:- पर १॥ अत्रस्य १।

अनादि-सम्बन्धे १॥ व० मवता ।

अनादि-सम्बन्धे भी(और मोक्ष शान्तेकसम्बन्धे एवनेवाले हैं अर्थात् वैजस और कार्मण्य ये दो शरीर जीवकेसाय अनादिकावास भी संभववाले हैं सादिसम्बन्धे भी संभववाले हैं = भी(=च) हैं और सादिसम्बन्धे एवनेवै मानार्थ सूत्रमें चशब्द है उसका अर्थ विकल्प है और वैजस और कार्मण्य इनदोनों शरीरोंका आशारके साथ अनादिऔर

(१) इतान्नासी नगरूपसाय बह्वीय कृव पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वाण्यसिद्धिचिह्ना शब्दश्चः हिन्दी अनुवाद अध्याय २ सूत्र ४०, ४१  
"चशब्दो विकल्पार्थ । अनादिसम्बन्धे सादिसम्बन्धे चेति ॥"

सादिगच्छसे दानो मरारका संकल्पौ य एत वयव्यका यमोमनरै । वयव्यका ऐसा कार्य मरालोपर रूपे  
उसका शुभश मनुबाहलेनें यो निरुक्त आता है कि अनादिसम्बन्धवाले यो(=च) हैं वो मरालोपर रूपे  
और प्रकारका संबंधवालेमी तेजसकोर कार्यण शरीरैव संकल्पयारै? मोसादि संबंधयौ वयव्यकाय ए मयावै ॥

कार्यकारणभाव-सन्तत्या ॥ अनादि-सम्बन्धे ॥ = कार्यकारणके होनेके (=भाव)संबंधान (कीअपेक्षा) से अनादि सम्बन्धकाय ए मयावै ॥  
य\* विशेष-अपेक्षया ॥ सादिसम्बन्धे ॥ अपि० = और(=च) विशेष निषङ्गासे सादि संकल्पवाले हैं  
बीज, इस प्रकार सामान्यरूपसे कार्यकारणरूप संबंधकी विषयवाची जाती है उस समय बीज और वृजका  
कार्यकारणरूप अनादि संबंध माना जाता है और जिस समय अद्वयक बीजसे अद्वयकवृजसे, अद्वयक  
इसप्रकार विशेषरूपसे कार्यकारणकी विषयवाची जाती है उस समय बीज और वृजका यह सम्बन्ध  
सादि माना जाता है उसी प्रकार जिस समय आत्माके साथ तेजस कार्यण शरीरके निषिच नैषिचक  
सम्बन्धकी सामान्यरूपसे विषयवाची जाती है उस समय आत्माके साथ तेजस कार्यण शरीरके निषिच नैषिचक  
संबन्धै कर्णोकि अनादिगच्छसे ऐसा कोई भी समय नहीं बीजा जिसमें तेजस कार्यणकी आत्मासे वृयकृशा  
हूँ हो और जिस समय अद्वयक तेजस कार्यणको अद्वयक वयव्यकायण आत्माके साथ संबंध है पुरातन अंतत  
परमाणु दोनों शरीरोंकी समय समय निर्जरे हैं और नहीं नवीन अतः परमाणु संबंधरूप होती है इस विशेषकी  
अपेक्षासे ये तेजस और कार्यण दोनों शरीर सादि सम्बन्धवाले हैं । इसप्रकार विशेष विषयवा है उस समय  
उन्ही आपसमें निषिचनैषिचक सम्बन्ध सादि है । इस प्रकार सामान्य और विशेष विषयवा है उस समय  
और तेजस कार्यणका अनादि सादि दोनों प्रकारका संबंध सिद्ध है ॥

पया० मोचार्थिकवैक्रियिकआहारकच्छि० ॥ जीवस्वै ॥ = जैसे औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर कीयके  
कायाचित्कानि ॥ न्य० वया० तेजस-कार्यण ॥ = कभी कभी होनेवाले होते हैं नहीं है तैसे(कभी कभी होनेवाले) तेजस कार्यण शरीर  
(१) कार्यकारणक पदकच्छि० को पच्छ १०३ में लिखिनी है इसका अर्थपुरुष (= प्रथम पुरुष ) शुभकर्म, गुणकर्मिणं कायाचित्कानि है ।

सिद्धि  
सूत्र ११

एतन्निवासी नगरसप्तशयन वस्तीक कृत पदच्छेद और विमलत्यर्यसहित सर्गार्थसिद्धिषिका शब्दशः शिन्वी अनुवाद अध्यायर सूत्र ४०, ४१  
आह किमेतावानेव विशेष उत कश्चिदनुयोऽप्यस्तीत्याह—

॥ अनादिसम्बन्धे च ॥ ४१ ॥  
चशब्दो विकल्पार्थ । अनादिसम्बन्धे सादिसम्बन्धे चेति ॥

युक्तिं आहारकशरीरसी प्रकटा होती है और अर्गं केवली वा भुतकेवली विराजत है वहातक जाकर फिर आहारक शरीर खोटा आया है । केवलियोंकी स्थिति बार्द्रीपसे बाहिर नहीं होती इसलिये आहारक शरीरका गतन अभिकसे अधिक बार्द्रीप पर्यंत ही है । मनुष्योंका वैकिकिक शरीर मनुष्यलोक(=बार्द्रीप) पर्यंत ही गमन करता है तथा देवोंका वैकिकिक शरीर प्रसनाली पर्यंत गमन करता है अधिक नहीं इसलिये ये दोनों शरीर तेजस और कार्मण शरीरोंक समान सर्वत्र भ्रमतिपात नहीं हैं ॥ अतः इस सर्वत्र गमनकी विशेष अपेक्षासे तेजस और कार्मण शरीरोंको इसदूधमें भ्रमतिपात करा है ॥

माहा इन्द्रपलाशान्, एवविशेषः ।  
उपश्रमिदुःअन्यः । अविःअस्ति । इति० माहा । इति० इव । इति० इव । ( निम्नदूधमें ) करते हैं कि  
सूत्रम्— "अनादिसम्बन्धे चा ॥ ४१ ॥" (= परे जीवस्य) अनादि सम्बन्धे च भवत ॥ ४१ ॥

यथाप-परः ॥ श्रीरस्य ॥

अनादि-सम्बन्धे ॥ वचनवत ।

=अन्य दा (=परे=तेजस और कार्मण शरीर) शीषक

=अनादिकाखसे भी(और मोक्ष शानतक)सर्वत्र रलनेवाले हैं अर्थात् तेजस और कार्मण

ये दो शरीर श्रीवकेपाय अनादिकाखसे भी संबन्धवाले हैं सादिकाखसे भी संबन्धवाले हैं

पुत्रपुत्राद-पुत्रादः ॥ विकल्प अर्थ ॥ अनादिसम्बन्धे ॥ (= इसदूधमें) पशुद विविध रूपनकेलिये है ( अर्थात् ) अनादि संबन्धवाले

पुत्रादिसम्बन्धे ॥ इति०

विकल्प है और तेजस और कार्मण इनद्वानों शरीरोंका आरनाके साथ अनादिका

(1) इतनापर बाद विरुद्धर शैला आनाजोमें इन पुत्राका पाठ और अन्ये प्रकटा है न इतारे यहां कही कही पर 'तस्यो'पाठ है और कही कही पर 'सम्बन्धे' पाठ है याने पाठ वाक है (एतौ सम्बन्धे परत विमलती-पुत्र १००-१०१) और विमलती पुत्र १, १०) न



निरयसम्बन्धिनी हिते आसंसारत्वात्। एतत्तेजसकामर्थे किंकर्ष्यचिदेव भवत उताविशेषेत्यत आह  
**॥ सर्वस्य ॥ ४२ ॥**  
 सर्वशब्दो निरवशेषवाची । निरवशेषस्य ससारिणो जीवस्य ते द्वे अपि शरीरे भवत इत्यर्थ ॥  
 अविशेषाभिधानात् शैदारिकादिभिः सर्वस्य ससारिणो यौगपद्येन सम्बन्धप्रसङ्गे

१ नित्यसम्बन्धिनी ॥ २ वि० वे० ॥ ३ आ० ससारत्वात् ॥ ४ नित्य संशयान्ते (जीवके) ससारकेनायु होनेतक (अभा) है ॥  
 ५ एतत् ॥ ६ तेजस-वर्षकोत्प्रे ॥ ७ किम् ० इत्यपि च ॥  
 ८ वे ( ये ) तेजस और कार्यण शरीर क्या किसी ( जीव ) के  
 ९ एव ० यथन ॥ १० उत ० अविशेषोपपत्ति ॥ ११ अतः ० आह ॥  
 १२ उत ० अविशेषोपपत्ति ॥ १३ अतः ० आह ॥  
**सूत्रम्** सर्वस्य  
 सर्वार्थ-सर्वस्य संसारिणः १ जीवस्य २ तद्रे ॥  
 तेजस कार्यकोत्प्रे ३ शरीरम् ॥ भवत ४

= त्वोक्ति (= द्विवेदोनों) नित्य संशयान्ते (जीवके) ससारकेनायु होनेतक (= अभा) है ॥  
 = वे ( ये ) तेजस और कार्यण शरीर क्या किसी ( जीव ) के  
 = ही होते हैं (= यथन) प्रत्यक्षा (= उत) विशेषरहित (सबजीवोंके) । इसलिये कहते हैं कि  
 = सर्वस्य (ससारिणो जीवस्य) (परे तेजसकामर्थे शरीरे भवत)  
 = सपस्त ससारी जीवके परके दो  
 = तेजस और कार्यण शरीर होते हैं अर्थात् तेजस और कार्यण ये दोनों शरीर  
 सामान्यरूपसे सब संसारी जीवोंके होते हैं यदि किसीके ये दोनों शरीर न होने  
 ठी यह शेष संसारीही नहीं कहा जा सकता ॥  
 = (इस सूत्रमें) सर्वशब्द निश्चिद्येण वा नि श्रेयसा वाचक है । नित्यत्व वा सपरव  
 = संसारी जीवके (= अविशेष) ये दो (तेजस और कार्यण) शरीर होते हैं  
 = ऐसा अशुभ वा अभिप्राय है । सामान्यरूप (= अविशेष) कहनेसे (= अभिप्रायानात् )  
 = उन औदारिक वैकल्पिक आहारक तेजस कार्यण शरीरोंके साथ, सब  
 - संसारी (जीव)के एककालमें (सपकालम्) यौगपद्येन संबंधका प्रसंग आनेपर

(१) यत्र विषय शब्द चित्तिनीरे वक्षिण में प्रथमा विभक्ति एक कवन सम्बन्धिनी ही यहाँ से शब्द म्पुत्रकलिंग प्रियवत्त तद्गु शुभप्रकाशे शीत शिखर कामं च  
 (२) शरीरके विशेषापादकस्य शीत सम्बन्धिनी प्रथमा विभक्ति म्पुत्रकलिंग प्रियवत्त तद्गु शुभप्रकाशे शीत शिखर कामं च  
 (३) शरीरके विशेषापादकस्य शीत सम्बन्धिनी प्रथमा विभक्ति म्पुत्रकलिंग प्रियवत्त तद्गु शुभप्रकाशे शीत शिखर कामं च  
 (४) यत्र विषय शब्द चित्तिनीरे वक्षिण में प्रथमा विभक्ति एक कवन सम्बन्धिनी ही यहाँ से शब्द म्पुत्रकलिंग प्रियवत्त तद्गु शुभप्रकाशे शीत शिखर कामं च

सम्मविशरीरप्रदर्शानार्थमिदमुच्यते—

# तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥४३॥

तच्छब्द

सम्भवि शरीर प्रदर्शनार्थम् ॥ इदमुच्यते ॥ इत्यर्थः ॥ तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥ ते तैजसकार्मणो आदिर्येषां युगपद् (युगपत्) एकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥  
= उक्त (तैजस, कार्मण) को आदिके दिलावनेकेलिये यह कृपा आहार कि

नैकिक, तैजस और कार्मण को आदिके दिलावनेकेलिये यह कृपा आहार कि  
= एक कालमें एक (जीव) में चार (शरीर) तक होते हैं अर्थात् दो शरीर होते हैं एक साथ चार शरीर हो तो नौ शरीर होते हैं परन्तु ये देव तथा नरक गणियोंमें ही होते हैं। यदि किसीके आहारक होता है उसको नैकिक होता है उसको आहारक नहीं होता और जिसको इत्यनुवाद—यद् यन्मूल-तैजस-कार्मण-यति निर्देश अर्थ—तैजस-कार्मण-यति

(1) हमारे यहां बहुत ही उत्कृष्ट में उपर्युक्त पाठ है किसी किसी पुस्तक में (जैसे ५० पद्यालालजी याकशीवाल मनुयावित मोक्ष शाल्य ग्रंथ १६ में) एकस्मिन्, एकके अन्तर्गत एक (जीव) में चार तक होते हैं रक्ता है ॥ स्पेताम्बर कात्रायके समाप्य तस्याप्यपि तत्र शेष कार्मण ही एक हो सकता है। दो ही सन्तानें कार्मण और नैकिक हो सकते हैं वा कार्मण ही शरीर का अब अन्तर्गत संघ ही हीमकी योग्यता में कार्मण शरीरिक और नैकिक हो सकते हैं और आहारक हो सकते हैं। परन्तु एकस्मिन् ही एक कालमें एक ही पांचोंकी होते हैं।



तानि तदादीनि । भाज्यानि विकल्पानि आ कुत । आ चतुर्थ्यं । युगपदेकस्यात्मन ॥ कस्यचित् हे  
तेजसकाम्ये । अपरस्य त्रीणि औदारिकतैजसकाम्यानि, वैक्रियिकतैजसकाम्यानि वा । अन्यस्य  
चत्वारि औदारिकाहारकतैजसकाम्यानीति विभाग क्रियते ॥ पुनरपि तेषां विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

## ॥ निरुपभोगमन्त्यम् ॥४४॥

मानि ॥ तदादीनि ॥

भाज्यानि ॥ विद्वेषानि ॥ मां कुना ॥

अ' वा चतुर्थ्यं ॥ युगपदेषु इत्यर्थं ॥ आत्मन ॥

कस्यचित् हे ॥ तैजस-काम्ये ॥ अपरस्य ॥

त्रीणि ॥ औदारिक-तैजस-काम्यानि ॥

वा ॥ वैक्रियिक-तैजस-काम्यानि ॥

अन्यस्य च चत्वारि ॥

औदारिक आहारक-तैजसकाम्यानि ॥ अविधिमाग

क्रियत इ युजः ॥ मां ॥ त्वाम् ॥

सिगा मतिवति-अर्थम् ॥ आ इ ॥

सूत्रम् ॥ निरुपभोगमन्त्यम् ॥४४॥

वृथाः—

अन्त्यम् ॥ निरु-उपपन्नम् ॥

=त-=शानि) तदादीनि अर्थात् तिन (तैजस-काम्येण शरीरो) को आदिमें लेकर है

=भाज्य है सा विकल्पारूप वा विभागरूप करना है (विभागरूप) र्शां सक (=मा) है

=वार पर्यन्त परुच्छालमें एक बौक्के है ।

=क्रिसी (बीज) के वा तैजस और काम्येण (मो विप्रश्रयविषोक्त) है । दूसरे (बीज) के

=वीन (अर्थात्माग-पञ्चयु-तिर्य्योके) औदारिक, तैजस और काम्येण शरीर है

=अथवा (देव-नारिक्योके) वैक्रियिक, तैजस, काम्येण (ये तीन शरीर) होते हैं

=अन्य (बीज-अर्थात् मपच सयमी छठवां युगस्यानवर्ती क्रिसी क्रिसीसुनि) के वार

=औदारिक, आहारक, तैजस, काम्येण है इस प्रकार विभाग वा वांट

=क्रियाजाया है । फिरही उन (औदारिक-वैक्रियिक-आहारक-तैजस-काम्येण शरीरो) के

=विशेष जाननकेलिये (अग्रिम सूत्रमें) करते हैं कि

=अन्त्यम् काम्येणमनिरुपभोगम् भवति ॥४४॥

(औदारिक-वैक्रियिक आहारक तैजस, काम्येण छठीसप्तमसूत्रमें कहेछुये शरीरो में )

=अन्त्यम काम्येण शरीर (मन और इन्द्रियो द्वारा शब्दादिके) उपपन्नसे रहित है ।

अर्थात् जैसे औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, शरीर आत्माको मन और पंच इन्द्रियोद्वारा

उपपन्न शरीर पंच इन्द्रियमौर मनकोसहायता से जीवको उपयोगदाकारण नहीं है

उपपन्न शरीर नहीं है व और वैक्रियिक तथा आहारक तथा आहारकके स्वाधीनमें विद्योत्पत्ते

(१) औदारिकतैजसकाम्येणमनिरुपभोगम् इत्यर्थम् इति ॥ अन्त्यम् इति ॥ अन्त्यम् इति ॥ अन्त्यम् इति ॥

(२) अन्त्यम् इति ॥ अन्त्यम् इति ॥ अन्त्यम् इति ॥ अन्त्यम् इति ॥

पुननिषामी अरूपतसाय कर्त्तव्यं कृत पदच्छेदं धार विपयत्यर्थं सहित समर्थं सिद्धिका शब्दश' सिद्धी अनुवाद अर्थाय २ सूत्र ४४  
अन्ते भगमन्त्यम् ॥ किं तत् ? कार्मणम् ॥ इन्द्रियप्रणालिकया शब्दादीनामपलविधिरुपभोग ।  
तदभागात्रिरुपभोगम् ॥ विग्रहगतौ संख्यामपि इन्द्रियलब्धौ द्रव्येन्द्रियनिवृत्त्यभावाच्छब्दाद्यु-  
पभोगाभाव इति ॥ ननु तैजसमपि निरुपभोगम् । तत्र किमुच्यते निरुपभोगमन्त्यमिति ॥

= (बचीसवो द्रव्ये औदारिक, वैक्रियिक, आठारक, तैजस, के) अन्त्ये वा इ  
= सौ अंतिय वा अंतका (= अत्यम्) है । वह क्या है ? (बह) कार्मण (शरीर) है ।  
= इन्द्रिय-प्रणालिकाकारि (= प्रणालिकाकार) शब्द, स्वार्थ, रस, गन्ध, बलौका (= भादीनाम्) अणु है  
= सा उपभोग है । तस (उपभोग) ही अविद्यमानतासे 'निरुपभोग' है ॥  
= तनीन शरीर (अणु वा पोरणकरत्न) के किये गयनर्थे (बीबके) इन्द्रियोंकी  
= (उपभोगरूपकपञ्चमि) होनेपर भी अर्थात् सुयोपणकरूप कल्पिके निषिक्तसे  
भाषस्वरूप इन्द्रियोंकी रचना और उनके विद्यमान रहनेपर भी  
= मयाप है अर्थात् विग्रहगतिमें भाषस्वरूप इन्द्रियोंके रहनेभी देखो सूत्र १८ )  
द्रव्यस्वरूप इन्द्रियोंकी रचना (देखो सूत्र १७) का अयाप है इसलिये शब्दविका  
अनुपपन्न होनेसे कार्मणशरीर निरुपभोग ही है (सापभोग तर्ही है) स-उपभोगनहीं  
= यत्न - तैजस (शरीर) भी उपभोगसे रहित है । तहां (विग्रहगतिमें भाषस्वरूप  
इन्द्रियोंक रहनेपर और द्रव्यस्वरूप इन्द्रियोंक रचनाके अभावमें)  
= यत्नका (कार्मण शरीर) उपभोगरहित एसा क्यों कर्त्तव्य है? यत्नका आशय यह है  
कि विग्रहगतिमें जैसे इन्द्रियोंद्वारा शब्दादिके प्रणकरूप उपभोगसे कार्मणशरीर  
भाषइन्द्रियों क रहनेपर भी निरुपभोग है वैसेही तैजस शरीर भी विग्रहगतिमें भाषइन्द्रियोंके होनेपर भी  
इन्द्रियोंद्वारा शब्दादिके प्रणकरूप उपभोगसे रहित है । जब दोनोंकी अबस्था एकसी है फिर कार्मण  
शरीर ही निरुपभोग क्यों कर्त्तव्य, तैजसभी उसके साथ साथ क्यों निरुपभोग कर्त्तव्य ॥

द्रव्यनुवादः - मन्तौ भवत्यम् ॥  
अन्त्यम् ॥ इत्यम् ॥ तद् ॥ कार्मणम् ॥  
इन्द्रिय-प्रणालिकाकारि ॥ शब्द, स्वार्थ, रस, गन्ध, बलौका ॥  
उपभोगः ॥ तत् समाप्तम् ॥ निरु उपभोगम् ॥  
विग्रह-गतौ ॥ इन्द्रिय-  
कर्त्तव्ये ॥ सत्यम् ॥ अपि ॥

द्रव्य-इन्द्रिय निर्देष्टि अभावात् शब्द आदि उपभोग-द्रव्य इन्द्रियोंकी रचनाके (= निर्हेष्ट) न होने (कहेष्ट) स शब्दादिक उपभोगका  
अयाप है अर्थात् विग्रहगतिमें भाषस्वरूप इन्द्रियोंके रहनेभी देखो सूत्र १८ )  
द्रव्यस्वरूप इन्द्रियोंकी रचना (देखो सूत्र १७) का अयाप है इसलिये शब्दविका  
अनुपपन्न होनेसे कार्मणशरीर निरुपभोग ही है (सापभोग तर्ही है) स-उपभोगनहीं  
= यत्न - तैजस (शरीर) भी उपभोगसे रहित है । तहां (विग्रहगतिमें भाषस्वरूप  
इन्द्रियोंक रहनेपर और द्रव्यस्वरूप इन्द्रियोंक रचनाके अभावमें)  
= यत्नका (कार्मण शरीर) उपभोगरहित एसा क्यों कर्त्तव्य है? यत्नका आशय यह है  
कि विग्रहगतिमें जैसे इन्द्रियोंद्वारा शब्दादिके प्रणकरूप उपभोगसे कार्मणशरीर  
भाषइन्द्रियों क रहनेपर भी निरुपभोग है वैसेही तैजस शरीर भी विग्रहगतिमें भाषइन्द्रियोंके होनेपर भी  
इन्द्रियोंद्वारा शब्दादिके प्रणकरूप उपभोगसे रहित है । जब दोनोंकी अबस्था एकसी है फिर कार्मण  
शरीर ही निरुपभोग क्यों कर्त्तव्य, तैजसभी उसके साथ साथ क्यों निरुपभोग कर्त्तव्य ॥

तानि तदादीनि । भाज्यानि विकृपानि आ कुत । आ चतुर्भ्यं । युगपदेकस्यात्मन ॥ कस्यचित्त्वे  
तेजसकर्मणे । अथरस्य त्रीणि औदारिकतैजसकर्मणानि, वैक्रियिकतैजसकर्मणानि वा । अन्यस्य  
चत्वारि औदारिकहारकतैजसकर्मणानीति विभाग क्रियते ॥ पुनरपि तेषां विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

## ॥ निरुपभोगमन्त्यम् ॥४४॥

नानि<sup>१</sup> नरादीनि<sup>२</sup> ॥  
 मायानि<sup>३</sup> ॥ विरुपानि<sup>४</sup> ॥ आऽकुपः<sup>५</sup>  
 न<sup>६</sup> आ चतुर्भ्यं ॥ युगपत्<sup>७</sup> परस्पर<sup>८</sup> भावत ॥  
 कस्यचित्त्वे<sup>९</sup> तैजस-कर्मणे<sup>१०</sup> ॥ अथरस्य<sup>११</sup>  
 त्रीणि<sup>१२</sup> ॥ औदारिक-तैजस-कर्मणानि<sup>१३</sup> ॥  
 वा<sup>१४</sup> औदारिक-तैजस-कर्मणानि<sup>१५</sup> ॥  
 अन्यस्य<sup>१६</sup> पत्नानि<sup>१७</sup> ॥  
 औदारिक आहारक-तैजसकर्मणानि<sup>१८</sup> ॥ प्रतिविभागः<sup>१९</sup>  
 कृत ॥ पुनः<sup>२०</sup> अपि<sup>२१</sup> वाप्य<sup>२२</sup> ॥  
 निगु नतिपति-अप्य<sup>२३</sup> ॥ या १  
**सूत्रम्** ॥ निरुपभोगमन्त्यम् ॥४४॥  
 यथाः-  
 अन्त्यम् १ ॥ निरु-उपभागम् १ ॥

=वै=वाणिज्यदादीनि अथात् विन (तैजस-कार्येण शरीरं) को भावित्वं लेकर है  
 =भाज्य है सा विकृत्यत्वरूप वा विभागरूप करना है (विभागरूप) सहां तक (=आ) है  
 =चार पर्यंत एकत्रालमें एक जीवकें है ।  
 =किसी (बीव) कें हा तैजस और कार्येण (भो विग्रहगतिमें होत) है । दूसरे (बीव) कें  
 =वीन (अथर्विमायामनुष्य-विर्यवोके) औदारिक, तैजस और कर्मण शरीर है  
 =अथवा (देव-नारिकियोंके) वैक्रियिक, तैजस, कर्मण (ये वीन शरीर) होते है  
 =अन्य (बीव-अथर्व) मपच सयमी छठवां गुणस्वानकर्ता किसीकिसीमूनि) कें चार  
 =अन्य (बीव-अथर्व) मपच सयमी छठवां गुणस्वानकर्ता किसीकिसीमूनि) कें चार  
 =औदारिक, आहारक, तैजस, कार्येण है इस प्रकार विभाग वा बंट  
 =किया जाता है । फिर भी उन (औदारिक-वैक्रियिक-आहारक-तैजस-कर्मण शरीरों)के  
 =विशेष जाननकेलिये (अग्रिम सूत्रमें) कते है कि

(औदारिक वैक्रियिक आहारक तैजस, कार्येण इत्सीसर्वात्म्यमे कहेहुये शरीरों में)

अन्तिम कर्मण शरीर (मन और इन्द्रियों द्वारा शब्दादिक) उपयोगस रदित है ।  
 अथात् जैसे औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, शरीर आत्माको मन और पाँच इन्द्रियोंद्वारा

उपयोगकारण होत है तैस कर्मण शरीर पाँच इन्द्रियोंद्वारा मन हीन सहायता से बीवोंके उपयोगकारण नहीं है  
 (औदारिक वैक्रियिक आहारक तैजस, कार्येण इत्सीसर्वात्म्यमे कहेहुये शरीरों में)  
 अन्तिम कर्मण शरीर (मन और इन्द्रियों द्वारा शब्दादिक) उपयोगस रदित है ।  
 अथात् जैसे औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, शरीर आत्माको मन और पाँच इन्द्रियोंद्वारा

१) नानि=नानि  
 २) नरादीनि=नरादीनि  
 ३) मायानि=मायानि  
 ४) विरुपानि=विरुपानि  
 ५) आऽकुपः=आऽकुपः  
 ६) न=न  
 ७) युगपत्=युगपत्  
 ८) परस्पर=परस्पर  
 ९) कस्यचित्त्वे=कस्यचित्त्वे  
 १०) तैजस-कर्मणे=तैजस-कर्मणे  
 ११) अथरस्य=अथरस्य  
 १२) त्रीणि=त्रीणि  
 १३) औदारिक-कर्मणानि=औदारिक-कर्मणानि  
 १४) वा=वा  
 १५) औदारिक-तैजस-कर्मणानि=औदारिक-तैजस-कर्मणानि  
 १६) अन्यस्य=अन्यस्य  
 १७) पत्नानि=पत्नानि  
 १८) औदारिक आहारक-तैजसकर्मणानि=औदारिक आहारक-तैजसकर्मणानि  
 १९) प्रतिविभागः=प्रतिविभागः  
 २०) पुनः=पुनः  
 २१) अपि=अपि  
 २२) वाप्य=वाप्य  
 २३) निगु नतिपति-अप्य=निगु नतिपति-अप्य

॥ गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् ॥ ४५ ॥  
सूत्रकमापेक्षया आदौ भवमाद्यम् । औदारिकमित्यर्थ ॥ यद्वर्मजं यत्र सम्मूर्च्छनजं तत्सर्वमौ  
दारिकं द्रष्टव्यम् ॥ तदनन्तरं यन्निर्दिष्टं, तत्कस्मिन् जन्मनीत्यत आह—

॥ औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥ ४६ ॥  
उपादे भवमौपपादिकम् । तद्—

सूत्रम्— "गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् = गर्भजम् सम्मूर्च्छजम् च आद्यम् भवति ॥ ४५ ॥  
यथार्थं-गर्भजम् ३॥ सम्मूर्च्छनम् ३॥  
मायम् ३॥ भवति I

इत्युपादे—यथ-इय-यपेक्षया आदौ ३॥ भवति ॥ मायम् ३॥ भवति ॥  
औदारिकम् ३॥ इति ३॥ अर्थ ३॥ यद् ३॥ गर्भजम् ३॥  
यद्-अन्तरम् ३॥ यद् ३॥ निर्दिष्टम् ३॥  
वद्-कस्मिन् ३॥ जन्मनि ३॥ शक्ति ३॥ अर्थ ३॥  
सूत्रम्— औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥ ४६ ॥  
यथार्थं— औपपादिकम् ३॥ वैक्रियिकम् ३॥ यवति I  
इत्युपादेः उपादे ३॥ भवति ३॥ औपपादिकम् ३॥ अर्थ ३॥  
(1) इत्थं प्रकृतौ जन्मस्यार्थं पाठं चोत्तरं एकं है । अथ च के जन्मार्थं यथा 'आप' है यत्र कालेन रूपमात्रा व्याकरणात्काले अतिरिक्तं अस्तु यत्र  
(आपयम् १ इत्युक्तौ एक ५ वेको) (२) यथेवात्मर आत्मायते समान्य-ने-वैक्रिये मौपपादिकम् पाठं विपाठं सिद्धं होते पर भी दोनों का कार्य एकसा है ।

तैजसं शरीरं योगनिमित्तमपि न भवति, ततोऽस्योपभोगविचारेऽनधिकारः ॥  
एव तत्रोक्तलक्षणेषु जन्मसु अमूनि शरीराणि प्रादुर्भावमापद्यमानानि किमविशेषेण भवन्ति,  
उत कश्चिदस्ति प्रतिविशेष इत्यत आह—

तैजसं ॥ शरीरं ॥ योगनिमित्तमपि ॥ अविशेषेण भवति ॥ ततोऽस्योपभोगविचारेऽनधिकारः ॥  
ततः ॥ अमूनि ॥ उपभोग-विचारोऽनधिकारः ॥

शाश्वत, मातापिता और कार्यण य साव भवे काययोगके मानेये हे इनमें तेजस योग नामका कोई  
भी भेद नहीं है इसलिये तेजस शरीर योगका कारण नहीं मानागया है और यहाँ पर उपभोगके विचारमें  
केवल वे शरीर प्रकारमें लियेये हैं वा वे शरीर विषयभूत हैं जो योगका कारण हैं अतः तेजस शरीर  
उपयोगके विचारमें अपिकृष्ट वा महत्त्वयुक्त नहीं है। इसीसे ही औदारिक वैकल्पिक आहारक और कार्यण  
योगनिमित्त शरीरोंमें स अन्वमें रहनवाला काम्य शरीरका निरूपण करा है। ये नामार्थ योंकिवद्विस्त हैं ॥

तैजसं ॥ अमूनि ॥ अमूनि ॥  
अविशेषेण ॥ आधुर्भावः ॥  
अधिकारः ॥ अविशेषेण ॥ अविशेषेण ॥  
अधिकारः ॥ अविशेषेण ॥ अविशेषेण ॥

तैजसं शरीरं योगनिमित्तमपि न भवति, ततोऽस्योपभोगविचारेऽनधिकारः ॥  
एव तत्रोक्तलक्षणेषु जन्मसु अमूनि शरीराणि प्रादुर्भावमापद्यमानानि किमविशेषेण भवन्ति,  
उत कश्चिदस्ति प्रतिविशेष इत्यत आह—





एतानिवासी आत्मपराय सतील कृत परस्वत आर विपत्त्यर्थं सति सतार्थसिद्धिना शक्यं हिन्दी श्रुत्वाद् अध्याय २ सूत्र ४८ = ४९  
अप्रिशब्देन लब्धिप्रत्ययमभिसम्बन्धयते । तैजसमपि लब्धिप्रत्यय भवतीति ॥  
वैक्यिकानन्तर यदुपदिष्टं तस्य स्वरूपनिर्धारणार्थं स्वामिनिर्देशार्थं चाह—

॥ शुभं विशुद्धमव्याधाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥ ४९ ॥

युगार्थ - (१) वैजसं (२) अग्निशरीरं (३) अग्निप्रथमयुगं (४) वैजस शरीर भी (=अग्नि) एषाविशेषरूपरुद्धि मासिक निमित्तसे  
भवति ।

द्वययुगार्थः—अग्निशुद्धः नैः (अग्निप्रथमयुगं) अग्नि संसंयतस्यैव (=इसप्रथमयुगं) अग्नि शुद्धिः अग्नि-लब्धिप्रत्ययः यदुपदिष्टं (२) अग्निशरीरं (३) अग्निप्रथमयुगं (४) वैजस शरीर भी (=अग्नि) एषाविशेषरूपरुद्धि मासिक निमित्तसे भवति ।  
वैक्यिक-अनन्तरयुगं (१) यदुपदिष्टं (२) अग्निप्रथमयुगं (३) अग्निशरीर भी (=अग्नि) एषाविशेषरूपरुद्धि मासिक निमित्तसे भवति ।  
तस्य-निर्धारणार्थं (१) यदुपदिष्टं (२) अग्निप्रथमयुगं (३) अग्निशरीर भी (=अग्नि) एषाविशेषरूपरुद्धि मासिक निमित्तसे भवति ।  
सूत्रम्—

युगार्थं आहारकस्य (१) युगप्रथमं ॥

(१) "कैवल्यके शेष मेव है । एक तिः सत्य स्वकार । दूसरा अग्निः सत्य स्वकार ४ वरा। तिनारस्य कैवल्य युगप्रथम मेवकार शेष प्रकार है । तिनमें आत्मनिर्दिष्ट निकलिकरि श्रावण याजन प्रमाण के त्रिके अतिनिष्ठा युग मेदि आत्मना में प्रथम करे सो युग वैजस है । अरु कौन एकके ताकति उपर में व्याकरणमाग प्रमाण पर अत एव प्रमत कथना काहलके (= विनायके) आहार निकलित श्रावण याजन प्रमाण समस्त जोय प्रकलित प्रमत्तकरि उक्त शरीरमें प्रथम करि मुक्ति रूप करे है सो मुक्ति वा मत्कत्ता मत होके है" ॥ यथा शुभं प्रथम तिः सत्य स्वकार जोय प्रकलित (२) प्रतीत्यार्थं युगते प्रमत्त कैवल्यके कथन से पहिले आहारकका कथन होगा काहिये परंतु लब्धिप्रत्ययकी अनुपुक्ति सेतेके शिष्य-द्विसप्तमि" प्रथम कथा शेष आहारक (२) हगारं पाठ सर्वथा एक है ॥ समाख्ये ० ॥

आत्मनिर्दिष्ट शेष मेव है । एक तिः सत्य स्वकार । दूसरा अग्निः सत्य स्वकार ४ वरा। तिनारस्य कैवल्य युगप्रथम मेवकार शेष प्रकार है । तिनमें आत्मनिर्दिष्ट निकलिकरि श्रावण याजन प्रमाण के त्रिके अतिनिष्ठा युग मेदि आत्मना में प्रथम करे सो युग वैजस है । अरु कौन एकके ताकति उपर में व्याकरणमाग प्रमाण पर अत एव प्रमत कथना काहलके (= विनायके) आहार निकलित श्रावण याजन प्रमाण समस्त जोय प्रकलित प्रमत्तकरि उक्त शरीरमें प्रथम करि मुक्ति रूप करे है सो मुक्ति वा मत्कत्ता मत होके है" ॥ यथा शुभं प्रथम तिः सत्य स्वकार जोय प्रकलित (२) प्रतीत्यार्थं युगते प्रमत्त कैवल्यके कथन से पहिले आहारकका कथन होगा काहिये परंतु लब्धिप्रत्ययकी अनुपुक्ति सेतेके शिष्य-द्विसप्तमि" प्रथम कथा शेष आहारक (२) हगारं पाठ सर्वथा एक है ॥ समाख्ये ० ॥







एतानिवासी गुरुप्रसाय पशोः ह्य परश्वद और विमरस्पर्ष सरित सवार्यसिद्धिका शब्दश' हिन्वी मनुष्याद अध्याय २ सूत्र ४६  
 शुभकारणत्वाच्छुभव्यपदेश । शुभकर्मण आहारककार्ययोगस्य कारणत्वाच्छुभमित्युच्यते ।  
 जन्मस्य प्राणव्यपदेशवत् ॥ विशुद्धकार्यत्वाद्द्विशुद्धव्यपदेश । विशुद्धस्य पुण्यस्य कर्मण अशा-  
 वलस्य निरवशस्य कार्यत्वाद्द्विशुद्धमित्युच्यते ।

य० विशुद्धम् ॥  
 अथाप्राप्ति ॥  
 मयसंपत्स्य मुनेः परंपपति T

इत्यनुवाद - शुभ-आणत्वात् ॥ शुभ-व्यपदेश ॥ शुभ-कर्मण आहारककार्ययोगस्य कारणत्वाच्छुभमित्युच्यते ।  
 शुभ-कर्मण ॥ आहारककार्ययोगस्य कारणत्वाच्छुभमित्युच्यते ।  
 शुभम् ॥ अथाप्राप्ति ॥  
 अमत्स्य ॥ माण-मप्यदशवत् ॥

विनाद आपत्वात् ॥ विनाद-अप्यदश ॥  
 विशुद्धस्य ॥ अत्रालस्य ॥ निरवशस्य ॥  
 पुण्यस्य ॥ अर्थम् ॥ कार्यत्वात् ॥ विशुद्धस्य ॥  
 अत्र मन्वाय मन्वायवियोग एव यं अहो आहारक शरीर के स्वामी का अरण्य किया है यहाँ 'आहारक के स्वामी' शब्द पूर्वके आहारक शब्द पर  
 मनुष्य है' एता यत्र पुत्र १ = ये लक्ष्णे है एत से मगद है कि इतिहासक समाज में मयत् संयमी और स्वामान संयमी दोनों गुण प्राप्त करनेवाले  
 मुनियेके आहारक शरीर होता है हमारे यहाँ केवल मयत् संयमी एक ही मरणात् ले वल्लय होता है ॥

एवमित्यासी जगत्प्रसाय पक्षेण कृत एवम्भूद् और विभक्त्यर्थं सतिष्ठ सत्त्वार्थसिद्धिना शब्दशक्तिं अनुवाद आशय २ सूत्र ४६  
तन्तूना कार्पासव्यपदेशवत् ॥ उभयतो व्याघाताभावोद्व्याघाति ॥ न ह्याहारकशरीरेणा-  
न्यस्य व्याघात । नाप्यन्येनाहारकस्थिति । तस्य प्रयोजनसमसुशयार्थं चशब्दःक्रियते ॥ तद्यथा  
कदाचिद्विधिविशेषसद्भावज्ञापनार्थं, कदाचित्सूक्ष्मपदार्थं, निर्धारणार्थं सत्यसपरिपालनार्थं च ।

धन्तूनाम् कार्पास-व्यपदेशवत्\*

—(कपासके) धागे वा शर्पाका कपास करनेके सत्यारे भावार्थ जैसे तंतु कपासके  
कार्य है और कपास कारण है तथापि उपचारसं कार्यको कारणमानकर तंतुओंको  
कपास करदिया जाता है और कार्पासा वृत्तिका तंतु कपासई ऐसा सत्त्वार्थं व्यवहार होताहै जैसेही  
आहारक शरीर भी विद्युत् निर्मल वा स्वच्छ(=अशुद्धसस्य)निर्दोष(=निरवयवस्य)पुन्यकर्मका कार्य है  
इसलिये यह आहारक शरीरभी उपचारसे विद्युत् करदिया गया है ॥

उभयन-० व्यापारत आभावात् अख्यापति ॥ ०-दोनों रीतिसं करनेके अभावसे (आहारक शरीर) अव्यापयति है

न-रि-० आहारक-शरीरके ॥ अन्यस्पर्शव्यापारः ॥ इति ०-क्योंकि (नरि) नहीं है आहारक शरीरसे दूसरेका स्पर्श

म-अपि-० अन्येन-आहारकस्य ॥ इति ०-और/न दूसरेकरि आहारक शरीरकामी (स्पर्शक वा प्रतिघात) होता है

तस्य ॥ प्रयोजन-समुदाय-अर्थः ॥ अशुद्धः क्रियते ॥ ०-मिस (आहारक)के प्रयोगनोके समुदायके लिये (समये) बकार व्यापयता है

तपसा-० कदाचित्-० लब्धि-विशेष-सद्भाव-ज्ञापन-०-जैसे कभी अदि(=दृष्टि) विशेषकी विद्यमानता (=सद्भाव) जाननेके

अर्थमें ॥ कदाचित्-० सूक्ष्म-पदार्थ-निर्धारण-अर्थम् ॥ ०-किये । कभी सूक्ष्म वस्तुके निर्लेप वा निमग्नकरनेके लिये

व-सपप-परिपालन-अर्थम् ॥ ०-और(=च) (कभी) समयकी रक्षाकेलिये अर्थात् किसी समय कोई विशेष लक्षि

प्राप्त होशाय उस समय उसकी सत्ता जाननेके लिये आहारक शरीर प्रयोजनीय

शर्त्तों/किसी समय सूक्ष्म-पदार्थके निर्धारणके लिये आहारक शरीरक प्रयोजन पड़ताहै, अतस्य दूर

करनेके लिये अथवा समयको बालनेके लियेभी उसका प्रयोजन है ॥ समयकी रक्षाके लिये आहारक

शरीर इस भाँति प्रयोजनीय होता है कि मिस समय परत और परावत जेअर्थ तीर्थकरोही

विषयानता न हा और प्रवत संयमी इतिका ऐसी तब विपपक यानो वाप कि मिसका समाधान

केबली वा धुपकेबलीके विना न होवके इसलिये महाविषय जेअर्थ तीर्थके बराकि केबली विपालन हो





एतानिवासी जगत्प्रसादाय षडौल्लङ्घयन् पदच्छेदं चौर विपयस्पर्शं सशितं सर्वार्थसिद्धिरुपिहा शब्दशालाद्विन्दी भद्रुबाध आध्याय २ सूत्र ५०  
 नारकसम्मूर्च्छितो नपु सकान्येवेति नियमः ॥ तत्र हि स्त्रीपु सविषयमनोज्ञाशब्दगन्धरूप  
 रसस्पर्शसन्वन्धनिमित्ता स्वल्पाऽपिसुखमात्रा नास्ति ॥ यद्येवमवधिच्यते, अर्थादापन्नमेत  
 दुक्ते श्योऽन्ये ससारिणस्त्रिलिङ्गा इति ॥ यत्रात्यन्तं नपु सकलिङ्गस्याभावस्तत्प्रतिपादनार्थमाह

दा मकारका है एक दशम मोहनीय दूसरा चारित्र्यमोहनीय । दर्शन मोहनीयके  
 मिथ्यात्व, सम्पूर्णमिथ्यात्व, सम्पूर्णकृतिमिथ्यात्व तीन भेद हैं और चारित्र्य  
 मोहनीयके भी रूपय भेदनीय और जो रूपायवेदनीय दो भेद हैं । नोकृपाय  
 भेदनीयक हास्य रति चरति शोक भय कुण्ठा सखीवेद पुषेव और नपुंसक  
 भेद ये नौभेद हैं उन में नपुंसक वेद और अशुभनामा नायकर्म ( इन दोनों )  
 के उदय से जो वीच न लीं हों और नपुंसक हों वे नपुंसक होते हैं  
 नारक-सम्मूर्च्छितः नपुंसकानि ॥ एवमिति ० नियमः ॥ = नारकजीव और सम्पूर्णजन कीष नपुंसकही हैं ऐसा नियम ( स्वरूप ज्ञयन ) है  
 तत्र ० ( इ ० स्त्री-पुंसविषय-  
 यनाश-शुद्ध-ना ० रूप-  
 रम-सर्व-सम्बन्ध-  
 निमित्ताऽस्वयं ० मरि ० मृतपाशा ॥ न ० अस्ति ०  
 यदि ० परम ० मरिषियत ०  
 मयातु ० मापमम् ॥ १ ॥ पृष्ठद्व ॥

( नरकशये स्वमिप्रायका सयभनवाक ज्ञानसे ) पर लिङ्गका है कि  
 ० कहेहुय ( नारक और सम्पूर्णजन कीषों ) जिसे मरुशेष वा यथेदुये ( सम्बन्ध )  
 ० संसारीकीष होन लिंगपाक है । जहाँ ( मिसजन्ममें ) वास्तव्य वा अविशुभ  
 ० नपुंसकलिंगका अस्तित्व नहीं है । जिस ( वास्तव्य भपुंसक लिंगके अभावके )  
 ० सपर्यन्तक विषय वा स्पष्टीकरणके लिये ( चरित्रय धरणी ) कहते हैं कि

रुकेभ्या इत्यन्य ॥  
 मंसारिणः ॥ त्रि-लिङ्गाऽपुति ० ॥ १ ॥ ० मरुत्तन ॥ ॥  
 नपुंसकलिङ्गप ॥ अयमवः ॥ १ ॥ मरु-  
 मंनिपादन-अयम् ॥ १ ॥ अार ०

॥ न देवाः ॥ ५१ ॥  
 ॥ शेषास्त्रिवेदाः ॥ ५२ ॥

सूत्रम्— न देवा ॥ ५१ ॥  
 यथा— न देवाः ॥ नृसकानि ॥ यन्ति ।  
 इत्यनुवादः— सौख्यं ॥ योऽस्मि ॥ च पत् निराश्रयार्थं ॥ सुखम् ॥  
 सुर(शुभ) ॥ गतिनाम-वदय-अपेक्षम् ॥  
 वदः ॥ देवाः ॥ अनुपपन्ति । इति ॥ वेद्यः  
 नृसकस्त्रिवेदाः ॥ नृसकानि ॥  
 यथा— इत्येव ॥ इति ॥ यथा ॥  
 सूत्रम्— शेषास्त्रिवेदा ॥ ५२ ॥  
 यथा— यथाः ॥ जीवाः ॥

न देवा ( नृपु सकानि भवन्ति ) ॥ ५१ ॥  
 = (यवनवासी, अन्धकार, अयोचित्य, और कल्याणवासी) देव नृपुसक किंगी नहीं होते हैं  
 अर्थात् सब प्रकारके देवोंमें सौख्य और पुरुषवेद केवल दोही वेद होते हैं  
 = नृ (पत्नी) वा अन्धकार) सुखगति नामक (नामकर्मकी सकृद्विधि) उदयकी विवक्षासे है  
 = विस (सुख) वा देव योगते है वा अनुभव करते हैं । उन ( देवों ) में  
 = नृपु सकस्त्रिवेदा नहीं है (केवल सौख्य और पुरुषवेद दोही वेद होते हैं)  
 = यथा अन्धकार, सम्मुख्य, देवोंके अतिरिक्त) कृतने सिद्धवाले ईशसखिये करते हैं कि  
 = शेषा जीवा त्रिवेदा भवन्ति ॥ ५२ ॥  
 = यथापुत्रे जीव (अर्थात् नारक, सम्मुख्यन और पारों प्रकारके देवोंके अतिरिक्त  
 ये कर्मयुक्तिके गर्भय मनुष्य, गर्भय तिर्यच ते स्त्री पुरुष-नृपुसक)

(१) यान्ते अत्रापामे इत सूत्रका पाठ और अर्थ एक है ( २ ) तत्त्वार्थरत्नकोशमें तथा इस लिखित सवाधसिद्धिमें 'दुःखमतिमामोदयापेक्ष' इत्यादि पाठ है सुदं उपय नहीं है पं० पद्मनाभ पूर्णियाजीने 'दुःखमति' का उदयकी है अपेक्षा आर्षिर्' इत्यादि अनुपाव किया है इयंति दुःखमति और दुःखमाम कर्म दोके उदय की अपेक्षा सामोर्ति' सुदं उपय होनेसे हमने केवल सुखगति जो शुभ होती है उसके उदयकी अपेक्षा मानी है सुदित इतिवैयर्थ्य उदयकारणमें 'गति नामोदयपक्ष' पाठ है ( ३ ) कियत् प्रथमायामिति पुत्रिग एक वचन है कियती प्रथमा एक वचन स्त्रीसिंग है और कियत् प्रथमा एक वचन नृपुसक त्रिवेदा है यहाँ पर अनुपपन्न में प्रयोग है अर्थात् ' कियति' चिन्तयति' चिन्तये चिन्तयाम है इत्यतिवैयर्थ्यको समाप्त नारकक अनुपपन्न किया है ( ४ ) देवताश्चर' अत्रापामे समायामे पक्ष सूत्र नहीं है ॥ माय्यकारण भाषा न इस सूत्रका अर्थय है निया है ' योगिनियेषा परस्मैपुं० सप्तसुक्ती कृत सूत्रमारा में अनुपय है ॥



एवमिषाती मारुतस्यैव बर्हिलकृत्वा पदच्छेद और विषयत्पर्यं सरित् सर्गपर्यसद्विद्विषया शब्दशः सिन्धी अनुवाद अप्याय २ सूत्र ५२  
 त्रयो वेदा येयां ते त्रिवेदा ॥ के पुनस्ते वेदा । स्त्रीत्व, पु स्व्यनपु सकत्वमिति ॥ कथतेषा सिद्धि ।  
 वेद्यत इति वेद । लिङ्गमित्यर्थ ॥ तद् द्विविधं द्रव्यलिङ्ग भावलिङ्गवेति ॥ द्रव्यलिङ्ग  
 योनिमेहनादिनामकर्मोदयनिर्वर्तितम् ॥ नोकपायोदयापादितवृत्ति भावलिङ्गम् ॥ स्त्रीवेदोद-  
 यत् स्थायत्यस्या गर्भ इति स्त्री । पु वेदोदयात् सूते

त्रि-वेदाः १। परन्ति १

स्त्रीनो लिङ्गवाले वा स्त्रीनो लिङ्गवान् इति १

(परन्तु योगमृमिके जपने मनुष्य और तिर्यचोके और मलेच्छलहके

स्त्रीपुरुषोके पुरुषलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग ये दा चेदरी होते हैं । देसा अर्थमपकाशिकासूत्र १ )  
 इत्यनुवादः-अपु वेदाः १। येयापुः १। वेदुः त्रिवेदाः १। स्त्रीनो लिङ्ग वा वेद भिनके वे विवेदोः १। यद त्रिवेदापवकाविग्रह वा समासकर्मप्रकाशोतकयाप्ये १।

१। पुनः-अपु वेदाः १। स्त्रीत्वम् १। पु स्व्यनपु १।

नपु सकत्वम् १। मृति १। कपय १। वेदापुः सिद्धिः १।

परन्ते १ इति १।

लिङ्गम् १। मृति १। मपुः १। पदुः १। द्विविधम् १।

द्रव्यलिङ्ग १। भावलिङ्ग १। मृति १। द्रव्यलिङ्गम् १।

यानि-

वेत्त-मादि-नामकर्म-उदय-निर्वर्तितम् १।

नाकपाय उदय भापादित-

इति १। भावलिङ्गम् १।

स्त्रीत्व उदयात् स्थायत्यति १। पस्यापुः १। गर्भ १।

इति १। पु वेद उदयात् १।

पु वेदोदयात् सूते १।

स्त्रीनो लिङ्गवाले वा स्त्रीनो लिङ्गवान् इति १।

(परन्तु योगमृमिके जपने मनुष्य और तिर्यचोके और मलेच्छलहके

स्त्रीपुरुषोके पुरुषलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग ये दा चेदरी होते हैं । देसा अर्थमपकाशिकासूत्र १ )

=पुनि वे लिङ्ग कोन है, स्त्रीपुन अर्थात् स्त्रीलिङ्ग, पुरुषपुन अर्थात् पुरुषलिङ्ग

=ना "वेदिये" ऐसा वेद है अथवा "नो मनुष्यप्रक्रियामार्ग" (व्यपत्ते) ऐसा वेद है

=लिङ्ग ऐसा अर्थ वा अभिप्राय है । जो लिङ्ग जो प्रकार है

=द्रव्यलिङ्ग और (=भ) भावलिङ्ग ऐसा है । द्रव्यलिङ्ग यह है

=नो (तिर्यचनी वा स्त्रीक) मग और

= (मनुष्य वा तिर्यचक) लिङ्ग (=वेदन) आदि (शरीरके आकार) नामकर्मके उदयसे निष्पादित वा

अर्थात् नामकर्मके उदयसे गोति, लिङ्ग रज, शीर्ष, आदिका रचना द्रव्यलिङ्ग है

= (स्त्रीवेद-पुरुषवेद-नपुसकवेद) नो कपाय (चापिष मोहनीयकर्म)के उदयसे मातृहृआ (=भापादित)

=भात्याक अंतःकरण परिणामकी मृशति (=वृत्ति) से भावलिङ्ग है अर्थात्

नोकपाय कर्मके उदयसे स्त्री आदि लिङ्गोके अनुदय इच्छाका होना से भावलिङ्ग है

= स्त्रीवेदक उदयसे इच्छाशोता है विषया है वा उदरता है (=स्स्यायति) गर्भ भित्तसे

= येती भी है । पुरुषपत्यक उदयसे उदरत्व (=सूते )

[रचित है

पदानिवासी आरूपसहाय यकोक्त कृ प एरुकेद और विपयत्यसहित सर्वाथसिद्धिका शब्दयः इन्दी अनुवाद अध्यापर सूत्र ५२  
 जनयत्यपत्यमिति पुमान् । नपु सकवेदोदयान्तदुभयशक्तिविकल नपु सकम् ॥ रुडिशब्दाश्चैते ।  
 रुडिपु च क्रिया व्युत्पत्यर्थेव । यथा गच्छतीति गौरिति ॥ इतरथा हि गर्भधारणादिक्रियाप्रधान्ये,  
 बालवृद्धाना तिर्यञ्चानुव्याणा देवानां कार्मणकाययोगस्थानां च

ननयति । अपत्यम् ॥ गति ० पुमान् १ । नपुसक = सत्वानको (=अपत्यम्) उत्पन्न करता है (=जनयति) ऐसा रूप है । नपुसक  
 पर उदयात् १ । वृ - उभय-  
 याकि-विकस्यम् ॥ नपुसकम् ॥ रुडि शब्दाः १ । अपत्यम् ॥ यकितसे रहित, वा शक्तिसे विहीन नपुसक है और ये (स्त्री-पुरु-नपुसक) रुडि शब्द  
 १) रुडिपु च ० क्रिया ॥ व्युत्पत्ति - भर्त्य - एव ०  
 यथा ० गच्छति । इति ० गौरी ॥ इति ०  
 =वैके उदयसे जो दोनों ( उदरमें गणकीस्मिति और संवात उत्पन्न करनेकी )  
 =और (=च) रुडि (शब्दों)में क्रिया (भर्त्यो व धातुका भव) है तो तिर्यक्तिपात्र (-एव)के खिये है  
 =जैसे गमन करती है ऐसी गाय है भर्त्यो यदि गो शब्दकी निरुक्ति पूर्णतासे प्राणकी भावे  
 को गाय (पशु)भिससमय पहले फिर उत्सकास ही गो कहना चाहिये और यही (पशु) भिस  
 काल सोठा हा लडाहो, खेवाहा, बैवाहो, उस समय बुल्यकिते अनुसार गो नहीं कहना  
 चाहिये परन्तु ऐसा शोक व्यवहारमें नहीं होता सर्वत्रालमें रुडि वा प्रसिद्धके कथसे उस  
 पशुका गो कहते हैं अतः क्रियाका भव शब्दोंमें केवल व्युत्पत्ति पात्र ही है ॥  
 =योंकि अन्यथा अर्थात् यदि नामोंमें रुडिकी प्रयानवा न यानी भावे सो  
 (भर्त्यो यही वातमाने कि अथ गर्भधारणकी क्रियाको (=आदि) उत्पन्नमानने  
 रसोई बनाने इत्यादि क्रियामें ही नहीं है और अथ संवात उत्पानकी सामर्थ्य है  
 वरहीपुत् वेदी है अन्य अवस्थाओंमें वा अन्यक्रिया जैसे व्योपार इत्यादिकमें पुरुषवेदी नहीहोती  
 =कार्मणकाययोगमें स्थिति जीवोंके अर्थात् विप्ररागतिमें विद्यमान जीवोंके

इतरथा ० इति  
 गर्भधारण आदि-क्रिया-अर्थान्ये ० ॥

वातवृद्धानाम् ॥ तिर्यञ्चानुव्याणाम् देवानाम् ॥ एव ० = बाल-वृद्ध तिर्यकोंके और बालवृद्ध मनुष्योंके जैसे व्योपार इत्यादिकमें पुरुषवेदी नहीहोती  
 कार्मणकाययोगस्थानाम् ॥

- (१) रुडि शब्द जोकि गि है परंतु यहाँ पर शब्दों ऐसा इसके भागे किना हुआ है ३ अथ है रुडि शब्दों में रुडि
- (२) तिर्यञ्चानुव्याणों स्थानों वे शब्द हमारी समझमें यहाँ पर उपलब्धकरणमें प्रयोग किये गये





एतानिवासी वागुपसहाय बनील कृप पदच्छद और विमरस्यर्पं सखि सवापसिद्धिद्विषिका शब्दश' हिन्दी अनुवाद अर्थाय २ सूत्र ५२  
तद्भावात्स्त्रीत्वादिब्यपदेशो न स्यात्

तद् भावात् १। = इस (गर्भपारण और सत्वान उपपादन क्रिया) क अभावसे वा सामर्थ्य न होनेसे  
स्त्रीत् आदि-व्यपदेशः १। = स्त्रीपणा और पुंसपणाका नाम वा रूपन (स्त्री-पुंसकी व्युत्पत्ति पृष्ठ १२२, १२३ में देखो)  
नञ् स्यात् १  
जनपति अल्पम् इति पुमात् = उदरमें संतानको उपजावै सो पुमात् है (पुंस् का प्रथमा विभक्ति एकवचन  
ग्रन्थिग पुमात् है ( =पुरुष, यजुष्य) उक्त अर्थ केवल व्युत्पत्तिके लिये है प्रपानतासे नहीं है, यदि उर्  
हुरुपतासे याना जायगा तो जिस समय गर्भपारण क्रिया और संतान-उत्पादन क्रिया आदि होगी उसी  
समय स्त्री पुंस् आदि जनको फल सफ़ते है किन्तु शालक, शालिकायें, हृदयपुरुष, हृदय विर्यन, हृदय विर्यवन्ती,  
विर्यच विर्यनियोंके बच्चे और देवी देवताओंको और विश्वराशिमें विद्यमान जीवोंको जिनमें कि गर्भपारण  
समय उत्पादन आदिकी सामर्थ्य नहीं स्त्रीवेदी वा पुरुषवेदी आदि नहीं करसकते इसलिये स्त्री, पुरुष,  
गौमादिक शब्द रहते हैं '१ यौगिक(=व्युत्पन्न व्युत्पत्तिमयि सामासिक) शब्द नहीं हैं ॥ और इन तीनों  
स्त्री पुरुष और नपुंसक वेदोंमें स्त्रीवेदको अगर समान माना है । पुल्लेखको पुंसकी अग्नि सरया माना है और

एतान् वासेडा डाम जितसे हा । जैसे 'श्रीशंसे वही लवाया जाय' यहाँ कौका पद रूपने और रूपने से निर कुण्डे सिद्धी आदिका भी योषक है ४  
'श्रीमो स यहाँ लवाया जाये' इसका यह सारण है कि वही की रका केवल कौमों से ही न कीजाय परन्तु जितने भी कुण्डे-विद्धी-बन्ध और शर  
अप जो दही का निना किसी स्थावके नाजाय सय से उसके लवाया जाय ४ इसी प्रकार उक्त वाक्य में विषय विषयवन्ती उनके बच्चे मजुष्य,  
मजुष्यणी इनके बच्चे देवी देवी देव इत्यादि और अन्य जितने शब्द व्युत्पत्ति को ध्यानमें न रखकर कृति में वाले सातों हैं और उक्त सूत्र से सर्वप्रिय  
है तब आकते हैं ४ अथवापुत्राय जीम 'कृति शशापवैते' से 'व्यपदेशा न शपात्' उक्त की ( इस अनुवाय के देवो पृष्ठ १२३, २४४) लक्षिका  
में मजुष्य और तिवय और देव शशापका प्यान में न रखाकर उनकी लियों पर वाप्यो को देस सर्वप्र क्रिया है कि स्त्री पुण्य मनुष्यक 'मिक्की  
संज्ञा है वा कृति शपात् रूप है । कृति शपात् की व्युत्पत्ति कृदिये है सो लिय व्युत्पत्तिमान मपोकनके अर्थ ही है । जैसे गज शपात् की निकी  
कृदिये आ जाने शान्द गज कहिये । सो यहाँ निकी कृदिये ही माननी सातों केडा सोबता गऊका भी गऊकी कहिये । ऐसे कृति आकती । जो वेसे  
न मानिये तो गज पाल्य क्रिया ही प्रपान मानिये तो बाड उरी तथा हृदयस्त्री शिरकारी मजुष्यणी तथा देवताका तथा कर्मव्य काययोग लिये  
अनपारणमें निठनी ज्योमिके गर्भ पारण कारी तब की पारणका नाम न उदर । तथा पुनादिक उपजाये जिन इतिका पुन्य पारणका नाम न उदर ।  
सातों उहाँ नाम लिये कही ही प्रपान है ४ लक्षिका पृष्ठ २४४ ( १ ) यौगिक-वात और प्रत्यय से प्रपान उरुके योष्य कर्तव्ये काकाले द्वारा शपात्  
अर्थों आ ५ वा अर्थक शब्दों न मिलकर बना ही जैसे सिवालय नीकपारी उरुकापी इयासागर उरुकै तदिय कल्पन काकाल नीम शेष है

एतानिवासी अगुरुसहाय बर्कल कृत पञ्चद और विमलम्ब सहित स ... शास्त्रावधारणा शब्दा शिवी अनुवाद अध्याय २ सूत्र ५२

त एते त्रयो वेदा शेषाणा गर्भजाना भवन्ति ॥ य इमे जन्मयोनिशरीरलिङ्गसम्बन्धाहित-  
विशेषा प्राणिनो निर्दिश्यन्ते देवादयो विचित्रधर्माधर्मशैकृताश्रयतसूयु गतिषु शरीराणि  
धारयन्तस्ते किं यथाकालमुपभुक्तायुषो मूर्त्यन्तराण्यास्कन्दन्ति, उतायथाकालमपीत्यत आह-

न्युंसक वेदका ईदकी अन्तिके अर्थात् अवेकी अन्तिक समान मानाई साराय पठैकि पुरुषकी कामानि पूंसकी  
अन्तिके समान अस्ती शान्त होमाती है । अगारकी अग्नि गुप्त और कुछ उरनेवाली होती है । इसलिये  
श्रीकी कामानि कुछ कालतक उरनेवाली होती है । जहाँ पर ईद पकाई जाती है उस पड़ेकी आग बहुत  
काखतक रहती है और सर्वदा पपकती रहती है इसलिये न्युंसककी कामानि अधिक कालतक रहती है ।

तेऽपदेऽवपः वेदाः शेषाणाम् गर्भजानाम् ।  
भवन्ति येऽग्नेः जन्म-योनि-शरीर-लिङ्ग-सम्बन्ध-भावे ॥ जो ये तीन ( श्री-पुरुष-न्युंसक) लिङ्ग अवशेष ने गर्भने जनके  
आहित-विशेषाः प्राणिनः । देव-आदयाः ।  
निर्दिश्यन्ते । विचित्र-धर्म-अधर्म-शैकृताः ।  
चतसृषुः गतिषु शरीराणि ॥ धारयन्तः ।  
तेऽस्मिन् । उपपुंसक-आयुषः प्रयायाकालम् ॥  
मूर्त्यन्तराणि ॥ आरूढन्ति ।  
=अरण्यदिने हैं (=आहित)मेद मयेद (=विशेष) भिन्नमें ऐसे प्राणी देवादिक  
=दिल्याये गये हैं या उबल्लेस क्रिये गये हैं ते नानामकारके पुन्य और पापोंके वशीमूल  
=प्राय वे पूर्ण मुख्यमान आयुवाले होते हैं और वीक समयपर (=यथाकालम्)  
=अन्य वा दूसरे शरीरोंको धारणकरते हैं अथवा अरण्यकरते हैं अर्थात् वे देव, यदुष्य,  
विर्यच नारकी, आदि भिन्नानों धारणकरते हैं अथवा अरण्यकरते हैं अर्थात् वे देव, यदुष्य,  
वर्तमान शरीरको छोड़कर मृत्युपानेपर दूसरे शरीरोंको धारण करते हैं  
=या विना आयु पूर्णक्रिये भी ( अन्त्य शरीरोंको धारण करते हैं ) इसलिये कहते हैं कि  
=अन्य वा दूसरे शरीरोंको धारण करते हैं और वीक समयपर (=यथाकालम्)  
विर्यच नारकी, आदि भिन्नानों धारणकरते हैं अथवा अरण्यकरते हैं अर्थात् वे देव, यदुष्य,  
वर्तमान शरीरको छोड़कर मृत्युपानेपर दूसरे शरीरोंको धारण करते हैं  
=या विना आयु पूर्णक्रिये भी ( अन्त्य शरीरोंको धारण करते हैं ) इसलिये कहते हैं कि

उपपुंसकानाम् अयुषः कालम् । इति अत्र आह ।  
(१) अत्र त्वे कि प्रपुंसकं सत्र का अर्थ कठिन है बड़े ही परिश्रम और सम्बन्ध से लिखा गया है उस को बहुत ध्यान पूर्वक पठकों को पढ़ना -  
चाहिये नहीं तो कुछ हल्किपत परिलक्ष्य म होगा । कोई पाठक यदि इसपर किञ्चिदप्य कहते तो वे मुझको छपया सुकियेकई ।

उपपुंसकानाम् अयुषः कालम् । इति अत्र आह ।  
(१) अत्र त्वे कि प्रपुंसकं सत्र का अर्थ कठिन है बड़े ही परिश्रम और सम्बन्ध से लिखा गया है उस को बहुत ध्यान पूर्वक पठकों को पढ़ना -  
चाहिये नहीं तो कुछ हल्किपत परिलक्ष्य म होगा । कोई पाठक यदि इसपर किञ्चिदप्य कहते तो वे मुझको छपया सुकियेकई ।









सर्वाथ  
आध्याय  
१२७

एगतिवासी नगररूपसाहाय वकीलकृत पदच्छद मॉर विमर्शस्यर्षी सहित सर्वाथसिद्धिरुचिका शुद्धशा शिन्दी मनुवाद अख्या, १२४ ५२

वृषाथः-औपपादिक-  
परम-उपमः १-वृषाथः-  
असंस्पृश-वर्ष-आयुषः-  
अन्-आयुषः-  
विप, शत, फटक, अग्नि, जल, सर्प, असीर्ण योगिन, इजपात, गृही, हिसक जीष और पञ्चादिक अभियात आदिसे  
तथा द्रुदस (= उपद्रवसे) आरम्भयोगेनाथे छुट विपासा और शीलोच्छसे यी न्यून नहीं होती है अछात्र  
रस्यु इनकी नहीं होती है ॥  
= उपपाद संज्ञक जन्ममें उत्पन्न होनवाले अर्थात् समस्त देव और समस्त नारकी  
= अन्विय शरीर नाले, उत्तीमपसे मोक्ष जानेवाले (जिस देहसे सिद्ध होते हैं वह वराम देह वा शरीर इत्यादि)

द्वितीयपाद - औपपादिक ( इत्यादि )  
परमदेशः ( इत्यादि )  
= उपपाद संज्ञक जन्ममें उत्पन्न होनवाले अर्थात् समस्त देव और समस्त नारकी  
= अन्विय शरीर नाले, उत्तीमपसे मोक्ष जानेवाले (जिस देहसे सिद्ध होते हैं वह वराम देह वा शरीर इत्यादि)

समाप्तावस्थायां विगमयुक्तं अनुकूलनं येषी प्रत्ययव्यय आयुष्याले होते हैं इसमें लेश्वलही कि एसी भाष्यमें औपपादिक, वरामदेह अर्थात् अन्विय  
शरीरवाह उत्तमगुण और अस्वच्छोपपन्न आयुष्याले ये वापे अन्वियवर्त्य (अपवर्तन न करने योग्य) आयुष्याले होते हैं ॥ येना उत्पन्न है परंतु इस  
पात्र्यने नीचे उपयुक्तभाष्य दिया है उससे इसका निषेध होता है क्योंकि जो पश्चात् कदा अथा है वही ठीक समझा जाता है और यह भी है  
कि दुर्गमोपपन्नार्थी और अल्प अक्षय्य कथ्यति और वास्तव्य अस्मि अक्षय्यकी तीनोंकी आयु अपवर्त्यकोकर अर्थात् पटकर व्युत्थकोकर अक्षय्य  
शुल्यु इरं यी और ये तीनों उत्तमगुण ये ॥  
( १ ) इस अती लिगयुक्तं कि उत्तम शब्द धनमें लानेसे यही अर्थ होता है जो न लानेसे इसलिये 'उत्तम' शब्दकी धनमें आक्षय्यकता नहीं है  
इस 'उत्तम' शब्दके कारण आपकाकारोंको अनुपपन्नको तथा टीकाकारोंको वृत्तकृष्ण अपने अपने मान्य टीका और मनुपाद्योंमें इस 'उत्तम' शब्दके  
सबधमें लिपना पड़ा है । प्रथम इतने कि इन उत्पन्न अपने स्वयंविचार तथा शाब्दानुकूल कृष्ण उत्पन्न कर इत्यादिको लिखते कि किन किन  
मनुपाद्यों न इसको किन किन शाब्दाका विग्रहण और विग्रह्यमाना है ॥  
( २ ) वराम अर्थम विग्रहण है वेद अर्थ विग्रह्य है ( क ) में उत्तम शब्द विग्रहण है अर्थात् अर्थ विग्रहण है ( ग ) में वराम शब्द विग्रहण है अर्थम  
शब्द विग्रह्य है ( घ ) में उत्तम शब्द विग्रहण है अर्थम शब्द विग्रह्य है ॥







पदा/निवासी अणुकाशय बन्धि कृत् पदभेद और विपरत्ययनरित सर्षापिसिद्धिविका शब्दशः शिवा अणुवाद् अथापर सूत्र ५३

प्रथम एतदे कि इस एव वाक्यर विचार करे कि सूत्रका अर्थाय पाठ क्या है विद्युत्वं यं सूत्रव्याख्येने इत्युत्तरका अर्थ अपने उचित 'धर्मा समाधान मे विद्याउत्तर पुत्र समाहोचका कर्मप्रशस्ना उत्रका ह्यर इत्युत्तर है कि औपचारिक चरमोक्तमेवहा अस्त्येव्यवयुगुण्डनपपयव्युगुण्डन काय-एत अन्वयव्युगुणा यथानि । एतन् अन्वयव्युगुण्डनान् आत्मना । जिनकी आपुका अणुकाय कहिये केरकार न होय समय समयसी पूरी हार । फिर शब्दादि के योग करि उपज्जावी पूरी न होय ते अन्वयव्युगुणाते जानता । ते कोन है? औपचारिक चरमोक्तमेवहा अस्त्येव्यवयुगुणाते तीर्थकर कहिये वेच आरुषी चरमोक्तमेव कहिये तीर्थकर अस्त्येव्यवयुगुणा कहिये मोग सूत्रिके तथा कुमांगमूमिके बीया भावाय चरमोक्तमेवहावे तीर्थकर कहिये यह आरुषी चरमोक्तमेव कहिये तीर्थकर अस्त्येव्यवयुगुणा मुक्त ह्ये । उपज्जावेहवाले सुमोचकी तथा यक्षराचकीकी अन्नाल स्युयु ह्ये । अरुत्कारके यति कह कि चरमोक्तमेवहायुगुणा पाठवाचिक उपलोकन मुक्त ह्ये । चरमोक्तमेवहाले सुमोचकी तथा यक्षराचकीकी अन्नाल स्युयु ह्ये । अरुत्कारके पावसं पुत्रशुभो की अणुकाय ह्ये । इत्यादि सरुत्त चकी अणुवकीतिके मी अन्वयव्युगुणा नियम नाहीं यह कह्यन म्याय कुमुनु अन्वोचय नाम शाकाई तथा राज्यादिहाकार शाक है तहाँ कथा है । यात् अन्वोचयमेव तीर्थकरकी ही है । इस सूत्रविये यह सिद्धान्त हुआ - वेच गारकी तीर्थकर तथा मोगमूमिके तीन एतत् पिय शब्दाधिक याग से आत्त कहने पाकर अणुकी उरीखा न होय । इन विना कर्ममूमिके मनुष्य विपचानियि मोगमूमिके तीन एतत् पिय शब्दाधिक याग से आत्त कहने पाकर अणुकी अतिक्रिा क्सेत्रे निमित्तकारसे होय आय" । राजधानिकरने हार । जैसे प्रतीय वहन मय होय एतन्ने ओमास पुत्र आय तेसे पूर्ण आपुकी अतिक्रिा क्सेत्रे निमित्तकारसे होय आय" । राजधानिकरने अन्वयव्युगुणा से तीर्थकर लिखे गय है यह ज्ञेय ह्यको नहीं निम्ना है ।

उपज्जावेहवाले अणुकाय अस्त्येव्यवयुगुणा मुक्त ह्ये । उपज्जावेहवाले सुमोचकी तथा यक्षराचकीकी अन्नाल स्युयु ह्ये । अरुत्कारके यति कह कि चरमोक्तमेवहायुगुणा पाठवाचिक उपलोकन मुक्त ह्ये । चरमोक्तमेवहाले सुमोचकी तथा यक्षराचकीकी अन्नाल स्युयु ह्ये । अरुत्कारके पावसं पुत्रशुभो की अणुकाय ह्ये । इत्यादि सरुत्त चकी अणुवकीतिके मी अन्वयव्युगुणा नियम नाहीं यह कह्यन म्याय कुमुनु अन्वोचय नाम शाकाई तथा मोगमूमिके तीन एतत् पिय शब्दाधिक याग से आत्त कहने पाकर अणुकी उरीखा न होय । इन विना कर्ममूमिके मनुष्य विपचानियि मोगमूमिके तीन एतत् पिय शब्दाधिक याग से आत्त कहने पाकर अणुकी अतिक्रिा क्सेत्रे निमित्तकारसे होय आय" । राजधानिकरने हार । जैसे प्रतीय वहन मय होय एतन्ने ओमास पुत्र आय तेसे पूर्ण आपुकी अतिक्रिा क्सेत्रे निमित्तकारसे होय आय" । राजधानिकरने अन्वयव्युगुणा से तीर्थकर लिखे गय है यह ज्ञेय ह्यको नहीं निम्ना है ।

उपज्जावेहवाले अणुकाय अस्त्येव्यवयुगुणा मुक्त ह्ये । उपज्जावेहवाले सुमोचकी तथा यक्षराचकीकी अन्नाल स्युयु ह्ये । अरुत्कारके यति कह कि चरमोक्तमेवहायुगुणा पाठवाचिक उपलोकन मुक्त ह्ये । चरमोक्तमेवहाले सुमोचकी तथा यक्षराचकीकी अन्नाल स्युयु ह्ये । अरुत्कारके पावसं पुत्रशुभो की अणुकाय ह्ये । इत्यादि सरुत्त चकी अणुवकीतिके मी अन्वयव्युगुणा नियम नाहीं यह कह्यन म्याय कुमुनु अन्वोचय नाम शाकाई तथा मोगमूमिके तीन एतत् पिय शब्दाधिक याग से आत्त कहने पाकर अणुकी उरीखा न होय । इन विना कर्ममूमिके मनुष्य विपचानियि मोगमूमिके तीन एतत् पिय शब्दाधिक याग से आत्त कहने पाकर अणुकी अतिक्रिा क्सेत्रे निमित्तकारसे होय आय" । राजधानिकरने हार । जैसे प्रतीय वहन मय होय एतन्ने ओमास पुत्र आय तेसे पूर्ण आपुकी अतिक्रिा क्सेत्रे निमित्तकारसे होय आय" । राजधानिकरने अन्वयव्युगुणा से तीर्थकर लिखे गय है यह ज्ञेय ह्यको नहीं निम्ना है ।

सर्वार्थ  
अथापर  
१२८



(क) 'चरम उरामो वेदो वेदां ते चरमोरामवेदां'  
 सर्वार्थसिद्धिपूजा १६३ अर्थात्सर्वसोक्तान्तिक पृष्ठ ३५३  
 तत्पार्थरात्रवार्तिकम् पृष्ठ १११ वार्तिक ७

(घ) चरमस्य वेत्येतेकच्छेदप्रकारानुसंग-  
 प्रवृत्त गार्गात्प्रतिशेपोऽस्ति ॥ सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ १६३  
 तस्य (= चरमस्य-वेत्यस्य) उरामत्पार्थिवार्थकत्वात्  
 (उरामप्रत्यय) रत्प्रवार्तिकम्पृष्ठ १११ वार्तिक ६ हेतो

उराममण्डल चरमस्य-स्युरामत्व-स्युदावात्म्य  
 (तत्पार्थसाम्बन्धवार्तिकम् पृष्ठ ३४५)

(ग) चरमविद्युत्कुरमस्यस्यचरमस्य निवृत्तपथ  
 चरमविद्युत्कुरम्-उरामस्य प्रथमस्य-निवृत्ति-  
 भ्रम् । तत्पार्थ सोऽर्थादिभ्यम् पृष्ठ ३५३

(घ) अन्त्यस्य चरमस्यस्युदावात्म्य  
 (तत्पार्थसाम्बन्धवार्तिकम् पृष्ठ ३४५)

(च) अन्त्यस्य चरमस्यस्युदावात्म्य  
 (तत्पार्थसाम्बन्धवार्तिकम् पृष्ठ ३४५)

(ज) अन्त्यस्य चरमस्यस्युदावात्म्य  
 (तत्पार्थसाम्बन्धवार्तिकम् पृष्ठ ३४५)

(झ) अन्त्यस्य चरमस्यस्युदावात्म्य  
 (तत्पार्थसाम्बन्धवार्तिकम् पृष्ठ ३४५)

(ञ) अन्त्यस्य चरमस्यस्युदावात्म्य  
 (तत्पार्थसाम्बन्धवार्तिकम् पृष्ठ ३४५)

(ट) अन्त्यस्य चरमस्यस्युदावात्म्य  
 (तत्पार्थसाम्बन्धवार्तिकम् पृष्ठ ३४५)

(ठ) अन्त्यस्य चरमस्यस्युदावात्म्य  
 (तत्पार्थसाम्बन्धवार्तिकम् पृष्ठ ३४५)

(ड) अन्त्यस्य चरमस्यस्युदावात्म्य  
 (तत्पार्थसाम्बन्धवार्तिकम् पृष्ठ ३४५)

(ण) अन्त्यस्य चरमस्यस्युदावात्म्य  
 (तत्पार्थसाम्बन्धवार्तिकम् पृष्ठ ३४५)

(त) अन्त्यस्य चरमस्यस्युदावात्म्य  
 (तत्पार्थसाम्बन्धवार्तिकम् पृष्ठ ३४५)

(थ) अन्त्यस्य चरमस्यस्युदावात्म्य  
 (तत्पार्थसाम्बन्धवार्तिकम् पृष्ठ ३४५)

'येसा चरम उराम वेद जित्के होय ते चरमोराम वेद कहिये'  
 चरमोराम है अतीर जिनका ये चरमोराम वेद वाले हैं । ( चरमोराम वेद वेदके विद्युत्कृप  
 अन्तेसा उराम शब्द वेद का विद्युत्कृप नहीं है क्योंकि यदि उराम शरीर वाले अन्तपत्थ  
 भाष्यकारो होते तो प्रकृत्या चरमवर्ति और वाच्येय अर्थवचनीकी अन्तकाल शुरुय न होनी  
 'इहां अन्त्यवेदका उराम विद्युत्कृप ही सो उच्छेदप्रकारने अर्थि है अन्य अर्थ नाही है' अन्त्यवेद ०२६५  
 अन्त्यके अतीरकी शब्दका अर्थ प्रविश्यादिके लिये उराम (शब्दका अर्थ) प्रकृत्य है अन्य अर्थपरिग्रहके  
 लिये नहीं है उस चरमवेदके उराम पत्थकी अर्थि प्रविश्यादिके लिये उराम (शब्दका अर्थ) प्रकृत्य है अन्य अर्थपरिग्रहके  
 अर्थात् वो चरम वेद ही चरम उराम है सा अन्य कहिये है ॥ भाषाय चरम वृत्त समस्त  
 वेदोंमें उराम वृत्त है इस कारणके प्रागट् करके लिये सूत्रमें उराम शब्दका प्रकृत्यविशेषागमादि ॥  
 शरीरीशेगा वृत्त उराम शरीरका चरम अर्थपरिग्रहोणा चरमोंके या उराम माने चरमोके  
 उराम शरीर अर्थपरिग्रहोणा भाषाय चरम वृत्तपरिके अनुचरमपत्था हावाही नहीं इसलिय  
 चरम विद्युत्कृप उराम शब्दका है सा अन्त्यके विद्युत्कृपे चरमवृत्त विद्युत्कृपे ।  
 = और चरम वेदपत्थी न हो ता यह अन्त्यकर्व्य भाषुयात्ता न हागा जैसे सुनोमिचरमवृत्ति  
 और अन्त्यका अर्थपरिग्रह चरमवृत्ति और अन्त्यके अर्थवचनी वास्तव्ये (कृत्यनी) तथा इनके समाज  
 शुरुयु दुई भाषुका अर्थपरिग्रह हागा ॥ यदा 'चरम' शब्द विद्युत्कृपे उराम' शब्द विद्युत्कृपे अन्त्य  
 अन्तिम अन्त्यवृत्ति और उच्छेद अर्थपरिग्रहोणा सुनोमिचरमवृत्तिल्यायिते नहीं बदला है नहीं लागूहोलावे  
 क्योंकि वीथो उराम वेदके चरमि उराम पर ही अन्त्यका शुरुको मानदूरे उरामके चरमके है कि  
 = यह बोध नहीं क्योंकि चरम शब्दका उराम अर्थ विद्युत्कृप है । इसलिये ओ चरम और उराम  
 वेदका परक शेषा ही ॥ ५ परार्थ भाषुय का हो सकता है किन्तु ओ अर्थक चरम वेदका  
 चरम शेषा वृत्त अन्त्यकर्व्य भाषुयात्ता नहीं ही सकता सुनोमिचरमवृत्ति अन्त्यकर्व्य-अन्त्यकर्व्य  
 अर्थवचनी कर्त्त उराम वेदके चरमि ओ चरम चरमि नहीं वे उरामके अर्थवचनी अन्त्यकर्व्य-अन्त्यकर्व्य

(क) 'चरम उरामो वेदो वेदां ते चरमोरामवेदां'  
 सर्वार्थसिद्धिपूजा १६३ अर्थात्सर्वसोक्तान्तिक पृष्ठ ३५३  
 तत्पार्थरात्रवार्तिकम् पृष्ठ १११ वार्तिक ७

(घ) चरमस्य वेत्येतेकच्छेदप्रकारानुसंग-  
 प्रवृत्त गार्गात्प्रतिशेपोऽस्ति ॥ सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ १६३  
 तस्य (= चरमस्य-वेत्यस्य) उरामत्पार्थिवार्थकत्वात्  
 (उरामप्रत्यय) रत्प्रवार्तिकम्पृष्ठ १११ वार्तिक ६ हेतो

उराममण्डल चरमस्य-स्युरामत्व-स्युदावात्म्य  
 (तत्पार्थसाम्बन्धवार्तिकम् पृष्ठ ३४५)

(ग) चरमविद्युत्कुरमस्यस्यचरमस्य निवृत्तपथ  
 चरमविद्युत्कुरम्-उरामस्य प्रथमस्य-निवृत्ति-  
 भ्रम् । तत्पार्थ सोऽर्थादिभ्यम् पृष्ठ ३५३

(घ) अन्त्यस्य चरमस्यस्युदावात्म्य  
 (तत्पार्थसाम्बन्धवार्तिकम् पृष्ठ ३४५)

(च) अन्त्यस्य चरमस्यस्युदावात्म्य  
 (तत्पार्थसाम्बन्धवार्तिकम् पृष्ठ ३४५)

(ज) अन्त्यस्य चरमस्यस्युदावात्म्य  
 (तत्पार्थसाम्बन्धवार्तिकम् पृष्ठ ३४५)

(झ) अन्त्यस्य चरमस्यस्युदावात्म्य  
 (तत्पार्थसाम्बन्धवार्तिकम् पृष्ठ ३४५)

(ञ) अन्त्यस्य चरमस्यस्युदावात्म्य  
 (तत्पार्थसाम्बन्धवार्तिकम् पृष्ठ ३४५)

(ट) अन्त्यस्य चरमस्यस्युदावात्म्य  
 (तत्पार्थसाम्बन्धवार्तिकम् पृष्ठ ३४५)

(ठ) अन्त्यस्य चरमस्यस्युदावात्म्य  
 (तत्पार्थसाम्बन्धवार्तिकम् पृष्ठ ३४५)

(ड) अन्त्यस्य चरमस्यस्युदावात्म्य  
 (तत्पार्थसाम्बन्धवार्तिकम् पृष्ठ ३४५)

(ण) अन्त्यस्य चरमस्यस्युदावात्म्य  
 (तत्पार्थसाम्बन्धवार्तिकम् पृष्ठ ३४५)

(त) अन्त्यस्य चरमस्यस्युदावात्म्य  
 (तत्पार्थसाम्बन्धवार्तिकम् पृष्ठ ३४५)

(थ) अन्त्यस्य चरमस्यस्युदावात्म्य  
 (तत्पार्थसाम्बन्धवार्तिकम् पृष्ठ ३४५)

श्रीपपादिका व्याख्याता देवनारका इति ॥ चरमशब्दोऽन्त्यवाची । उत्तम उत्कृष्टः । चरम  
उत्तमो देहो येषां ते चरमोत्तमदेहा । विपरीतसारास्तज्जन्मनिर्वाणार्हा इत्यर्थः ॥ असंख्येय-  
मतीतसख्यानमुपमाप्रमाणेन पल्यादिनां गम्यम्

इत्युपादिनाः ॥ व्याख्याताः देव-नारकाः ॥ इति ॥ उपपाद अन्त्ये उत्तमशोनेवालो (४६ वासुदेवो) इत्येवम् ॥ देव नारकी ॥  
पापशुद्धः ॥ अन्त्यवाची २, उत्तमः १, उत्कृष्टः १ ।  
चरमः २, अन्त्यः १, देवः १, वेपाय् १, ते चरमोत्तम-देहाः १ ।  
विपरीत-साराः १, तत् अन्त-निर्वाण-अर्हाः १ ।  
इति ॥ अर्थाः १, अतीत-सख्यानयुः ॥ असंख्येयम् १ ॥  
उपमा प्रमाणेन १ ॥ पल्यादिना १ ॥ गम्यम् १ ॥

( अ ) जिसमें जोड़े अच्छे ही जो संवहरहित अर्थवाला हो सारागणित और पूणा अर्थसे रचित हो उसको वृत्त शब्दलेखि साकि निम्न लिखित संश्लेष  
विधि है और वैपाकरणको यदि वृत्तके रचनेमें आपा या एक मात्राका भी साम होजाय तो उसको पुनःके क्रम सङ्गु हय होता है अथ असाकि  
निम्न रूप धरने करता है किन्ते उपर्युक्त गुरु वृत्तमें हीना वाहिये ये समस्त वृत्तमण्डिते देवनेपर 'चउमदेहा. पाठमें गणित है क्योंकि 'उत्तम'  
शब्दके मतानेसे वृत्तः मयम गम्' 'बाउं अउर' की लिखित शोभाती है । इसी शब्दको पाठमें न मानेसे वृत्तका अथ सर्वपा संदेहरहित सोचा  
साधा स्पष्ट और सरल होजाता है अथ कलेमें वृत्तको समझानेमें सुखी शरीर रहता । परसे 'अन्त्यदेहा' पाठ वृत्तका द्वितीय गुरु कि संदेहरहित  
अथ वाता हो पूर्ण करता है । उत्तम शब्दके निकलनेसे सा-सत गणित सङ्गुजाता है इसकार वृत्तका तीसरा गुरु पूर्ण हुआ अथ उत्तमशब्द  
पाठसे पूर्ण रूप रचियेता तब पथ और लिख्योत्तमीय भाग निकल जाता है और वृत्तके चोथोगुणी कि वृत्तमय्य शब्दसे रचितको पूर्णता हो जाती है ।  
साक १ १ १ १ व्यापाउपादिरिप ( = अन्त्यवाची १ ) ॥ अन्त्यवाची १ ॥ ॥ अन्त्यवाची १ ॥ ॥ अन्त्यवाची १ ॥ ॥ अन्त्यवाची १ ॥ ॥ अन्त्यवाची १ ॥ ॥

सात्प्यादिस्ती मुर ( = सात्प्यादि १, विपरीतः १, मुलम् १ ॥ ) = सत या सार गणितको सर्वक ( = विपरीतः ) धेर ( = मन्त्य ) हो  
अस्तोत्तमवर्ध च ( = अ-सामं १ ॥ अन्त्यवर्धम् १ ॥ व १ ) = निरपक शब्द ( = स्ताम) रचित [ = अ ] श्रीर्पु = चोत्पुष्प गणितको  
वृं वृत्तियो विपु [ = वृत्तः १ ॥ वृत्तियः १ ॥ विपुः १ ] = वृत्तवाला [ वृत्तको ] वृत्तकरते है १ १ १ ॥  
शोक १ १ ॥ परकी वाच्यमैसागाया [ = परकी १ ॥ वाच्यमैसागायाः १ ॥ ] = एक अथवा आधी मात्राका  
पुत्रस्य दृष्टितापये [ = वृत्तस्य १ ॥ दृष्टितापये १ ॥ ] = वृत्तको रचनामें सामान्येपर या स्पृष्टकोनेपर  
पुत्राप्रमासमस्तुस्यो [ = पुत्र-अन्त-उत्सव १ ॥ मुत्सवः १ ॥ ] = पुत्रके अन्तके हयसमान या पुत्रके अन्तमें हयसमानके चतुष्टय  
वैपाकरणो मन्त्ये [ = वैपाकरणः १ ॥ मन्त्ये १ ] = व्यापाकरणवाला या व्याकरण की आन्तेवाला मानता है १ २ १





श्रीपपादिका व्याख्याता देवनारका इति ॥ चरमशब्दोऽन्त्यवाची । उत्तम उल्कट । चरम  
उत्तमो देहो येषां ते चरमोत्तमदेहा । विपरीतस सारास्तज्जन्मनिर्वाणार्हा इत्यर्थ ॥ असंख्येय-  
मतीतसख्यानमुपमाप्रमाणेन पल्यादिनां गम्यम्

द्वयपुत्रादः औपपादिकाः व्याख्याताः श्रेय-नारकाः इति च-वषपाद जन्मसे त्वप्रभोनेवालो (४६ धर्मसमो) करोगे दे (वे) देव नारकी दे  
चरमशब्दः १ अन्त्यवाची २, उच्यते ३, उल्कटः ४  
वामशब्दः १ अन्त्यवाची २, उच्यते ३, उल्कटः ४  
वाम १ उच्यते २, श्रेय ३, येपाम् ४, ते चरमोत्तम-देहाः ५  
विपरीत-संसाराः १, व-जन्म-निर्वाण-भार्याः २  
इति अर्थः ३, अतीत-संख्यान्तः ४, असंख्येयम् ५  
उपमा-प्रमाणेन १, पल्यादिनां २, गम्यम् ३

( म ) जिसमें कोई भ्रष्ट हो जो संश्लेषित अर्थवाला हो सारगमित और बुया अर्थसे रहित हा उसको वृत्त कहते हैं जिसे निरुक्त स्वरूप  
निहित है और वैषाकरणको यदि वृत्त रचनामें आपा वा एक भाषाका भी साम होजायै तो उसको पुत्रके अम संश्लेष इय होता है अप असाकि  
निर वृत्त वृत्त के रचना में होना चाहिये ये समस्त वृत्तप्रतिसे श्रेयनेपर 'अन्त्यदेहा' पाठमें गमित है क्योंकि 'उत्तम'  
शब्दके रत्नामते वृत्तका प्रथम गुण 'योग्ये भ्रष्ट' की निष्पत्ति होजाती है ॥ इसी अर्थको पाठमें न जानसे वृत्तका अर्थ संयोग्य संश्लेषित सीया  
साया स्पष्ट और सरल होजाता है वृत्तके समकालमें कुछ भी संश्लेष नहीं रहता । एवं 'अन्त्यदेहा' पाठ वृत्तका द्वितीय गुण कि संश्लेषित  
अर्थ वाला हो पूर्ण रहता है । उत्तम अर्थके निकालनेमें सार-सत गमित वृत्त रहजाता है इसकारण वृत्तका तीसरा गुण पूर्ण हुआ अथ उत्तमगुण  
पाठसे पपष् करतिया तब स्पष्ट और निष्पद्योजनीय भाग निकल जाता है और वृत्तके चोरोपेय की कि वृत्तगुण्य अर्थसे रहितही पूर्णता हो जाती है ॥  
सा ३ १ २ अन्त्यदेहमसंश्लेषित ( = अन्त्यदेहपरम् ३ ॥ अन्त्यदेहपरम् ३ ॥ योग्ये भ्रष्टरहित ( अत्यपुत्र ) हो

- सारवाशिश्वती मुक्त ( = सारवाश १, विश्वतः अनुपम् ३ ॥ ) = सत वा सार गमितही सर्वतः ( = विरयतः ) भ्रष्ट ( = मुख्य ) हा
- अन्त्योत्तमवर्ष व ( = अ-सोमं ३ ॥ अन्त्योत्तमं ३ ॥ व ७ ) = निरयतः अर्थ ( = सोमो ) रहित [ = अ ] भोरु = अ) मुख्य वक्रितहो
- वृत्त वृत्तवितो विपु [ = वृत्तं १ ॥ वृत्तविकः ३ ॥ विपु १ ] = वृत्तवाला [ उत्तमका ] वृत्तकहते हैं ३ १ ॥
- सो ३ १ २ वृत्ते वाचस्वसायागा [ = वृत्तान्ता अन्त्यसायागाः १ ॥ ] = एक अथवा भाषी भाषाका
- वृत्तस्य इतिशेषे [ = वृत्तस्य १, इतिशेषे १, सायागे वृत्त ] = वृत्तकी रचनामें सामहोनेपर वा व्युत्पन्नहोनेपर
- पुत्राज्जन्मोत्तमस्तुतो [ = पुत्रा-जन्म-उत्तम १ ॥ तुसा १ ॥ ] = पुत्रके अर्थके हृद्यसमाप वा पुत्रके अर्थमें हृद्यहोनेके समुद्र
- वैषाकरणो मन्थते [ = वैषाकरणः १ ॥ मन्थते १ ] = व्याकरणवाता वा व्याकरण की जाननेवाला मानता है ३ २ ॥







# ॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

भवप्रत्ययोऽथिद्वेनारकाणामित्येवमादिषु नारकां श्रुतास्ततः पृच्छति के ते नारका इति ।  
तत्प्रतिपादनार्थं तदधिकरणनिर्देशं क्रियते ॥

॥ रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमः प्रभा

भूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ॥ १ ॥

अथ ० तृतीयः । अध्यायः ।

प्रथमश्लोकः । अथिद्वे । द्वेनारकाणां । इति एवम् = जन्मनिमित्तकं अथिद्वेनारकाणां के शेषा इति एवमी (= एवम्) ।  
शादियु । नारकाः । श्रुताः ।

ततः ० पृच्छति । के । ते । नारकाः । इति ० तत् = तस्य कारणं से (= ततः) । पृच्छता इति व नारकी क्रीन इति । तन (नारकीयो) क  
मतिपादन-मर्थः । तत् अधिकरण-निर्देशः । क्रियते = कर्तव्ये वा कर्तव्ये के विषये, तनके आधार (= निवासस्थान) का कथन किया जाता है ।

सूत्रम्—रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातम प्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाश प्रतिष्ठा सप्ताधोऽध ।  
पदच्छेद—रत्नप्रभा—शर्कराप्रभा—वालुकाप्रभा—पङ्कप्रभा—धूमप्रभा—तम प्रभा—महातम प्रभा—  
भूमय घनवात—अम्बुवात—(तनु)वात—आकाश—प्रतिष्ठा (भवन्ति) सप्त अधस् अधस् ॥ १ ॥

सत्राय—रत्नप्रभा-शर्कराप्रभा-वालुकाप्रभा  
= रत्न के समान रीति, शर्करा के सदृश कणक, बालू के सम कलक,

= कीबट के सदृश मलक, धूमवत् प्रभा, अथ नारक के समान आकृति,

= महा अर्थकार के समान मलक (यथा गुण तथा नाम की) भूमिये (नारकस्थान)

(भिनके सहिनाम यन्मा, वशा, येमा, अत्रना, अरिष्ठा, पपवी और गारवी इ)

(१) सप्ताधोऽध मूल में अथिद्वे द्वेनारका अर्थ सूत्र अथिद्वेनारका अथिद्वे २ विधान होना गर है अर्थात् ऊपर ऊपर दोही छोटी तनी

प्राणित्वासी जगत्समापय इच्छिच्छेत् और नियमस्वर्ष सति सर्वार्थसिद्धिहाविका शक्या शिवी अनुवाद अप्याय २ सूत्र ५२

गतिजन्मयोनिदेहलिङ्गानपवर्तितायुष्कभेदाश्चाध्यायेऽस्मि-  
न्निरूपिता भवन्तीति सम्बन्धः॥इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धि-  
सञ्ज्ञिकायां द्वितीयोऽध्यायः॥

ब्रह्मविषयाः १

जन्मपैराः १

यानिपैराः १ देवपैराः १

द्विपैराः १

अनपवर्तिग-भापुत्रपैराः १

ब्रह्मज्ञानसिद्धि-विषयाः १

सर्ववि I द्विःसम्बन्धाः १

= (न्य) और (नीच सुखके) गलतके भेद ( २४ से ३० सूत्र पर्यन्त)

= (नीचके) तथा शरीर धारण करनेके भेद ( ३१, ३२, ३३, ३४ सूत्र )

= (नीचके) जलधि के स्थान (नीचे) अर्थात्सर्वसम् । शरीरोंकेमद ( ३६से ४६सूत्र पर्यन्त)

= लिङ्ग वा वैशिके भेद ( ४०, ४१, ४२, सूत्र )

= नरी घटनवायु वा न्यून इत्येवम्य आयुशकारिके भेद ( देला सूत्र ३ )

= रूप (=अस्मिन्) ( दूसरे) अध्यायमें वर्णित वा कहेगये

= (अपन्ति) ऐसा संबंध अथवा संयोग है अर्थात् इस दूसरे अध्यायमें उपर्युक्त

बहुओं वा विषयोंका इयन है ॥

इति तत्त्वार्थ-वृत्तौ ॥ =इस प्रकार तत्त्वोंके स्वरूप (=अर्थ) विवरणमें [=वृत्तौ]  
सर्वार्थसिद्धि-

सञ्ज्ञिकायाम् १

द्वितीयः १ अध्यायः १

= नामक (ग्रन्थ) में

द्वितीयः १ अध्यायः १ = दूसरा अध्याय (समाप्त) हुआ ॥ \* मंगल हो \*

# ॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

भवप्रत्ययोऽत्रिद्वेवनारकाशामित्येवमादिषु नारका श्रुतास्तत पृच्छति के ते नारका इति ।  
तत्प्रतिपादनार्थं तदधिकरणनिर्देशं क्रियते ॥

॥ रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमः प्रभा

भूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ॥ १ ॥

भव \* तृतीय है अध्याय है।

भवप्रत्ययः है अत्रिः है। देवनारकाणां । इति एवम् = मन्मथिषक अवधिमान दस और नारकियों के बोवा है एमही (= एतम् )

वादिषु । नारका है। धूमता है।

वतः \* पृच्छति क है। त है। नारका है। इति \* तत् = उस कारण से (= ततः) पूरुता है कि व नारकी कौन है। रत्न (नारकियों) क

मतिपादन-अर्थ है। तत् अधिकरण-निर्देशं है क्रियते = ज्ञापने वा शब्दा देने के लिये, वत के आधार (= निवासस्थान) का ज्ञान किया जाता है

सूत्रम्—रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातम प्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाश प्रतिष्ठा सप्ताधोऽध ।

पदच्छेद —रत्नप्रभा—शर्कराप्रभा—वालुकाप्रभा—पङ्कप्रभा—धूमप्रभा—तम प्रभा—महातम प्रभा—

भूमय घनवात—अम्बुवात—(तनु)वात—आकाश—प्रतिष्ठा (भवन्ति) सप्त अधस् अधस् ॥ १ ॥

सत्रार्थः—रत्नप्रभा-शर्कराप्रभा-वालुकाप्रभा

= रत्न के समान चीति, शर्करा क सहय वमक, वालु के सम भलक,

पङ्कप्रभा धूमप्रभा-वमः प्रभा-

= कीबध के सहय भलक, धूमवत् प्रभा, अवकार क समान पाकृति,

= महा अंधकार के समान भलक (यथा गुण तथा नाम की) भूमिये (नारकस्थान)

(भिनके रुदिनाम यस्मा, संशय, मेधा, अजना, अरिष्ठा, पपवी और पायवी है)

(१) सत्रार्थ में पृथक्तरा मन्त्र में अर्धित है भिनका धर्म मन्त्र अतिव्युत्तरम् अर्धिक १ बिष्ठाव हाती गइ है अर्थात् ऊपर ऊपर पौनी कुंटी तनी



पुननिवासी ऋग्वेदसहाय बहोली कृत पदच्छद और विपत्तय सदिह सर्वार्थसिद्धका शुद्धश हिन्दी अनुवाद । अर्थात् ३ सूत्र १  
 रत्न च शर्करा च बालुका च पङ्कश्च धूमश्च तमश्च महातमश्च रत्नशर्कराबालुकापङ्कधूम-  
 तमोमहातमसि । प्रभाशब्द प्रत्येकं परिसमाप्यते ।

यानुशात-(१)

यनशात-

(तनु) बाण-आकाश-प्रविष्टाः । भवन्ति ।

= पन (= स्पल) उचरि (= भन्तु, गल) शात (= पवन) अर्थात् पनोवधि शातबलय ।  
 = पन (सपन, स्पल) शात (= पवन, यवार) अर्थात् यनवतबलय ।  
 = तनुपवन वा सूक्ष्मवायु अर्थात् सूक्ष्मवातबलय, और आकाश क आषार वा आश्रय है ।

भाषार्थ य भूमिपे यनोद्विषातबलय ओ सपन पवन और तच्छविधित है,  
 आषार है, यनाद्विषातबलय पनवातबलय क ओ स्पल-सधन वायुका है आश्रय है, यनवातबलय तनु-  
 वातबलय के वा सन्मवायुका है आषार है और तनुवातबलय आकाश के आषार है और आकाश अपन  
 आषार है और स्पे अर्थात् है उसका कोई अन्य आषार नहीं इच्छिय यह अपन आप आषार है ।

मम ॥ अण ० अण ०

शुणुवाद --- रत्न ॥ य शर्करा ॥ य बालुका ॥ य = और रत्न और शर्करा ( कठरीली) तथा बालुका  
 पङ्क १ च पूम १ च तपः ॥ य पद्मानय ॥ य = मङ्कुरि पत भर पूम और तप तथा महातप ( शुन्द आएस में )  
 रत्न शर्करा-बालुका-पङ्क-पू-पद्म-महातमसि ॥ ॥ = रत्नशर्कराबालुकापङ्कपूतपोषातमसि रूप में इतरेत्तर योगद्वय समास है ।  
 मयागन्तः ॥ प्रत्यङ् ॥ प्रसिवाप्यते ।  
 = मया शुन्द पूयङ् पूयङ् रत्न, शर्करा, बालुका इत्यादि पर जोड़ा जाता है ।

इरे कनो वलके शेष को विद्याल कनरी क मम है । लयायै राकबानिक पुष्ट ११२ वार्तिक ११ क अनुकूल इमार यद्वा ओ किसी किसी  
 आचार्य के मम में "पुष्टता" पाठ भी है मम दानी आत्मको में पाठ और अर्प एकसा हुआ है परन्तु बानिकार का मम है कि रत्नप्रभा भूमिमें मम्य  
 मम्य वा अर्प वायु गरी होमकता उसका गथनर मम नहीं बन सकता क्योंकि इससे अण्य कोई मरक भूमि विकारा येनका वा आयु की अपेक्षा म्युक्त  
 हा तब तो एक ममा से पुष्टता क्या आसकता है किन्तु सो तो है नहीं रचकिये पुष्टता" अण्य के बल्लेक को कोई कायस्थकता नहीं ।

(१) वातबल वातबल शरीर पर यहाँ पर एकदुष्ट समास आता है । एकदुष्ट समास का यह नियम है कि समास कालिक शब्दों में एक को शब्द  
 कदमिच रह जाता है अण्य का जोय हो जाता है इसकिये यहाँ पर एक शब्द अण्य का जोय आगता है इसकिये मयागन्तुना अण्य वा यहाँ पर यनाप्यि  
 पाठ और यनवात सम्यग्ना का किये तथा यन अण्य सामान्य है यह सम्युक्त शिष्टोय की आत्मीका रत्नता ही इत्यकिये बात अण्य से यहाँ लपकात का जो  
 मरहय है इसप्रकार यनागन्तुना अण्य लोपेद्विषात यनवात और तनुपात इन तीन पाठबलकों का पाठक है ।

एताभिवासी आरुपमसाय पक्षील कृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थे सरित् सवार्थसिद्धिहा शक्यः। सिन्धी अनुवाद आध्याय ३ सप्त ।  
 साहचर्यार्त्तच्छ्रद्धम् ॥ चित्रादिरत्नप्रभासहचरिता भूमि रत्नप्रभा, शर्कराप्रभासहचरिता भूमि शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभासहचरिता भूमि बालुकाप्रभा, पङ्कप्रभासहचरिता भूमि पङ्कप्रभा, धूम प्रभासहचरिता भूमि धूमप्रभा, तम प्रभासहचरिता भूमि तम प्रभा, महातम प्रभासहचरिता भूमि महातम प्रभा इति ॥ एता सञ्ज्ञा अनेनोपायेन व्युत्पाद्यन्ते ॥ भूमिग्रहणमधिकरणविशेषप्रतिपत्त्यर्थम् ॥  
 यथा स्वर्गपटलानि भूमिमनाश्रित्य व्यवस्थितानि, न तथानारकावासा । किं नहि भूमिमाश्रिता इति ॥

साहचर्यात् ३ ॥  
 मात्-शक्यम् ३ ॥  
 मित्र-श्यादि-रत्नप्रभा-सहचरिता ३ ॥ भूमि ३ ॥ रत्नप्रभा ३ ॥  
 शर्करा-प्रभा-सहचरिता ३ ॥ भूमि ३ ॥ शर्कराप्रभा ३ ॥  
 बालुकाप्रभा सहचरिता ३ ॥ भूमि ३ ॥ बालुकाप्रभा ३ ॥  
 पङ्कप्रभा ३ ॥ सहचरिता ३ ॥ भूमि ३ ॥ पङ्कप्रभा ३ ॥  
 धूमप्रभा ३ ॥ सहचरिता ३ ॥ भूमि ३ ॥ धूमप्रभा ३ ॥  
 तमप्रभा ३ ॥ सहचरिता ३ ॥ भूमि ३ ॥ तमप्रभा ३ ॥  
 महातम प्रभा ३ ॥ सहचरिता ३ ॥ भूमि ३ ॥  
 महातमः प्रभा ३ ॥ इति ३ एता ३, संज्ञा ३ ॥ अनेन ३ ॥  
 उपायान् ३ ॥ व्युत्पाद्यन्त ३ ॥  
 भूमि-ग्रहण ३ ॥ ॥ यत्रिहाय-विगा-पनिमित्त-अयम् ३ ॥ ॥  
 यथा एता नटयन्ति ३ ॥ भूमिम् ३ ॥ यनाविश्वकाशस्थितानि ३ ॥ ॥  
 न ३ ॥ यथा ३ ॥ गारुड-माकासा ३ ॥  
 ति ३ ॥ ३ ॥ यत्रि ३ ॥ यत्रि ३ ॥ इति ३

= (रत्न-शर्करा-बालुका आदिकी प्रभा क) सहस्र जानेस वा सहस्यारी होन स  
 = वन (भूमिषो) क (रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा आदि) नाम परेण्येरे  
 = विभाविक रत्नो की हीति सहस्य पृथिवी सो रत्नप्रभा इ ।  
 = ककरकी कीति सहस्य पृथिवी सो शर्कराप्रभा इ ।  
 = ब लहा की वषक सम पृथिवी सा बालुका प्रभा इ ।  
 = कीयङ् अयना इत्यत्र कौ फलान् सप्त पृथिवी सो पङ्कप्रभा इ ।  
 = धूर्षा की वीति तुंग पृथिवी यो धूमप्रभा इ ।  
 = घ रङ्कार की फलक सम पृथिवी सो तमप्रभा इ ।  
 = अत्यन्त अत्यन्तार की प्रभा तुंग पृथिवी  
 = सो महातमः प्रभा इ । य रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा आदि) नाम । इम (= अनेन)  
 = सापनकरि निलकि क्रियययै अणत आकारका सो रीतिन गिद्ध क्रियययै ।  
 = (इम सज्जें) भूमि (शब्द) का सादान आचार लिङ्गुण तल्लाम क लिय इ ।  
 = जैमे स्तगर-छे भूमि का आकार न इर के पृथ्वूरुव्यकस्यिन पाठरे इ एरे  
 = वैसै नारदिक्यो क वासस्थान नही रे अयान् उनक वासस्थान भूमिक आकार इ  
 = तो (= तदि) भूमिहो यथा आचार-भाषङ्करण इ अर्थात् किलसम मिही रे





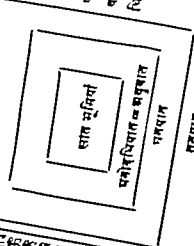


एतन्निवासी अग्ररूपसहाय बहूलैल इत पदरुद्ध और विभक्त्यय सहित सर्वाभिसिद्धिका शब्दशः शिवी शत्रुशत्रु कथाय ३ सूत्र १

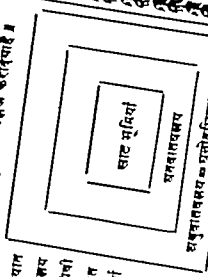
अर्थः—आत्मभावलय ( = मनोद्विधातलयलय ) वह तनुयातलय क आधार है (केला है आत्मभावलय की शिवि का कारण है और वह यनवात (बलय) भूमिकी शिवि का हनु है । मूयि को शिवि का हेतु कथुरा शब्दशि नदी है । तस्याय अकारणिक मूय ३४५ ॥

(२) एतः। एत मूयक यनवात मतिरा वर्तन स च यनवात आत्मभावमनिष्ठाशिन । स च आत्मुवात तनुवातमनिष्ठो एतव । स च तनुवात आशयमनिष्ठो वर्तन एतदि एतो सूत्र क मोच भुमिसागरि शो का मूय २६ से ३६ मूयम सवर्ध सिद्धिपुष्टि कारका मत मूय ३ से बलेक करदिया है ॥

एतयाना मयः यनाद्विनयमनिष्ठाः यनाद्विनयलय यनवात यलयमनिष्ठः यनवातलय तनुवातलयमनिष्ठ तनुवातलय माकाशमनिष्ठम् रात्रवार्तिकमूय १,२ ॥ तस्य करपुणिको पदमतिष्ठ। एता यनाद्विनयलयमनिष्ठा यनाद्विनयलय यनवात यलयमनिष्ठ ॥ एता मदतमा मूयमाकाशम् ॥ समाप्यतएवार्था विमलक मूय १४ ॥



यनवात



तनुवातलयलय

तीनवो मताक यनु यनाकाद स च साक यनाद्वि यनवात) तनुवात क आधार है । कश्चिद यानतारायक शब्दाशयकसे मूयम ॥ ३ ॥ सर्वतोःक यनाद्विधातलयलय (को जल और पवन मिश्रित है) ताक आधार है और यनाद्विधातलयलय तनुवातलयके आधार है ॥ यनुवातलय तनुवातलयके आधार है । यदुरि यनोद्विधातलयलय यनवातलयके आधार है और यनाद्विधातलयलय तनुवातलयके आधार है । यनुवातलयलाय आकाशके आधार है ॥ यं जयनकरायकी मृता वसति का मूय २६६ ॥ तस्यो ते समस्त पुणिको तो यनाद्विधातलयलाय आकाशके आधार है । और यनोद्विधातलयलय है तो यनवातलयके आधार है । मर यनवातलय है तो तनुवातलयके आधार है । एतासु मूयो कृता मयं कानि ॥ १ ॥

एकनिवासी गणरूपसहाय इकील कुत पदच्छद और विभक्त्यर्थ सवित सर्वादि सिद्धिका शब्दयः निन्दीयन्मुखाद । अथाप ३ सूत्र १ और २

सिद्धि

तिर्यक्प्रचयनिवृत्त्यर्थम् ॥  
किं ता भूमयो नारकाणां सर्वत्रावासा आहोस्वित्कचित्कचिदिति तन्निर्धारणार्थमाह—

॥ तासु त्रिंशत्पञ्चविंशतिपंचदशदशत्रिपंचोनेकनरकशतसहस्राणि

तिर्यक् ० प्रथम-निवृत्ति-अर्थम् ॥॥

किमुक्ताः ॥ भूपम् ॥ नारकाणां । सपथः आशासाः । = (परत) क्या त भूमिये नारकीको सवत्र पासत्यान हे  
 = अथवा (= आहोस्वित् ) कधी कधी पर हे । इस (आप) क  
 = निष्पत्तय किय (अग्निप सूत्र में) कइत हे कि—  
 तासु त्रिंशत्पंचविंशतिपंचदशदशत्रिपंचोनेकनरकशतसहस्राणि पच चैव यथाक्रमम् ॥ २ ॥  
 = वासु त्रिंशत्नरकशतसहस्राणि पचविंशत्त्रिंशत्नरकशतसहस्राणि, पचदशनरकशतसहस्राणि, दशनरकशतसहस्राणि, त्रिंशत्नरकशतसहस्राणि,  
 = वासु त्रिंशत्नरकशतसहस्राणि पचविंशत्त्रिंशत्नरकशतसहस्राणि, पचदशनरकशतसहस्राणि, दशनरकशतसहस्राणि, त्रिंशत्नरकशतसहस्राणि,  
 सप्तमं — तासु ॥ त्रिंशत्नरकशतसहस्राणि, १, ११ एव यथाक्रमम् ॥ २ ॥  
 पचविंशत्त्रिंशत्नरकशतसहस्राणि ॥ = उन (भूमिमें) = पचवीस लाख बिल (= नरक)  
 नारकशतसहस्राणि ॥ पचदश- = लाख बिल (= आशास) दश लाख बिल (= निवासस्थान)

एतान्तरकशतसहस्राणि पचविंशत्त्रिंशत्नरकशतसहस्राणि, पचदशनरकशतसहस्राणि, दशनरकशतसहस्राणि, त्रिंशत्नरकशतसहस्राणि, त्रिंशत्नरकशतसहस्राणि ॥॥  
 = लाख बिल (= आशास) दश लाख बिल (= निवासस्थान)  
 (एकमादि भूमिमें) न नरक हैं और उक्तमात्रके मात्ककारने इस कथनका कि प्रथम मन्त्रिने तीसलाख बिले में दसवीसे पचवीसलाख तीसरीसे पाँच दसलाख करदिया है और इन्हीं नरके में ज्येष्ठे यह कथन कि वहिके नरकभूमिमें तेरेव दसवीसे हजारदसलाखीमें नरक औपवीसे लाख निवासस्थान हैं पाँच दसवीसे बीस पाणवीसे एकको मन्त्रके गणित है । पूर्यथाद् एवागोमे प्रथमको गणनाका कथन इसी सूत्रकी पुक्तिमें करदिया है अर्थात्में एवादि

एतानिषो भगवत्सहाय बहोव इव पद्मच्छद भाग विभक्तय संहित सभायसिद्धिः। शुक्य शिन्वी मनुवाद् मध्याव ३ सूत्र २  
 ताम् रत्नप्रभादिषु भूमिषु नरकाण्यनेन सरुवाय ते यथाक्रमम् ॥ रत्न रभाया त्रिरात्रकशत  
 सहस्राणि, शरंरप्रभाया पञ्चविंशतिर्नरकशतसहस्राणि, यल्लु कप्रभाया पञ्चदश नरकशतसहस्राणि,  
 पङ्क प्रभाया दश नरकशतसहस्राणि, वृमप्रभाया त्रीणि नरकशतसहस्राणि, तम यभाया पञ्चोत्तमेक  
 नरकशतसहस्र महात्तम प्रभाया पञ्च नरकाणि ॥ रत्नप्रभाया नरकप्रस्ताराल्खयादयः ।

- भि-नरकशतसहस्राणिः॥ पंचानं-परनरक
- शतसहस्रं॥ पच॥ पचएतकराकावम् ॥॥
- शुच्यर्थे — शासुः॥ रत्न यथादिपुः॥ भूमिषुः॥
- नरकाणि ॥॥ अन्न ॥॥ सरुवायत्ना कथाक्रमपुः
- रत्नप्रभायापुः ॥॥ नियतं॥ नरकशतसहस्राणिः॥॥
- शुक्रामभायाः॥ पञ्चविंशतिः॥ नरकशतसहस्राणिः॥॥
- शालुक्रामभायाः॥ पञ्चदशैः नरकशतसहस्राणिः॥॥
- पुण्ड्रभायाः॥ दशनरकशतसहस्राणिः॥॥
- पुष्पभायाः॥ त्रीणि॥ नरकशतसहस्राणिः॥॥
- तम यभायाः पञ्च अन्तः॥ एक-नरक शतसहस्रं॥॥
- महात्तम-प्रभायाः॥ पञ्चः नरकाणिः॥॥
- रत्नप्रभायाः॥ नरकप्रस्ताराः। प्रशोदयः
- (पञ्च = पापदा)
- = तान् लाल (बिले), वीच यात्रि एक
- = शाल और (= ब) वीच बी (= एव) क्रयानुसार (नारकियों क आवास-निवा
- सस्थान है) अर्थात् प्रथम पृथिवीक अशुल भागवियै तीसलाव, दूसरीमें पचीस
- लाव, तीसरीमें पन्द्र लाल, चौथीमें दश लाल, पाँचवीं वीच लाल, छठवींमें
- ००००० बिल इ सातवीं भूमिमें प्रकल वीच बिल इ ॥
- = उन रत्नप्रभायादि क भूमियों में
- = बिल वा नाकियों विद्यास्थान इस अनुक्रमस गणना क्रिय जान इ कि
- = रत्नप्रभा (पथकप्रति) वियै (अर्थात् उत्तर अन्तर्ग्रह यागवै) तीसलाल बिल इ
- = शुक्यप्रभा (दूसरी पृथिवी) में पचीस लाल बिल इ
- = शालुक्रामभा (तीसरी भूमि) में पन्द्र लाल नरक बिल इ
- = पङ्कप्रभा (चौथी पृथिवी) में दश लाल बिल इ
- = पुष्पप्रभा (पाँचवीं भूमि) में तीन लाल नरक बिल इ
- = तम यभा (छठवीं पृथिवी) में पाँच पाटि एक लाल बिल इ
- = महात्तम प्रभा (सातवीं भूमि) में वीच नरक बिल इ
- = रत्नप्रभा (भूमि) में नरक पत्रक तत्र इ

वर्षाका सूत्र कीटयसिका कथत समाव० क सूत्र और उत्तरके आर्यस विहजाला है इसलिये यह सूत्र है कि शो आशयका शापकर्म अर्थात्क इत  
 मूवीस सप्य रजता है एक है ।





पुनःप्राप्तिमी अग्ररूपसहाय बकील कृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सवार्थसिद्धि का शक्यता हिन्दी अनुवाद । अध्याय ३ सूत्र ३

सवार्थ

सिद्धि

अर्थः—नारका । निरप अशुभतर-व्यथा ।

नित्य अशुभतर-परिणामा । नित्य अशुभतर दहा ।

निरप अशुभतर बदना । नित्य अशुभतर विक्रिया ।

= नारकी अर्थ है य निरन्तर अशुभतर लक्ष्याओं सहित अर्थात् अशुभतर काणोत वीछ भार कृष्ण लक्ष्याओं सहित  
 = निरन्तर अशुभतर परलक्षित्युक्त, सदा अशुभतर शरीरबाल  
 = सर्वत्र अशुभतर घोड़ा सहित, सदा अशुभतर विक्रिया करने वाले होत है

भावार्थ यह है कि विषय गतिस अशुभतर लक्ष्याओंकी अपेक्षास रत्नमभा मय भूमिमें अशुभतर लक्ष्या हैं । रत्नमभास शर्करामभा में अशुभतर लक्ष्या, परिणाम, देह, बदना, विक्रिया है, शर्करामभा स बालुकायभा में अशुभतर लक्ष्या, परिणाम, देह, बदना विक्रिया है बालुकायभास पशुमभामें अशुभतर लक्ष्या, परिणाम, देह, बदना, विक्रिया है; शर्करामभा में अशुभतर लक्ष्या, परिणाम, देह, बदना,

(1) "अशुभतर" तर-कृत्र अपिच नम-बहुत अपिच । यदि हा वस्तुकोमेत एकक शुभ गुण अथवा अशुभ गुणको अधिकता एकक हो तो उस एक के अन्त में 'तर' अर्थ आते हैं जैसे इस सूत्र में अशुभतर लक्ष्या । और यदि बहुतसी (या से अधिक) वस्तुओंमेंसे एकक शुभ गुण अथवा अशुभ गुणकी अधिकता उन सर्वक ऊपर आता तब अर्थ बनती है ता तब अर्थ आता है "जैसे अशुभतम लक्ष्या" इत्यादिले आगता ।

(2) लक्ष्या शब्दका एककत्व लक्षिका लक्ष्या शब्द है उसका बहुवचन लक्षिका अर्थ आता है । परन्तु समासमें 'नित्यशुभतर बहुवचनमें रक्का है ।

(3) 'बदना और विक्रिया शब्दों का अर्थ से एक वचन लक्षिका लक्ष्या और विक्रिया है अन्त बहुवचन लक्षिका अर्थ आता विक्रिया ।

होते हैं परन्तु समास में 'नित्यशुभतरलक्ष्या' 'नित्यशुभतरविक्रिया' आये हैं अन्त अर्थ हैं 'निरन्तर अशुभतर' ही बदना विक्रिया और निरन्तर अशुभतर हैं विक्रिया अन्तमें 'अर्थान्' शब्दका लक्षिका अर्थ है 'नारका' शब्दों का बहुवचन पुलिङ्ग में रक्का है ।

एतानिकासी आरुससराय बकीक ऊव पदचक्र और विभक्त्यय सवि सबायसिद्धिका शुभ्रः। अर्थाय २ सूत्र २ और २ ततोऽथ आसप्तम्या द्वी द्वी नरकप्रतारौ हीनौ ॥ इतरो विशेषो लोकानुयोगतो वेदितव्य ॥ अथ तासु भूमिषु नारकाणां क प्रतिविशेष इत्यत आह—

## ॥ नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥ ३ ॥

नर क अयः क आसप्तम्याः।। द्वीः। द्वीः। नरक प्रस्तारौ' = तिस (मय्य भूमि) से नीचे सातवीं (भूमि) तक दो दो नरक पदक हीनौः।

इतारौ। विशुण्णः। शुक-अनुभोगत क वदितव्य है।

अय क नाम ॥ भूमिः।। नारकाणोः। काः।

भक्ति-विशुण्णः। रति क अत क आह ।

सूत्रम्—नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रिया ॥ ३ ॥

= नारकाः भिन्त्य अशुभतरलेश्याः ; नारकाः नित्य अशुभतर परिणामा ; नारका नित्य अशुभतर वका ; नारकाः नित्य अशुभतरवेदनाः ; नारका नित्य अशुभतर विक्रियाः ॥

(१) हमारे एक नवमार्च सूत्रकी बहुतलो प्रतितीके अतिरिक्त एक प्रति तावार्थ सूत्रकी अलक्ष्यमयी रूप द्वारा मुद्रित तथा प्रकाशित है एक पुस्तक में दूसरे सूत्रके जोड़े 'प्रणमनाकारप्रतापयोरदकाचो छिटीका' पंक्ता मूत्र अणिक है इसके पदवाचु नारका क्रिया इत्यादि सूत्र है इसका अर्थ यह है कि पृथ्वी भूमि में तेरह मलक है और नीचे २ की भूमिमें जो दो पारि दि अर्थात् प्रथम नरक भूमि में ताइ मलक है दूसरी में त्वायत्र नीलने में जो कोपी में सान लोकनी में पांच अडीमें तीक और नानवोमें एक मलक है । अथ प्रतीमें इसे मय अरो भावा है परन्तु स्वर्गोद्विदि बनि लक्षार्थप्रजाति क अणुप्रजातीको अद्यिका तथा अर्थमद्यिका इत्यादि अर्थों में इनी सूत्रकी वृद्धिमें अथवा उरीकासे उक्त सूत्रका आशय वर्णित कर दिया है देना सर्वाव्यतिष्ठि पुत्र १६८ राजकर्णिक पुत्र ११५ समाधतराणीयिगसूत्र पुत्र ३१ १६ बन्धिका पुत्र ३०२ ३०३ अर्थवकाशिका पुत्र १७३ इन सर्वमें एक तेरह पदलोका कणन है ।

हमारे यहाँ इन मय का प ट और अर्थ एक है न स्वैतावत आभाय क संभाव्य में नारका अय मवी है अथ ताइ नीनो अन्नाचोमें एकका है उक्त समाधक क 'नासु नरका' एक पुनरे पुनके नीकते सूत्रमें अशुभति भागी है तब नारका अय जोडन से बाह अयमय बन्धना बाधना है परन्तु नीनोका प ट है ।

पद्यानिवासी मारुपसहाय कहील कृत पदच्छेद और विपरस्य सतित समायासादिका शक्य हिन्दीअनुवाद । अस्याय २ सूत्र २  
 प्रथमाद्वितीयो कापोती लेश्या, तृतीयायामुपरिष्ठात्कापोती अघो नीला, चतुर्थ्या नीला, पञ्चम्यामुपरि  
 नीला अथ कृष्णा, षष्ठ्या कृष्णा, सप्तम्या परमकृष्णा । स्वायुष प्रमाणावधृता द्रव्यलेश्या उक्ता ॥  
 भावलेश्यास्तु अन्तर्मुहूर्तपरिवर्तिन्य ॥ परिणामा स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दा क्षेत्रविशेषनिमित्तवशादति-  
 दु लहेतवोऽशुभतरा ॥ देहाश्रय तेषामशुभनामकर्मोदयाद्यन्ताशुभतरा विकृताकृतयो हुण्डसस्थाना  
 दुर्दर्शना ऽ तेषामुत्सेध ॥ प्रथमायासप्त धनुषि, त्रयो हस्ता पङ्गुलय ।  
 मयम-द्वितीयो, ॥ कापोतीः लेश्याः ॥ वृगीयाः ॥  
 अग्निसावक कापोतीः ॥  
 अथ कनीलाः ॥ ऋतुर्ष्याम् ॥  
 नीलाः ॥ पञ्चम्याम् ॥ उपरि क  
 नीलाः ॥ ३ अथाः कृष्णाः ॥  
 षष्ठ्याम् ॥ कृष्णाः ॥ सप्तम्याम् ॥ परम कृष्णाः ॥  
 स्र आयुषः ॥ मयाण प्रवृत्ताः ॥ द्रव्य लेश्याः ॥ उक्ता ॥ ॥

= पविली (रत्नमया) अथा दूसरी (अकरामया) में कापोतलेश्या है । तीसरी (बालुकामया) में  
 = ऊपर (क विलोके) रत्नवाले नारकियोके कापोत लेश्या है ।  
 = (इस तीसरी बालुकामया युक्ति) नीव नील लेश्या है । चौथी (पद्ममया युधि) में  
 = नीललेश्या है । पाँचवीं (युग्ममया युधि) में ऊपर (विलोमें) रत्नवाले नारकियोके  
 = षष्ठी (तम मयामयि) में कृष्ण लेश्या है; सातवीं (महावमयुधि) में उत्कर्ष कृष्णलेश्या है  
 = अर्धनीर आयु क परिणाम द्वारा निर्मित कौर्ण्य द्रव्य लेश्यायें कही गई हैं  
 अर्थात् नारकियोके उर्ध्वयुक्त क्रमस कही गई द्रव्य लेश्यायें आयुगत एकसी रहती हैं।  
 = पान्थु पापलेश्या अन्तर्मुहूर्त में पलटती रहती है ।  
 = परिणाम-स्पर्शनसंग-वर्ण और शुद्ध है । स्थानभेदक  
 = निमित्तके वशास (वे परिणाम) अति दुल क कारण अशुभवत्त है ।  
 = और (= च) उन (नारकी औचो) क शरीर अशुग नापकर्मके उदयस  
 = अनियुक्त अशुभवत्त है (और) बुरी आकृतिवाले, हुदक—  
 = संस्थानक्य कुदर्यनीय (= देलनमें बुर) हैं उन(नारकियो)की उपाई मयप युधिमें  
 = सात पाप तीन हाण से गुल है । अर्थात् सप्त इच्छनीस हाण है

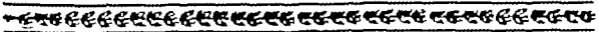
सर्वा  
 १२

लेश्यादयो व्याख्यातार्यो ॥ अशुभतरा इति प्रकर्षनिर्देश । तिर्यगतिविषयाशुभलेश्याद्यपेक्षया, अधोऽत्र स्वगत्यपेक्षया च वेदितव्य ॥ नित्यशब्द आभीक्ष्ण्यवचन ॥ नित्यमशुभतरा लेश्यादयो येषां ते नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रिया नारका ॥

विक्रिया इं; पपमया से तमः प्रथमं अशुभतर लेश्या, परिणाम, देह, वचना, विक्रिया इं, और तपःप्रभासे महत्तमः प्रथमं (सप्तमीं पूर्वमे) अशुभतरलेश्या, परिणाम, देह, वेदना, विक्रिया इं ॥  
 = लेश्या, परिणाम-देह वेदना-विक्रिया (आद्य ) इं  
 = उनके अर्थ (दूसरे अध्याय के ६, ८, ३६ सूत्रों की वृत्तिमें क्रमसे) करणसे इं  
 = (इव सूत्र में) अशुभतर ऐसा (विशरण) अधिकप्रनाक अर्थ इं । तिर्यक्-  
 गतिविषय-अशुभतरा-आदि अपेक्षयाः ॥ तिर्यक्-  
 स्वगति अपेक्षयाः ॥ यथाः अशुभतर लेश्यादि-को-की अपेक्षासे तथा ( = च ) नीचे २ (नरकोंमें)  
 = अपनी गति (अर्थात् नरकगति) को अपेक्षासे (अशुभतर लेश्याओं की ममानता)  
 = माननी चाहिये आषार्य जैसे तिर्यकोंके अशुभतरादि हैं उनकी अपेक्षासे नरक-  
 गति में अशुभतर लेश्या है और नारकियों के परस्पर की अपेक्षासे नरक-  
 नित्य शब्द इं; आभीक्ष्ण्य-वचन इं; नित्यम् इं ॥ गति में अशुभतर लेश्या, अशुभतरपरिणाम, अशुभतरदेह, अशुभतरवेदना अशुभतर विक्रिया इं  
 अशुभतराः ॥ लेश्या आक्षय ॥ दयाम् ॥ = (इस सूत्र में) नित्य शब्द आषार्य अर्थवा निरन्तर होनेका वाक्य है निरन्तर  
 वेद-वेदना-  
 विक्रिया इं; नारकाः ॥ = अशुभतर लेश्या बाते तथा निरन्तर अशुभतर परकतियुक्त और  
 = तथा अशुभतर शरीर सहित तथा निरंतर अशुभतर वेदना वा पीडा सहित  
 = और सबकाच अशुभतर (विक्रियासहित नारकी) कोच इं ॥

दुसरे—लेश्या-आद्यः ॥  
 (पाठ्यपत्र प्रकाशः ॥  
 अशुभतराः ॥ इति प्रकर्ष-निर्देश ॥; तिर्यक्-  
 गतिविषय-अशुभतरा-आदि अपेक्षयाः ॥ यथाः अशुभतर लेश्यादि-को-की अपेक्षासे तथा ( = च ) नीचे २ (नरकोंमें)  
 स्वगति अपेक्षयाः ॥

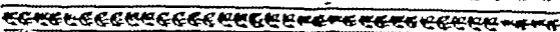
नारकियोंसे नीचे नीचेक नारकियोंके अशुभतरलेश्या, अशुभतरपरिणाम, अशुभतरदेह, अशुभतरवेदना अशुभतर विक्रिया इं  
 नित्य शब्द इं; आभीक्ष्ण्य-वचन इं; नित्यम् इं ॥ गति में अशुभतर लेश्या, अशुभतरपरिणाम, अशुभतरदेह, अशुभतरवेदना अशुभतर विक्रिया इं  
 अशुभतराः ॥ लेश्या आक्षय ॥ दयाम् ॥ = (इस सूत्र में) नित्य शब्द आषार्य अर्थवा निरन्तर होनेका वाक्य है निरन्तर  
 वेद-वेदना-  
 विक्रिया इं; नारकाः ॥ = अशुभतर लेश्या बाते तथा निरन्तर अशुभतर परकतियुक्त और  
 = तथा अशुभतर शरीर सहित तथा निरंतर अशुभतर वेदना वा पीडा सहित  
 = और सबकाच अशुभतर (विक्रियासहित नारकी) कोच इं ॥



एतामिषाती अकरुणसहाय बहील इत पदच्छेद और विपरस्वथ सहित सवार्थसिद्धि का शुद्धय सिन्धी मनुनाद । अथाप ३ सूत्र ३  
 प्रथमाहितीयो कापोती लेश्या, तृतीयायामुपरिष्ठात्कापोती अघो नीला, चतुर्थ्या नीला, पञ्चम्यामुपरि  
 नीला अथ ऽ कृष्णा, षष्ठ्या कृष्णा, सप्तम्यां परमकृष्णा । स्वायुष प्रमाणावधृता द्रव्यलेश्या उक्ता ॥  
 भावलेश्यास्तु भ्रान्तमूर्धुतपरिवर्तित्य ॥ परिणामा स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दा चेत्रविशेषनिमित्तवशादति-  
 दु खहेतवोऽशुभतरा ॥ देहाश्र तेषामशुभनामकर्मोदयादत्यन्ताशुभतरा विकृताकृतयो इष्टससस्थाना  
 दुर्दर्शना ऽ तेषामुत्सेध ॥ प्रथमायासप्त धनूयि, त्रयो हस्ता पङ्गुलय ।

= पहिली (रत्नमया) अथा दुसरी (शाकरामया) अत्रे कापोतलक्षणा है । तीसरी (बालुकायमा) में  
 = ऊपर (क बिलोंक रहनबालु नारकियोंके) कापोत लक्षणा है ।  
 = (इस तीसरी बालुकायमा यधिक) नीच नील लक्षणा है । चौथी (परमया भूमि) में  
 = नील लक्षणा है । पाचवीं (पुममया भूमि) में ऊपर (बिलोंमें रहनेवाले नारकियोंके)  
 = मोललक्षणा है । (इसक) नीच (क बिलोंमें रहनबाले नारकियोंके) कृष्णलेश्या है  
 = षठी (सम प्रथामयि) में कृष्ण लेश्या है; सातवीं (सप्तमभूमि) में सप्तम पर्य कृष्णलेश्या है  
 = अथनीर आयुष परिमाण द्वारा निश्चित कीर्ण प्रत्य लक्षणाये कही गई है  
 सवर्ति नारकियोंक नयर्कत क्रयस कही गई प्रत्य लक्षणाये आयुषक एकती रहती है ।

= पान्नु याबलक्षणा बन्तमूर्धुत में प्लवती रहती है ।  
 = परिणाम-स्पर्श-रस-ग-ध-वर्ण और शब्द है । स्थानमदक  
 = निमित्तक वशासे (ते परिणाम) अति दुःखःक कारण अशुभतर है ।  
 = और (= ५) उत (नारकी नीबी) अशरीर अशुभ नामकर्मके उदयसे  
 = अतिशय अशुभतर है (और) बुरी आकृतिवाली, दुःख-  
 = संस्थानक्य कुदृशीनीव (= देलनमें बुर) है वन(नारकियों)की उन्माद मयम भूमिमें  
 = सात थाप तीन हाप है अगुल है । अर्थात् सवा इकतीस हाप है



एतन्निवासी वाग्म्यसहाय पक्षील कृत पदच्छेदं चौर विपत्त्यर्थं सतिष सर्वार्थसिद्धिषा शब्दशः शिन्वी अनुवाद आध्याय ३ सूत्र ३  
 लेश्यादयो व्याख्यातार्था ॥ अशुभतरा इति प्रकर्षनिर्देश । तिर्यग्गतिविषयाशुभलेश्याद्यपेक्षया,  
 अधोऽथ स्वगत्यपेक्षया च वेदितव्य ॥ नित्यशब्द आभीक्ष्ण्यवचन ॥ नित्यमशुभतरा लेश्या-  
 दयो येषां ते नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रिया नारका ॥

सिद्धि

विक्रिया इ; धयमया से तपः प्रयामे अशुभतर लक्षणा, परिणाम, देह, वचना, विक्रिया है; और  
 तपःप्रयासे महात्मः प्रयामे (सातमीं भूमिमें) अशुभतरलेश्या, परिणाम, देह, वचना, विक्रिया है; और

- इत्थं—लेश्या-आद्याः।
- व्याख्यात अर्थाः।
- अशुभतराः। इति अ-प्रकर्ष-निर्देशः। तिर्यक्-
- गतिविषय-अशुभलेश्या आदि अपेक्षयाः। चमप अथ = गतिविषय, अशुभलेश्यादिकोंकी अपेक्षासे तथा (= च) नीचे २ (नरकोंमें)
- सगति अपेक्षयाः॥
- वदितव्यः।
- = लेश्या, परिणाम-देह वेदना विक्रियां (आद्याः) है
- = उनके अर्थ (दूसरे अध्याय के ६, ८, २६ सूत्रों की वृत्तिमें अपसे) करोगये है
- = (इम सूत्र में) अशुभतर पेसा (विशेषण) अधिकपनाक अर्थ है । तिर्यक्-
- = अपनी गति (अर्थात् नरकगति) की अपेक्षासे (अशुभतर लेश्याओं की तथातवा)
- = आतनी वाशिये माकार्य जैसे तिर्यकोंके अशुभलेश्यादि है उनकी अपेक्षासे नरक

नारकियोंसे नीचे नीचेके नारकियोंके अशुभतरलेश्या, अशुभतरपरिणाम, अशुभतरदेह, अशुभतरवेदना अशुभतर विक्रियां इ  
 नित्य-शब्दः। आभीक्ष्ण्य-वचनः। नित्यम्॥  
 अशुभतराः। लेश्या आद्याः। याम्।  
 तैः। नित्य-अशुभतर-लेश्या परिणाम-  
 देह-वेदना-  
 विक्रियाः। नारकाः।  
 गति में अशुभतर लेश्या है और नारकियों क परस्पर की अपेक्षासे ऊपर के  
 = (इस सूत्रमें) निरय शब्द बारबार अथवा निरन्तर होनेका वाक्य है निरन्तर  
 = अशुभतर ई लेश्या, परिणाम, शरीर, पीड़ा, और विक्रिया (= आद्या) जिनक  
 = व नित्य अशुभतर लेश्या वाले तथा निरन्तर अशुभतरपरिणामियुक्त और  
 = सदा अशुभतर शरीर सहित तथा निरन्तर अशुभतर वेदना वा पीड़ा सहित  
 = और सदाबार अशुभतर (विक्रियासहित) नारकों की है ॥

एतानिषामी मारुतासाप कर्कोल कुत पृच्छेद् और विपरत्यर्थे सतिव सर्वावसिद्धिका शब्दस्य सिन्धी अनुवाद् आध्याय ३ सम् ४

॥ परस्परोदीरितदुःखाः ॥ ४ ॥

कथ परस्परोदीरितदु खत्वं नारकाणाम् । भयप्रत्ययेनावधिना मिथ्यादर्शनोदयाद्विमङ्गव्यपदेश-  
भाजा च दूरादेवदु खहेतूनागम्योत्पन्नदु खा प्रत्यासत्तौ परस्परालोकाच्च प्रज्वलितकोपाग्रय  
पूर्वभगानुस्मरणान्घृतितीताननुभवैराथ शृगालादिवस्त्राभिघ्राते प्रवर्तमाना

सूत्रम्-परस्परोदीरितदु खा ॥ ४ ॥ = (नारका) परस्पर-उदीरित-दु खा (भवन्ति) ॥ ४ ॥  
समाप-नारकाः! परस्पर उदीरित दु खाः! भवन्ति

युष्मन्नुवाद् — कथं परस्पर उदीरित —  
दुःखत्वं! नारकाणाम्! मिथ्या-दर्शन उदयात्!।  
विषय-उपपन्न-भाजा! भवत्पयत्न! प्रवर्तिता!। एक(४) = विमानामक वा निर्गम नामकाधारक भवनिमित्तक अभिप्राधानकरि  
दूरात्!। एव० दुःखहेतु!। अबागम्य-  
उत्पन्न-दु खाः!। व० मति-भासर्पा!। परस्पर  
भासोक्तनात्!। मज्जलिग-कोप-अग्रयः!। ए०  
पूर्व भव अनुस्मरणान्घृति॥ अतिनीच  
अनुपद्वैराः!। व० शृगाल आदिषुत्  
एव प्रनिगत!। प्रवर्तमानाः!।

= नारकी भीष परस्पर उत्सर्कियाहुआ दु ख (एक दूसरको) दनवाले होते हैं।  
अर्थात् कुत्तोंकी मति निरन्तर एक दूसरक साथ लड़ते भगवत रहत है।  
(प्रश्न) कैसे आपसमें (एक दूसरे को) क्रियाहुआ भयबा उपमायाहुआ  
= नारकीभीषात् दुख हाता (= दुःखत्वं) है। मिथ्या दर्शनके उदय होनेसे  
= विमानामक वा निर्गम नामकाधारक भवनिमित्तक अभिप्राधानकरि  
= दूसर ही (नारकी भीष) दुःखक कारणोंसे जानकर  
= योद्गा उपमाएं ह आर (= व)अग्नि निकट होनेपर आपसमें (एक दूसर को)  
= उत्पन्नन कारणकी अग्नि मज्जला है जिनके अर्थात् तीव्रकापयुक्तहामात ह ॥ तथा  
= परिश्रम अन्धक गुर वा निकट (= अनु) स्मरणस अतिवीच और  
= दुः (= अनुपद्व) वैरस्य शेष ह और (= व)सिपार भयबा गीदृष्ट आदिके सहश  
= भयन याव (करन) में प्रवर्तते हैं अर्थात् जैसे गीदृष्ट कुच आदि भय गीदृष्ट  
कुच आदिका दल कर निदयता पूर्वक कोच करत हैं तथा परस्पर दार्दिकी  
महार करत है तैसी नारकी भीष एक दूसरक और अपने यात करनेमें प्रवर्तते हैं।  
एक है। (२) दूरात् शब्द मिलिगे है। (३) अबागम्य शब्द सम्बन्धक गूण उदय है।  
(४) व याव्य भुपक क्रिय है। (५) अनु शब्दका कार्य परबन्धकाशने निदृष्ट किया है निदृष्ट शरत्सल' अभिप्राय है कि नारकी जीवोंका कुमनविस  
दुर्न मगकी गुरी बागोंको लुचि मालो है मली शानो की नहो।

(१) इत् स्वक गठ और मयं शानो मयंशानोमे  
(२) व याव्य भुपक क्रिय है। (५) अनु शब्दका कार्य परबन्धकाशने निदृष्ट किया है निदृष्ट शरत्सल' अभिप्राय है कि नारकी जीवोंका कुमनविस  
दुर्न मगकी गुरी बागोंको लुचि मालो है मली शानो की नहो।



एतानिषासो अग्ररूपसहाय षड्बीज कृत पदम्बद् और विपरस्यथ सशिव सर्वायसिद्धिषा शब्दशः हिंयी अनुवाद अन्वय ३ सूत्र ३  
 अत्रोऽगोह्रिगुणाद्विगुण उरत्सेध ॥ अभ्यन्तरासद्द्वेद्योदये सति अनादिपारिणामिकशीतोष्णब्राह्मनिमित्त-  
 जनिता सूतीव्रा वेदना भवन्ति नारकायाम् ॥ प्रथमाद्वितीयातृतीयाचतुर्थीषु उष्णवेदनान्येव नरकाणि  
 पचम्यासुपरि उष्णवेदने द्वे नरकशतसहस्रे । अध शीतवेदनमेक शतसहस्रम् । षष्ठीसप्तम्यो शीत-  
 वेदनाय्येव ॥ शुभं करिष्याम इति अशुभतरमेव विकूर्वन्ति, सुखहेतुनरुपादयाम इति दु खहेतुनेवो-  
 त्पादयन्ति । त एते भावा अथोऽत्रोऽशुभतरा वेदितव्या ॥

किमेतेषा नारकाणां शीतोष्णजनितमेव दु खमुतान्यथापि भवतीत्यत आह—

अपस अय ० विमुक्तदिएण ॥ उत्सेय ॥ अम्पन्तर = नीच २ (उपाक नरकसे परकसे नरकमें) दूनी २ उचाई है । अन्तरंग  
 अघर्त्तय उदय । सति । अनादि-पारिणामिक  
 शीत-उष्ण गण-निमित्त अनिकाः ॥ पुरीमा ! वेदनाः ॥ = असाधारण रूपके उदय होनेपर अनादिब्रह्म परिणामनरक (भूमिका)  
 परति न नारकः ॥ अयम-द्वितीया-तृतीया  
 पुरुषिणु ॥ उष्णवेदनानि ॥ एव नरकाणि ॥ = शोभी है । नारकशोके पहिलो (भूमि)में दूसरी (शर्करामया)में तीसरी (बाहुकामया)में  
 पंचम्यासु ॥ अयि ० उष्णवेदनानि ॥ इहे ॥ = षोषी (पशुमया पृथिवी)में उष्ण वेदना रूप ही बिल है  
 नरकशत-सहस्रः ॥ अय ० शीतवेदनानि ॥ = पाँचवीं भूमिमें उपाक वेदना रूप ही बिल है  
 एषु ॥ अश-सहस्रम् ॥ पृथ-सप्तम्योः ॥ = छाल बिल है । पाँचवीं भूमिमें शीत वेदना रूप ही बिल है  
 शीतवेदनानि ॥ एव नरकाणि ॥ इहे ॥ = एत साल (बिले) है । छठी (सप्त मया भूमि) में और सातवीं (महातपमया भूमि)में  
 अशुभकरम् ॥ विकृन्ति ॥ सुखहेतुः । उत्सादयाम ॥ = शीतवेदना ही है । अच्छी (बिम्बवा) हम करेगे पसे (नारकी बिचारे है)  
 इति दुःखवेदना । तत्पादयन्ति ॥ = परन्तु अशुभतर ही करते है । सुख के कारण हम पैदा करेगे ।  
 तं । एत । यावाः ॥ अय ० अय ० अशुभतराः ॥ = इस प्रकार (नारकी भी बिचार करत है परन्तु) दु खके कारणही क्याते है  
 वेदितव्या ॥ किमुक्तेरुपासुः । नारकाणासुः ॥ = ते य परिणाम (एक नरककी अपेक्षास दुःखमें) भीचे कारणही क्याते है  
 शीत-उष्ण-जनितम् ॥ एव नरकाणि ॥ अय ० दुःखम् ॥ = जानना चाहिये ॥ (यस) क्या इन नारकियोंके  
 कल्पया ० अवि ० परति ॥ इति ० आह ॥ = शीत और उष्णस अत्यन्त दुःखा ही दुःख है अथवा  
 = अत्यन्त प्रकार भी (नारकी भी)को दुःख) होता है अतः (अप्रिय सुख में) कहते है कि

पदानिवासी भाग्यसर्वदाय धर्मीय छुट वरुणेश्वर और विभक्त्यर्थ सच्चिद सबर्णिसिद्धिभा शम्भुदा: दिव्यी अनुनाद कात्याय ३ रासु १

व्याकरणके सूत्रोंके अन्तसार बाना है आ लक्ष्यविधन सत्यादा बाना है अतः कीछि यद्यथागि इत वाक्य में यस्यानि शब्द प्रथमा विद्यन्ति यदुत्तरस्य  
 मनुलक सिद्धिमें है। कीछि शब्द भी आ यच्चिवादि शब्द का विधायक है प्रथमा विभक्ति यदुत्तरस्य मनुलक सिद्धिमें है परन्तु यदुत्तर से अनन्तर  
 (यद्योः) तक की विभक्ति कीट पद्य यही होता है आ सँका का सिद्धि नहीं होना को वाक्यरचना नहीं है अतः एत युक्तता न सद्यो ग गय यति  
 (संस्कृत गृह ६७) यही पर सत सती नम सीतो शब्दों का काइ भी लक्ष्यन प्रथमा विभक्ति (कारक) ही है आ अंति शब्दका ही पररु अंति शब्द का यदुत्तरस्य  
 त्योसिद्धि मध्यम है, (सिग सत्य-सही नय शब्दों का काइ भी लक्ष्यन प्रथमा विभक्ति य सीतो शब्द यदुत्तर ही बाना है कीट सीतो सिद्धि में यदुत्तर ही ऊपर  
 पररु है यद्युमें शब्द सूचि के लिये सूत्र में आया है न कि नरक शब्द क लिये। अथमाक शब्द क साथ यस्यो विभक्ति है एता यदुत्तरों पंचमी विभक्ति  
 पदकथन सीसिद्धि यद्यु ही शब्द का है पररु यद्युकी पंचमी विभक्ति यद्युका शब्द कीट यद्युका शब्द क साथ यस्यो विभक्ति है एता यदुत्तरों पंचमी विभक्ति  
 कावापक किती सूत्रमें दूसरे सूत्रका पाठकक मरक शब्द नहीं आया है नरक शब्द दूसरे सूत्रमें दिव्यो न सार्थमें है एतप्रमा शकारायाया यालुकाप्रमा पंच  
 प्रमा यद्येवमा तम प्रमा मंदारतयप्रमाक सार्थ में नहीं है। नारका शब्द तीसरे सूत्र में आया है उदाहा का नरकक तु का सहाय करतवाना नारकी  
 कोनोके है। एतल नरक शब्दकी अनुपुच्छि इस सूत्रमें संना आयुक्त है यद्ये सूत्रमें सूचि शब्द साथ है एतल गति शब्द की अनुपुच्छि पंचमी सूत्रमें  
 आती है न कि नरक शब्दकी।

यदि इम यद्युः। एता पाठ यद्यु गा सार्थमें निप्रमा होना सार्थमें नारक (० नारकीयोंक रदोकाविल) एतया सार्थ योज्यायमा आ सागर  
 दिव्य है सूत्र व्याकरणक अनुसार यद्युः की वोज्यायमा। प्राक् यद्युः शब्दों ० यद्यो यद्युः ममित पहिल सार्थमें तीसरी सूत्ररी कीट यद्यो गति तक  
 प्राक् यद्युः ० नार(नरकी) न यद्युः कायं गति गी गार बिलोक यदल परस न

यद्युः यह पाकप पहिल कावाप क तीसरी सूत्र में 'यदुत्तरस्य आ यद्युः' दूसरे कात्याय क सट्टादसर्वां सवसे संसारिय प्राक्  
 यद्युः' कीट धरती सूत्रमें 'आ यद्युः' साथ है प्राक् (० सार्)का सार्थ तक ना यद्युः है कीट प्राक का सार्थ पहिल पहिल ही का यद्युः, पहिला  
 'आन शब्द का विधायक है को यद्युः लक्ष्यन है। दूसरा आ यद्युः शब्दोंका विधायक है आ अनुसकसिद्धि है। तीसरा प्राक् यद्युः समय शब्दका  
 पदकथनक है समय शब्द पुच्छिमें है। सत्यक रथ कि यद्युः यद्युः शब्दकी पंचमी विभक्ति यदुत्तरस्य मनुलकसिद्धि कीट पुच्छि में सार्थमें यद्युः शब्दकी  
 पंचमीविभक्ति मनुलक कीट पुच्छिमें एकही ऊपर यद्युः 'पारल करती है इवम 'प्राक् यद्युः' सीसिद्धि नहीं होलकता है एतलिये यह यद्युः है।



एतन्निवासी नाकपर्वशाय बकिल छाप पण्डित और निपत्सर्व सवित्र सार्थसिद्धिका शब्दार्थः हिन्दी अनुवाद अध्याय ३ सूत्र ५

ब्राह्मणोंके सूत्रोंके अनुसार हागा है जो सम्प्रिय सवाया हागा है उस अधि बलवान इस वाक्य में बलवान शब्द प्रथमा विभक्ति बहुवचन  
 नपुंसक लिङ्गमें है। जोकि शब्द सो आ बलियानि शब्द का विशेष है प्रथमा विभक्ति बहुवचन नपुंसक लिङ्गमें है परन्तु पठकर उस मन्वदशब्द  
 (अथवा) तब की विभक्ति और बलव बनी होता है आ सवा का लिङ्ग बनी होने की आवश्यकता नहीं है उस "सत सुमया न शयो न नय दन्ति"  
 (संस्कृत गृह १६०) वहाँ पर सत शब्दो नय शब्दों का बहुवचन प्रथमा विभक्ति (कारण) हा है आ अति शब्दका है परन्तु अति शब्द का बहुवचन  
 पठकर सत शब्दों के लिये सूत्र में आया है न कि नरक शब्द का शिव। अत्राक शब्द का साथ पञ्चमी विभक्ति है सा बहुवचन पञ्चमी विभक्ति  
 अर्थात् किसी सूत्रमें दूसरे सूत्रका आह्वार नरक शब्द नहीं आया है नरक शब्द और पुष्पिग अथवा नपुंसक लिङ्ग है। नरक शब्द पुष्पिग है इस  
 प्रमा पूर्वप्रथमा सत प्रमा महात्मनाका अर्थ में नहीं है। नरका शब्द नासरे सूत्र में लाया है उसका अर्थ नरकका अर्थ है परन्तु शब्दका बहुवचन  
 जीवोंके है। इससे नरक शब्दको अनुवृत्ति इस सूत्रमें लेना अनुकूल है विले सूत्रमें अति शब्द साथ है इससे अति शब्द की अनुवृत्ति पञ्चमी सूत्रमें  
 आनी है न कि नरक शब्दको।

यदि हम चतुर्थः एसा पाठ पढ़ें या अर्थमें विचारा होवो अर्थमें नरक (० नरक) शब्दको द्वाविभक्ति) एसा अर्थ हाजावगा आ आगम  
 विच्छ है सूत्र व्याकरणके अनुसार भी हाजावगा। प्राक् चतुर्थः ० चौथी पदप्रमा अभिस पहिले अर्थों कीसरी दूसरो और पहिली अभि तब  
 चतुर्थः यह वाक्य पहिले अर्थपर के तोसर्वा सत में 'एकस्मिन् आ चतुर्थः' दूसरे अर्थ पर एक कट्टासतवां सतमें संसारिक प्राक्  
 "आन शब्द का विशेष है आ नपु संज्ञिका है। दूसरा अर्थ (० आ) का अर्थ तब ना पर्यन्त है और प्राक् का अर्थ पहिले पहिले है आ चतुर्थः पहिला  
 गुणवाचक है सतप शब्द पुष्पिग है। शरत् रथे कि चतुर्थः अतरे शब्दको विशेष है आ नपुंसक लिङ्ग है। तीसरा प्राक् चतुर्थः सतप शब्दका  
 पञ्चमीविभक्ति नपुंसक और पुष्पिगमें पठकी रूप चतुर्थः प्राक् पठती है अथवा प्राक् चतुर्थः अनुवृत्त नपुंसक लिङ्ग और पुष्पिग है अर्थात् अतरे शब्दकी  
 अनुवृत्ति है।

सिद्धि

पुननिपाती आग्रस्यसहाय बहोला कृत पदच्छेद और विपयस्य सहित सभायसिद्धिका शक्यः शिन्दीभनुषाद । अघ्याय ३ सूत्र ४ और ५  
 स्वत्रिक्रियाकृतसिवासिपरशुभिग्निहमालशक्तितोमरकुन्तायोघनादिभिरायुधै स्वकरचरणदशानैश्च  
 छेदनभेदनतज्जणदशनादिभि परस्परस्यातितीव्रदु खमुत्पादयन्ति ॥  
 किमेतावानेव दु खोत्पत्तिकारणप्रकार उतान्योपि कश्चिदस्तीत्यत आह—

॥ संक्लिष्टासुरोदीरितदुःखाश्च प्राक्चतुर्थ्याः ॥ ५ ॥

स्व-विक्रिया छन-भसि-भासि-पराशु-  
 विरिधे वाक्-शक्ति-नोवा-कुन्त  
 अयस्यन आदिपि-१॥ भापुषे ॥॥ चकस-कर-  
 पाण-युगैः ॥ छेदन भेदन-जखण-युग  
 आक्षिपिः ॥ परस्परः ॥ प्रतिगीमः ॥॥ दुःख्यः ॥॥  
 उलाहयन्ति ॥ मिमं पलाकान् ॥ एव दुःख उत्पत्ति  
 कारण-यकारः ॥ नकमन्य ॥ अधिककमित्क भस्ति इति ॥  
 अतः आह ॥

= अपनी कीदूई विक्रियास वरवार( = भसि) कुपडाडा( = बासि) फरसा (पराशु)  
 = बन्दूक( = विरिधे) वाक्क( = वाक) शक्ति बर्धी खोहेक दंढे(नोपर)मालासेल( = कुन्त)  
 = खोहेके पन आदिक् बरस शक्य द्वारा( = आयुषे) और ( = च) अपने हाथ  
 = पण दीतीकर छेदनायेदना कीसना( = जखण) काटना ( दयान )  
 = आदिक् ( क्रिया ) से आपसकी अतितीव्र पीडाको  
 = उत्पन्न करते हैं । क्या इनन ही दु ख उत्पन्नकोनके  
 = इत अन्यवेद हैं अथवा कुम दूसरा ( = अन्य) भी है  
 = इस निय ( अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि—

सूत्रम्—संक्लिष्टासुरोदीरितदुःखाश्च प्राक्चतुर्थ्या  
 सुभायः— नारकाः ॥ पाङ्कसपुण्या ॥  
 संक्लिष्ट—असुर  
 उदीरित—दुःखा ॥ ५ ॥

= नारकीभीष वीषी (पंकपमा भूमिसे परिले) शीसरी भूमि पर्यंत  
 = क्रेश (परिणामोक्त) युक्त असुरोदारा या क्रेश यापोंके पारक असुरोद्धरि  
 = उलाहिन ( = उदीरित) दुःख भी सहते हैं

( १ ) रामो सप्रयातोमे इस सूत्रका अर्थ और पाठ एकसा है । ( २ ) अनुषादक के पास हम समय मूल सूत्रों को बहुत ही प्रतिये हैं । उनमेंके  
 सरामुलकोही से प्रतिगोमे और बाणकामुकी बाणीको एक गतिमें "माङ्क अपुण्या" देखा पाठ है और छेव गतिकोमे "माङ्क अपुण्या" देखा पाठ है ।  
 इन तीन प्रतिगोका गठ अनुक्तिन आम पठना है क्योंकि एक कि कि अउर एं समय एउर एणवि उगोस पर्यंत ए सुवपाये किन सवपासे कस्यस्य  
 एकी है इस नका का विरोधक पढवाती है । एक कि कि अउर एक संवपाकोवा बही विमकि बही समय और बही निम संवकनपायाके

एतन्निवासी आरुणसहाय बकील छव गदखेद और विपरस्ये सवित सर्वोसिद्धिहा शक्यञ्च सिद्धी अनन्दाद् अध्याय ३ सप्त ५  
 अत्रिप्रदर्शनार्थं प्राक्चतुर्थ्या इति विशेषणम् ॥ उपरि तिसृषु पृथ्वीषु सङ्क्रियासुरा बाधाहेतवो  
 नात् परमिति प्रदर्शनार्थम् ॥ चशब्द पूर्वेक्तदु खहेतुसमुच्चयाथ ॥ सुतसायोरसपायननिष्टसाय-  
 स्तम्भालिङ्गनकृतशाल्मल्यारोह्याणवतरणायोधनाभिघातवासीक्षुरतज्जणचारतप्ततैल-

अपरि तदयन भागम् ॥ प्राक्चतुर्थ्या ॥

इति० त्रियाणम् ॥॥ अत्रिअतिसृग् ॥  
 पुष्पीषु ॥ सङ्क्रिया-असुराः ॥ वाया इतषः ॥  
 न० मत ० परम् ०

इति० तदयन - अर्थात् ॥॥  
 च-शब्दः ॥ पूव उक्त  
 दु ख-हेतु-सायण्य अर्थः ॥

एतान्-अयस् रस-पायन-निष्टस-अयस्-  
 स्तम्भ आलिगन-हृ  
 शाग्मति (शान्मती)-मारोहण अचरण-  
 अयस्-यत्न-अभिघात-वासी-  
 क्षुर-तज्जण-चार-वस्तैल-

- = यथादा दिग्वाचनक लिय ( इस सूत्रमें ) प्राक्, चतुर्थ्याः  
 ( अर्थात्-चौथी एकप्रभाभूमिस पहिल पहिले तीसरी बालुकाप्रभा भूमिची पर्यंत )
- = एसा गुणवाचक ( वाच्य ) है । ऊपरकी तीन । रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा )
- = भूमियोंमें सङ्क्रिय परिणामबाल असुर ( नारदिकोंको ) पीड़ा ( उपमाने ) क कारण है
- = नही द इम ( तीसरी बालुकाप्रभाभूमि)से आगद(एकप्रभा, यूपप्रभा, तमःप्रभा  
 महातप प्रभा भूमियों)इन असुरों द्वारा पीडा उपभावनेका हेतु )
- = एसा दिग्वाचन क लिय ( प्राक् चतुर्थ्या वाच्य सत्रमें ) है ।
- = ( इस सत्रमें ) यथाच पहिले कहेगय ( = तीसरे और चौथे सूत्रोंमें कि अशुभतर -  
 लरणा परिणामादिस उत्पन्न तथा परस्पर कारणसे उत्पन्न )
- = दुखोंक कारणोंक सचयक लिय है तात्पर्य यह है कि अशुभतर

- लरणा परिणामादिइस उत्पन्न बदना तथा परस्पर कारणस उत्पन्न पीडा  
 आग असुरोंक द्वारा ( तीसर नरक तक ) उत्पन्न वाया इतमकार नारकी  
 बीजोंका तीन प्रकारक दु ख ज्ञान है ।
- = अति संतप्त छोरे ( अयस् ) क रसक पिछानेस, अति संतप्त लोरेके  
 = सम्भस आलिगन करानेसे, माया रचित अथवा मिथ्याभूत  
 = समस्तक वृत्त अर्थात् शूलीपर चढ़ानस, और उवारनस,  
 = लोरेके ( अयस् ) यनस वाइनादि करि ( अभिघात ), कुम्भ, जा ( वासी ) वसुला ( वासी ) तथा  
 = धुरादारा काटने ( = वज्रण ) खोखना ( तज्जण ) स, खारेयानी ( = क्षार ) तथा अतिज्वल्यस्तलस

पदानिषाधी आगम्यसाधय बद्धील कृत एवञ्छेद और विभवस्यय सशिव सर्वाणिसिद्धिका शम्बुश विन्दीकनुबाद । अथप्राय ३ सूत्र ५  
 देवगतिनामकर्मविकल्पस्यासुरत्वसर्वतनस्य कर्मण उदयादस्यन्ति परानित्यसुरा । पूर्वजन्मनि  
 सम्भावितेनानितीव्रेश सङ्केशपरिणामेन यदुपाजित पापकर्म तस्योदयात्सततं क्लिष्टा संक्लिष्टा ।  
 संक्लिष्टा असुरा संक्लिष्टासुरा । संक्लिष्टा इति विशेषणान्न सर्वे असुरा नारकाणा इव लघुत्पादयन्ति ।  
 किंतिहं, अम्बावरीषादय एव केचनेति ॥

देवगतिनामकर्म विकल्पस्यारं॥ असुरत्वसर्वतनस्ये॥॥  
 कर्मण ॥॥ उदयात् ॥ अस्यन्ति परान ॥ इति असुरा ॥  
 पूर्वजन्मनि॥ सम्भावितेन॥ अतितीव्रेशः॥

संक्लेशपरिणामेन॥ यदु॥ यान्ति॥ पापकर्म॥॥  
 तस्ये॥ उदयात्॥ सर्वतं॥ क्लिष्टाः॥ संक्लिष्टाः॥  
 संक्लिष्टाः॥ असुरा ॥ संक्लिष्टा असुरा ॥  
 संक्लिष्टा इति ॥ विशेषणान्न ॥॥

सर्वे॥ असुरा ॥ नारकाणां॥ दुलसुरा॥ नकडत्याव्यन्ति ॥  
 क्लि ॥ नरी ॥  
 अत्र अशरीय आदय ॥ एव ॥ केचन ॥ इति ॥

(१) अथप्रायसाधय " क क्णान्ति सभाप्यतत्वागोचिनामसुत्रने अम्बावरीषादय इ ।

अत्र अशरीय इत्यस शब्द इत् उपलब्ध काङ्क-नाराकाङ्कस्य असिपषयन = अम्ब, अम्बरीय इत्यस शब्द इत् उपलब्ध काङ्क महाकाङ्कस्य असिपषयन  
 कुम्भी पानुम्भी-वैतरकी कर इतर महोत्तोर  
 पषयत् ॥ एते संक्लिष्टा ॥ असुरा ॥  
 नारकीषाम् ॥ केचन ॥ अम्बरीयव्यति

= देवगति नामक नामकर्मका वेद जो असुरत्वसर्वतन तिस  
 = कर्मके उदयसे दूसरोंको केंकते हैं अर्थात् कुल देते हैं ऐसे असुर हैं  
 = पहिले यवमें हासकने योग्य बहुत तीव्र  
 = संक्लेश माषकर जो पापकर्म उपार्जन किया है  
 = विसृष्ट उदय स निरन्तर अशुभक या क्लिष्टिव (= क्लिष्ट) से संक्लिष्टा है  
 = निरन्तर अशुभक परिणामवाले (= संक्लिष्टा) असुर (हैं वे) संक्लिष्टा असुर हैं  
 = संक्लिष्टा ऐसे विशेषण-स अर्थात् असुरा शम्बुके पहिले जो 'संक्लिष्टा' विशेषण हैं  
 उतस (अथप्राय है कि)  
 = सच असुरकुमार नारकियोंकी पीडा नहीं सत्यम करते हैं  
 = वो (नारकियोंको) कौन (असुर कुमार पीडा देते) हैं  
 = अम्ब, अम्बरीय (= अम्बरीय) आदि (आतिके असुर) ही कौरे ऐसे पीडा देते हैं

= नारकियोंके वेदना (पीडा)अप्यक कर्त्ते हैं (समाप्यतत्वागोचिनामसुत्रपृ०७५ ३५१)

प्राग्निवासी आकाशशाय बहीशुद्ध पक्वक्षेत्र और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धि का शब्दशः शिन्वी अनुसंधान अर्थात् ३ सूत्र ६

इस सूत्रमें नरक शब्द की अनुवृत्ति सप्तमी विभक्ति बहुवचन पुलिग बा अनुसक्तबिगमे लाये है जिसका कार्य जीवोंकी है और पुत्र्यपादस्वामीशुद्ध सशुद्धवृत्तिमें सप्तमानी शब्दको सप्तमे आनन वा यह कारण बताया है कि "एक लीन सप्त इत्यादिक सागरीकी स्थिति "मूषकः" शब्दसे सप्तम्य न करण्य अर्थात् ऐसा कार्य तो करनेके लिए लाते हैं कि एक लीन सप्त इत्यादिक सागरीकी स्थिति मृगियों वा पुच्छीकीही है। इसका यह कारण निकला कि एकलीन सप्त इत्यादि सागरीकी स्थिती जीवोंकी है "पृथिवी अपवा मृगि की मही है।

(क) स्थिति का सम्बन्ध मृगि शब्दके साथ न होजायै (ख) तेषु (ग) सप्तमानी एक संषयमें आ विचार और आठ भेदे इत्यर्थमें अल्पत्र रूप है उनका उल्लेख पाठकी ही सप्तमे मन्त्रलाप्युक्त इस प्रकार है कि -

(ख) 'व्याख्यामनो विशयमतिपरिनिदि संशेहाल्लक्षणा' = (वाक्यका) वषार्थ आशुष्य (= विद्युत्प्रतिपत्ति) व्याख्यामसे (अर्थात्) परस्पर शब्दोंका संबंध वा अन्वय करनेसे) निकला है क्योंकि (वाक्यकी) संशेद्वय वा संशियार्थ शब्दसे (= संशेदात्) अलक्ष्यता अर्थात् अभिविद्यवत्भाव वा अर्थ (= अलक्ष्यत्) नहीं (नहि) होनी है इस परिभाषाके अनुसार नारदियोंसे स्थिति शब्दका संबंध हाकाला है नकि मृगि शब्दसे।

(क) तेषु (= तिनमें उनमें) = नरकेय (= नरकोंमें) = पुत्र्यपाद स्वामीन 'तपु'का यही अर्थ लिया है। नरक शब्द उमास्वामी सूत्रसे सूत्रमें किसी सूत्रमें नरक शब्द नहीं आया है परन्तु पुत्र्यपाद स्वामीमें 'मृगि'का अर्थ ब्रह्मिण्यै जैसाकि तपु नरकेयु मृगिकेत्यु यथासक्यमैकाव्यस्थितयो एमि समक्यमथ एतमगायामुरुष्टा शिवतिरेक सागरोपमा इत्यादि सात वाक्योंस संस्कृतवृत्तिम प्रगट है। सप्तम्य वहे कि प्रथम मृगिमें तीसलाख दूसरीमें पचीसलाख इत्यादि नरक हैं। तब अर्थ यह हुआ कि तीसलाख नरकोंमें एकसागरकी शठष्ट स्थिति नारकजीवोंकी है। पचीसलाख नरकोंमें नारदजीवोंकी शठष्ट स्थिति तीससागरकी है इत्यादि। 'तास्येक (= तास्येक = तिन मृगियोंमें एकसागर इत्यादि) पाठसे सब क्रियता आती रहती है और पुत्र्यपाद स्वामीके अनुकूल सोधावाचा अर्थ निकल आता है कि तिन मृगियोंमें, क्रमसे शठष्ट स्थिति एक लीन इत्यादि सागरी की है। तासु = तासु मृगियु। तासु शब्द सूत्रसे सूत्रमें भी आया है। 'तासु शब्दकी अनुवृत्तिमें इस सूत्रमें लेसकत है परंतु तेषु (= तासु) स्पष्टनाके लिये है।

(ग) सप्तमानी = जीवोंकी तीसरे नरकक अनुकूलारथ्य स्वर्गके देव इत्यादि भी जात हैं। इसलिये 'सप्तमानी'से आशुष्य नारकाणुसप्तमानी बापकसे ही अर्थात् नारकी जीवोंकी आकाश 'नारका' शब्द इस कारणसे तीसरे सूत्रमें आया है और उसकी अनुवृत्ति बोधे और वाक्ये सूत्रमें ली है। इस सूत्रमें भी यही विभक्ति बहुवचनके अर्थमें (नारका) शब्दका प्रयोग इसकारणसे किया है कि सूत्र स्पष्ट हाकाली और सप्तमानी शब्दको देखकर पाठक काम बल सकता था परंतु क्या स्वामीने सप्तमानी शब्दका प्रयोग इसकारणसे किया है कि सूत्र स्पष्ट हाकाली और सप्तमानी शब्दको देखकर पाठक सप्तमानी समझले कि इसमें नारकाका ही अनुवृत्ति अक्षर्य आती है सप्तमानी स केवल काम नहीं बल सप्तमानी शब्दको देखकर पाठक जीवोंकी शठष्ट स्थिति है कि नारकी जीवोंकी (शठष्ट स्थिति है)। हमारे कई मंत्रोंका विचार है कि नारकियोंकी स्थितिसे प्रयाज्य है। और उपयुक्त परिभाषासे पाठक समझ लेत कि नारकियोंकी स्थितिसे प्रयाज्य है।



एतन्निवासी अरुणसहाय बक्रीक कृत पदच्छेद औग विभास्यय सहित सवायसिद्धिका शब्दशा हिन्दीअनुवाद । अर्थात् ३ सूत्र ५ और ६  
 स्वसेचनाय कुम्भीपाकान्वरीषभर्जनवैतरणीमज्जनयन्त्रनिष्पीडनादिभिनरिकाणा दु खमुत्पादयन्ति ॥  
 एवं त्रेतनभेदनादिभि शक्लीकृतमूर्तीनामपि तेषा न मरणमकाले भवति । कुत ? अनपत्यायुष्क-  
 त्वात् ॥ यद्येवं, तदेव तावदुच्यता नारकाणामायु परिमाणमित्यत आह—  
 तेष्वेकत्रिसदशसदशदशद्विंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा

### सत्रानां परा स्थितिः ॥ ६ ॥

अत्रमेवम अयम् कुम्भीनाक सम्बरीप भजन  
 वैतरणी-मज्जन-यन्त्र-निष्पीडन आदिभि ।  
 नारकाणाम् दुःखम् ॥ उत्पादयन्ति; एषु बदन भेदनादिभि  
 शक्लीकृत-मूर्तीनाम् ॥ अपि कृतमाम् ।  
 न कसराणाम् ॥ अकाले । भवति । इत व ।  
 अत्रमपत्य आयुःकृतान् ॥ ॥

= सीपनकरि छोटक यद्येमे पकानस प्रपुखमे भ्रमनेस  
 = वैतरणीनन्मिमे दुबानस, (कोम्बु आदि) कलौ (यत्र)मे पेखनादि करि  
 = नारकीनके बदन उपप्राते हे । इस प्रकार बदन भेदनात्मिक करि  
 = शरीरके बदनम्बद किपमानपर (= कुत)भी तिन (नारकी)भी (विना आयु पृष्णकिय)  
 (= अकालमे वा भयभरमे मृत्यु नहीं होतीहे । (मरन)मयैक (नारकी)की बकाळ मृत्यु नहीं  
 (अत्र) क्योंकि (इस) अर्थात् प्रपुखमे सत्र अतुसार नारकीमिच)  
 = परिपूर्ण आयुसाल हातड अथात् नारकीमिच अपनी आयु परिपूर्ण  
 किये विना मृत्युका प्राप्त नहीं होत हे  
 = जो ऐसे इं(नारकी पूर्ण आयुसालहे) शो (= सावत)शो(गद्द)भी(एव)नारकीकी आयुकी  
 = यथादा कही आयु (= उरुपनाम्) इसलिये (आचार्य उक्तसमये) कहते हे कि

**सूत्रम्—तेष्वेकत्रिसदशसदशदशद्विंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्वाना परा स्थिति ॥ ६ ॥**  
 = शु-दशसागरोपमा-त्रिसागरोपमा-द्विंशतित्रयसागरोपमा-सदशसागरोपमा-सदशसागरोपमा-सत्वाना परा स्थिति ॥ ६ ॥  
 परा स्थिति ( यथाकथम् ) ॥ ६ ॥

(१) दोनो भागनाकोमे एव कृपका पाठ कीट कर्षे एव हे । 'यथाकथम्'की अयुष्मि एव अर्थात्क दुपरे कृपले कोगरे हे हेको रिपकी पुःक ३२



एतानिषासो अग्ररूपसहाय वहीलुहृत पवरब्धद और विमरस्यथसहित सबाथसिद्धिका शब्दस्य हिदीअनुवाद अध्याय ३ सूत्र ६  
 यथाक्रममित्यनुवर्तते । तेषु नरकेषु भूमित्रमेण यथासख्यभेकादय स्थितयोऽभिसम्बन्धन्ते ॥  
 रत्नप्रभायामुत्कृष्टा स्थितिरैकसागरोपमा । शर्कराप्रभाया त्रिसागरोपमा । बालुकाप्रभाया सप्त-  
 सागरोपमा । पङ्कप्रभाया दशसागरोपमा । धूमप्रभाया सप्तदशसागरोपमा ।

सर्वाथ — वृष्टुं एकसागरोपमाः॥ त्रिसागरोपमाः॥  
 सप्तसागरोपमाः॥ दशसागरोपमाः॥ सप्तदशसागरोपमाः॥  
 द्वित्रिंशत्सागरोपमाः॥ प्रत्येक्यदशसागरोपमाः॥  
 नारदाण्यसिद्धान्तः॥ पटाः॥ स्वितिः॥ यथाक्रमम्०

इसरी शर्कराप्रभा पृथिवीमें तीन सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है तीसरी बालुकाप्रभा भूमिमें सातसागरकी उत्कृष्ट स्थिति पृथिवी  
 चौथी पटुपमा भूमिमें दश सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है, पाँचवीं धूमप्रभा पृथिवीमें सत्रह सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है ।  
 षष्ठा भूमिमें बार्सिस सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है और साठवीं पराश्रम पृथिवी बिने वेतीस सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है ॥

इत्यनुवाद—यथाक्रमम् अस्ति अनुवर्तयत्  
 वृष्टुं नारदुः पृथि-क्रमेणः॥  
 यथासंख्यम्०पक्षादयः॥ स्थितवः॥  
 षाथिसम्बन्धन्त्यः (रत्नप्रभायापुम्) उत्कृष्टाः॥  
 स्वितिः॥ एकसागरोपमाः॥ शर्कराप्रभायापुम्॥  
 त्रिसागरोपमाः॥ बालुकाप्रभायापुम्॥  
 सप्तसागरोपमाः॥ पटुपमायापुम् ॥  
 दशसागरोपमाः॥ धूमप्रभायापुम्॥  
 सप्तदश-सागरोपमाः॥

= दिन (नरकों) में एकसागर प्रमाण तीनसागर प्रमाण  
 = सात सागर प्रमाण, दस सागर प्रमाण, सत्रह सागर प्रमाण  
 = बार्सिस सागर प्रमाण और वेतीस सागर प्रमाण  
 = नारकी गोबीही उत्कृष्ट आयु यथासख्य आयवा क्रमानुसार है अर्थात् पृथिवी  
 रत्नप्रभा भूमिमें एकसागरकी उत्कृष्ट (नारकीगोबी)की आयु है ।  
 यथा भूमिमें बार्सिस सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है, पाँचवीं धूमप्रभा पृथिवीमें सत्रह सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है ।  
 और साठवीं पराश्रम पृथिवी बिने वेतीस सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है ॥

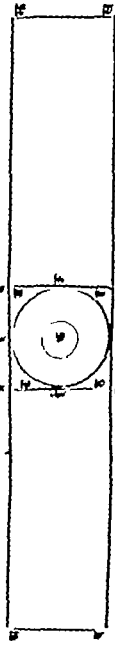
= (इस सूत्रमें दूसरे सूत्रसे) 'यथाक्रम' एसा अनुक्रमण है अथवा अनुवृत्ति अर्थात्  
 है अर्थात् दूसरे सूत्रसे इस सूत्रमें यथाक्रम शब्द खियागया है  
 = दिन नरकोंमें (रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, इत्यादिक), पृथिवीमेंके क्रमसे  
 = एक आदिक (सागरोपमा) स्थिति यथासख्य अर्थात् सख्याके अनुसार  
 = लगान्गती है जोहीअती है (इसलिये) रत्नप्रभा पृथिवी पृथिवीमें उत्कृष्ट  
 = आयु एक सागरोपमा है । शर्कराप्रभा (दूसरी भूमि) में (उत्कृष्ट स्थिति)  
 = तीन सागरोपमा है । बालुकाप्रभा (तीसरी पृथिवी) में (उत्कृष्ट स्थिति)  
 = सातसागरोपमा है । धूमप्रभा (चौथी भूमि) में (उत्कृष्ट स्थिति)  
 = धूमप्रभा (पाँचवीं भूमि) में (उत्कृष्ट आयु) सत्रह सागरोपमा है ।



पदानिवासी गार्हपत्यसहाय इकीष्ट कुत पद्भ्येत् और विभक्त्यर्थं सतिव सर्वाथसिद्धिका शब्दकः सिन्धीयानुवाच । आख्याय ३ सूत्र ६

त्रिसको यनोदियाम्नास्यय पयन्नास्यय और अनुवाककस्य येरे हुए हैं लोक कहते हैं । इसही लोकको तिर्य्यलोक कहते हैं क्योंकि तिर्य्यलोक यह है जिसमें तिर्य्य रहते हैं । अब लोककी असमाप्तीमें जो प्रकारमें सबी है और एकही राज् सोही है और श्रीरुद्रराज् ऊँची है । अब और स्याकरीक रहने का स्थान है और येच आम लोकमें तीवसीवतीस यन्नाकार राज्प्रतीमें स्याकर रहते हैं स्थावर भी तिर्य्यक सक्तीमें अन्तर्गत हैं अतः लोक, सामान्यलोक और तिर्य्यलोक (कनीचि लोकमें अगमना सब स्थानोंमें तिर्य्यक रहते हैं) ये तीनों समानार्थ वाच्यक कहे जासकते हैं । असमाप्तीमें स्थावर भी हैं तो भी कनीचि प्रयागठा से इसमें बस पावेजाते हैं इससे असमाप्ती कहते हैं । 'सर्वशोकाभ्यायिवात्तेर्ण ऐत्रविमालोकोक' सर्वाथसिद्धि पृष्ठ २५२, राजधार्मिक पृष्ठ २३, धार्मिक ४ ५ और इकोकधार्मिक सूत्र २३ वेको हैं सर्व लोकमें जैसे हुए होतेसे तिर्य्यकी का क्षेत्र विभाग नहीं कहागया है ।

पूरव पत्रिकाम एक राज् चौड़ा और उत्तर दक्षिण ७ राज् ऊँचे और मेककी ऊपरसे एक लाक आलोच गाजन (यूमिका तक) ऊँचे सेवकी मध्यलोक कहते हैं । अबहीपसे सेक स्वस्वामयसु अनुगत तिर्य्यक प्रकयकवदरि सार्वाथ गाल सूयाकार रूपमें जैसे हुए संचस्यते हीय समुद्रोंको प्रावर्गात करनेवाला क्षेत्र एकपत्र है अतः त्रिसका सा तिर्य्यलोक (सर्वाथसिद्धियुक्ति पृष्ठ २०२ के अनुसार मिलीय सस्करक पृष्ठ ११० के अनुसार) है । कांे तीयके क्षेत्रको समुद्रलोक कहते हैं । उपयुक्त परिभाषाकी का प्रमास एत प्रकार है कि



पुनः समान्याय ऊर्ध्वोदिर्य्यमनुवाककोकाय प कर्त्तरवाभ्याकाय किन्तु—०० पुनः सामान्य-आय ऊर्ध्व-तिर्य्यगु-मनुव्यलोकान् प कर्त्तरवाभ्याय आलाक किन्ते (गोमरदार और कालु सतुलक अनुसुवारै इत्यपि ५१३ मापा पृष्ठ ६५०) = पुनि सामान्यलोकको प्रथीलोकको, ऊर्ध्वलोकको तिर्य्य लोकेचे अनुव्यलोकको, (ये) पक स्यायकुर समसम्पन्न वा कथम दिवागया है उ “असस ओ लोक सामान्य लोक है । मध्यलोक में भीये लो कको बीच है । अथलोकके उत्तरि ऊर्ध्वलोक है । मध्यलोक तिर्य्य एकपत्र चौड़ा लाक त्रिसका ऊँचा त्रिसका लाक जोजन चौड़ा लाक जोजन ऊँचा समुद्रलोक हैं” गोमरदार जीवकाण्ड पृष्ठ ६५१ ॥ पंच टोकरसमझीके ये शब्द कि “मध्यलोकित्तै” (मध्यलोकमें) तिर्य्यलोक है मगत करते हैं कि तिर्य्यलोक छोटीकस्तु है जो मध्यलोकमें है । बस यह रही तिर्य्यलोक है जिसका व्यास एकपत्र है । चौड़ा एकपत्र पत्रिकके त्रिसी त्रिसुसे सामान्येकी हीक हुतरे किन्तु एक है और एक लाक जोजन मेककी ऊपरसे मेक की ऊँचाई तक है । त्रिसके एक कटोरेर (सर्वाथसिद्धि पृष्ठ २०२ त्रिसोवर्षकण्ड पृष्ठ ११०) कि “ऊर्ध्व पुनःशिर्य्यकीक” उचरते पुनःपरस्यानी कहते हैं कि “अतीवर्षकथाः अथपरपुनःअथर्षिणाशिर्य्यककथन तिसेकेकाकथिता जीव

समुद्रास्तका तिर्यग्लोक इति ॥ अर्णीय ( अर्द्धीयसे ) श्ववर्गमूल्य समुद्र गयेत गोल पृष्ठाकारमें वसे हुए स्वायित् असक्त्याते श्रीय तथा समुद्र में तिसरे तिर्यग्लोक देया है ॥ तिर्यवरास शम्भुका कार्य देव-आरकी मनुष्योंको पाउडकर अर्णोय जीयोका है और तिर्यग्लोक इन शम्भुका कार्य गोल-बलपाकार पृष्ठाकार देसा तिया गया है ॥ पुत्र २४ के विषयमें भूतको पुरपमें एकराम् माना है अथ को परिक्लममें एकराम् माना है । अरु का उचरमें घाल राजू माना है इतिक्लममें साग राजू बलको माना है ना अथसम्भु ॥ समस्त विप्र मण्डलोक हीराग किलमें अथयव शैबमी सन्निहित है । और वरके कोल २ ३-३-३ (हीयो पुत्र २४) ओ स्वयम्भुवमूल्य समुद्रक बाहर है सन्निहित है ("अंतिम स्वयम्भुवमूल्य शीयके उचराज" में तथा स्वस्त स्वयम्भुवमूल्य समुद्रमें और चारी कोलीकी पृथिवीमें अर्धभूमिको तो रचना है देको भीमावतद्विक्त पायकाधार तथा जैनसिद्धावतमेशिका पृष्ट ३७) पराष्टु तिर्यग्लोकमें केवल ईदक पुष्ट ही सन्निहित भागा क्रिममें क" अर्णोय और वरको बलकोधार परे हुए लवनीवदि-पाण्डुकोयक, कालोवदि और पुकराज्य आदि वासवगण शीय समुद्र स्वयम्भुवमूल्य समुद्र नक्ष ( येरे हुए ) सन्निहित है ॥

कितने ही महाशयोनि मारुलोक और तिर्यग्लोकको उचार मरुकी अउये एक भाव याअनकी लिंको है कितने ही महाशयोनि ने एक भाव याानीत साधराज्य उल्लेख किया है । अिगहीमें मेरुपर्वतकी सुविचारी उचारै वदण्य को है अकी संघेसासे एकलोक मय अरुके सुमेरुपर्वतकी उचारै हीकी है और बालीस सहज वृलिबाकी उचारै होजाती है । इसमें कई बाग सपदेक या शुकाकी नहीं उचयव होती है समस्तलोककी उचारै शीयव राजू है ॥ पुमोन्की अन्त ऊपर माल राजू है मायलाककी उचारै तिकासमसे वृलिकासे लोक संत पर्यग साग राजूस कुप ग्यून हो जाता है परपु एक राजूकने एस १६१राजुकीके तुक्के ३ में मेरुकी अइत मोये सातराजु सधात्ताक है जिसका लेनकरा १६१ परकण राजू है अर्णीय एकराजु संदे एकराजु उचारै लोक पर्यग सातराजु हो कही है । मेरुकी अइत मोये सातराजु सधात्ताक है जिसका लेनकरा १६१ + ७३३ + ७३५ सर्वयोग ३१५ राजुका मुद्राश ३७पुनस साधारण यथाकाराम् है और अरुकोपरसे ऊपर सिद्धालय पर्यत ७३३ यथाकाराजु और है १६१ + ७३३ + ७३५ सर्वयोग ३१५ राजुका मुद्राश ३७पुनस साधारण माले माले महाशय "तिर्यपु लाक" गया है । अइते ही मथलाक है इसका कारण यह है कि पयार्थमें "तिर्यग्लोक" का अणुसंघ करत करते तिर्यव लोक करने लगे और तिर्यग्लोकका मापलोकके अर्थमें समझन लगे । तिर्यग्लोक जैसा कि हम सिद्ध कर चुके हैं मथलाकका भाग है ॥ वास्तविक तिर्यग्लोक कही है त्रिगणका उल्लेख कर चुके हैं ॥

विपापित्तोको विरुपद्रवस मन्वलोका स्वरूप ब्रह्मता उक्ति है अतः इसप्रकार है कि मन्वलोकेके भाषण शीकने एकलोक योजन बोधा गोल (गालीके प्रकार) अर्द्धीय है। अर्द्धीयके शीकने एक साव योजन ऊका सुमेरु पर्यंत है। जिसका एक सहस्र योजन भूमिके भीतर मूक है निष्पापके हजार योजन पृथिवीके ऊपर है। और आसीस योजनकी बुलिका (बाटी) है। अर्द्धीयके शीकने पृथिव्यम पर्यकी और ऊपर एक योजन पर्यंत है। जिसके अर्द्धीयके सात अंश हो गये हैं। इन सातों अंशोंके नाम इस प्रकार हैं—मरुत १, ईमवत २, हरि ३, विदेह ४, रत्यक ५, ईरायक ६, और येरायत ७। विदेह सुत्रमें मेरुके ऊपरकी ओर उचरकुट और वसिष्ठकी ओर देव कुट हैं। अर्द्धीयके चारों ओर चारैकी भूमि पर्यंत दो मेरुपर्यंत है और दो क कुशावक्रविकी सब एकता अर्द्धीयसे हुनी है यातकी कडको चारों ओरसे वेड़े हुए साठ साव योजन बोधा यालोद्विचसुत्र है। और बालोद्विचो वेड़े हुये सोलहलाक योजन बोधा पुष्करशीय है। पुष्करशीयके बीचों बीच वसपके आकार जोशरी पृथिवीपर एक हजार बाल योजन शीकने सायसा नैरेय योजन ऊपर आरसीकीशम योजन तैया सतारसीदरबैस याजम और पृथिवीके भीतर आरसीसबा- नीस योजन जिसकी ऊच है ऐसा मातुरोचरनामा पर्यंत पड़ा हुआ है। जिससे पुष्कर शीयके दो काठ हा गये हैं। पुष्करशीयके पहिले अर्द्ध अंगमें अर्द्धीयसे हुनी २ अर्णाथ पातकी कडकीयके बराबर सब एकता है। अर्द्धीय पातकी ऊच शीय और पुष्कराच शीय तथा लषकोद्विच समुद्र और कालो- द्विच समुद्र इनमें दोषको मरलोक कहते हैं। पुष्करशीयसे आगे परपर एकसुतरेको वेड़े हुए त्रैने २ बिस्तारवाले मन्वलोकेके (पूर्वपश्चिम) अठपपत शीय और समुद्र हैं पांच में मन्वन्धी पांच भरण पांच परावत इवकुत और उचर कुटको छोडकर पांच विदेह इसप्रकार सब मिलकर २५ कर्त्तमूमि हैं। पांच ईमवत और पांच ईरयकम इन दश जेभोंमें अधस्य योगमूमि हैं। पांच हरि और पांच रत्यक इन दशजुमें मन्वम योगमूमि है ३ और पांचदेव दशमें कर्ममूमि बहते हैं अहां इनको प्रकृति न हो उसका योग मूमि ब्रह्म है। मन्वजुमेंसे बाहरके समस्त शीकोमें अधस्य योग मूमिकी सो एकता है। किंतु अगिम स्वयम्भुवमय शीयके उचराय्य में तथा समस्त स्वयम्भुवस्य समुद्रमें और चारों कोनीकी पृथिवीमें कर्ममूमिकी सो एकता है लषव समुद्र और बालोद्विच समुद्रमें ३९ अंगवर्तीय हैं किन्तों कुमोग मूमिकी एकता है। यहां मन्वप्य की रहते हैं। उनमें मन्वलोकी बाकृति नागा प्रकारकी ब्रह्मिस्त है। हरि इन शिल्पकी पुत्र ३१ ५७ ६९ हैं किन्ती प्रकारकी पुत्र की ता गतकल्प कृपका सुकरो मूर्धित करे।

एवमिवासी आगरूपसहाय कभीक छव पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित १. भाषाशास्त्रका शब्दार्थः हिन्दीअनुवाद । अध्याय ३ सू ७

॥ जम्बूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ॥ ७ ॥

१ जम्बूद्वीपो द्वीप । लवणोदादय समुद्रा । यानि लोके शुभानि नामानि तन्नामानस्ते ॥ तद्यथा-  
जम्बूद्वीपलवणोदादय समुद्र । २ धातकीखण्डो द्वीप । कालोद समुद्र । ३ पुष्करवरो द्वीप ।

जम्बूद्वीपलवणोदादय शुभनामानो द्वीपसमुद्रा ॥ ७ ॥

सुभाष-—जम्बूद्वीप-आदयः लवणोद आदयः ॥ शुभनामानः ॥ द्वीपसमुद्रा ॥ ७ ॥  
शुभनामानः ॥ द्वीपसमुद्रा ॥

उत्त ( जम्बूद्वीप )

के चारों ओर लवण समुद्र है । उसका नाम है वैसर समुद्रका नाम है । उत्त ( कालोद्वीप ) आदिक तथा लवण समुद्र आदिक समुद्र है (भागो भागे जैमत्रैते द्वीपका नाम है । उत्तर चारों ओर पाहुडी खड द्वीप है अर्थात् उसके बीचमें जम्बूद्वीप है और उसके चारों ओर पुष्करवरो द्वीप है । उत्तर समुद्रका नाम है । उत्त ( कालोद्वीप समुद्र ) के चारों ओर और कालोद्वीप और वैश्वित् बाष्पणीवर समुद्र है । उत्तर परचाट चारों ओर वाष्पणीवर समुद्र पयस असल्यात द्वीप और पुष्करवरो द्वीप है । द्वीप लवणोद-आदयः ॥ नामानि ॥ ॥  
नद-नामानः ॥ तः ॥ तपयाजम्बूद्वीपः ॥ द्वीपः ॥  
लवणारः ॥ समुद्रः ॥

पाहुडी लवणः ॥ द्वीपः ॥ कालोदः ॥ समुद्रः ॥ पुष्करवरोद्वीपः ॥  
( १ ) शुभनामानः आनायक समाख्य ताक्षणीविगमसूक्तम् । लवणोदादय वाक्यके स्थानमें लवणोदादय है । शेष पाठ वाको आम्नायोमे एक इ अर्थ मे एक है ( - ) अयम् = अन् ( पञ्चवन्द्यकेषु पृष्ठ ७२ ) भाग वा लवके स्वायत्तुक अलक्ष वागसे जो समुद्र सो लवणोद है

लवणोद नाम है  
लवणोद नाम है  
= पाहुडी लवण द्वीप है कालोद्वीप समुद्र है । पुष्करवरो द्वीप है

लवणोद नाम है  
लवणोद नाम है  
= पाहुडी लवण द्वीप है कालोद्वीप समुद्र है । पुष्करवरो द्वीप है



प्राग्विवासी आरुपसाप वहीलकाल पदच्छद और विभक्तयसहित सार्थसिद्धिका शब्दश शिबीभनुषाद आख्याप ३ सूत्र ७, ८  
 पुंकरवर समुद्र । ४ वास्तीवरो द्वीप । वास्तीवरो द्वीप । ५ जौरवरो द्वीप । जौरवरो  
 समुद्र । ६ धृतवरो द्वीप । धृतवर समुद्र । ७ इलुवरो द्वीप । इलुवर समुद्र । ८ नन्दीश्वरो  
 द्वीप । नन्दीश्वरवर समुद्र । ९ अरण्यवरो द्वीप । अरण्यवर समुद्र । इत्येवमसख्येया द्वीप-  
 समुद्रा स्वयम्भूरमण्यपर्यन्ता वेदितव्या । अमीषां विष्कम्भसन्निवेशसस्थानविशेषप्रतिपत्यर्थमाह—

॥ द्विद्विविष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो बलययाकृतयः ॥ ८ ॥

रार ३ समुद्र ३ वास्तीवरो द्वीप ३ = पुंकर वर समुद्र है । वास्तीवरो द्वीप है  
 वास्तीवरो द्वीप ३ = वास्तीवरो समुद्र है । जौरवरो द्वीप है  
 जौरवरो द्वीप ३ = जौरवरो समुद्र है । पुंकर द्वीप है  
 पुंकर ३ समुद्र ३ = पुंकर समुद्र है । इलुवरो द्वीप है  
 इलुवरो ३ समुद्र ३ = इलुवरो समुद्र है । नन्दीश्वरो द्वीप है  
 नन्दीश्वरवरो ३ समुद्र ३ = नन्दीश्वर समुद्र है । अरण्यवरो द्वीप है  
 अरण्यवरो ३ समुद्र ३ = अरण्यवरो समुद्र है । इत्येवमसख्येया ( = एवम् )  
 अख्येया ३ द्वीपसमुद्र ३ = स्वयम्भूरमण्य  
 पण्य ३ वेदितव्या ३ अमीषां ३ विष्कम्भ-  
 सविषय सस्थान-विशेष-सन्निवेश-अर्थः ॥ आह  
 द्विद्विविष्कम्भा पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो बलययाकृतयः = (अम्बुद्वीप खण्डोत्पत्त्यर्थ) द्वि द्वि विष्कम्भा पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणः बलययाकृतयः ॥  
 अर्थः — अम्बुद्वीप-आदेशः ॥ खण्डोत्पत्त्यर्थः ॥ द्वि द्वि विष्कम्भा पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणः बलययाकृतयः ॥  
 द्विः द्विः विष्कम्भाः ३ पूर्वपूर्व  
 परिक्षेपिणः ३

(१) इमं सूत्रं वाच्यं भौतव्यं योऽनेन वाच्यमर्थोऽयं एक इति (२) बलययाकृतयः = बलययाकृतयः = पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणः बलययाकृतयः ॥

एतानिवासी काकरूपसहाय बर्फील इव पदबधेद और विपत्स्यर्थं सशिव सर्वार्थसिद्धिः। शब्दश शिवो अनुवाद आध्याय ३ सूत्र ८  
 द्विद्विरिति वीप्सायां वृत्तिवचनं विष्कम्भद्विगुणत्वव्याप्यर्थम् ॥ आद्यस्य द्वीपस्य यो विष्कम्भ  
 तद्द्विगुणविष्कम्भो लवणजलधि । तद्द्विगुणविष्कम्भो द्वितीयो द्वीप ।

लवण आकृतयः।

=लवणाकार अथवा वृषाकार है अर्थात् लवण समुद्रके एक ओरके ध्यासलव जम्बूद्वीपके ध्याससे दुगुण हैं और जम्बूद्वीपको चारों ओरसे बड़ेदुपरे हैं ऐसेही पातुकीलरुके एक ओरके ध्यासलवका प्रमाण लवणसमुद्रके ध्याससे दुगुना है और सर्वत्र लवणसमुद्रको लवणदुपरे हैं ऐसेही कालौदधि पत्करपर इत्यादि असंख्यतद्वीपसमुद्रोंको स्वयम्भूरमण समुद्रपर्यन्त जानना =तो विस्तार अर्थात् ध्यास एक ओरके लवके प्रयाणका (=विष्कम्भ) दूनापनाके फेदानके स्थापित-अर्थः॥ आयस्यद्वीपस्य यो विष्कम्भः (१) =लिय है प्रथम द्वीपका जो ध्यास प्रमाण है =इससे दुगुण ध्यासभागप्रमाण वाला लवण समुद्र है अर्थात् जम्बूद्वीपकी परिधि पर तद्द्विगुण-विष्कम्भः द्वितीयः द्वीपः।

एक विन्दु लेकर उसीकी सीपमें दूसरा विन्दु लवण समुद्र की परिधि पर लेकर यदि दोनों विन्दुओंको फिंसाकर सीपी रेखा खींच दें तो इस रेखाकी लम्बाई दो लाल योजनकी होगी =उस (लवनावधि) से दून ध्यास मागवाला (=विष्कम्भ)दूसरा (पातुकी लव) द्वीप है

(१) यह बबुनोदि समाप्त है । बबुनोदिसमाप्त तीज प्रकारका है (क) उच्च पर्वार्य प्रधान (ख) उमय पर्वार्य प्रधान (ग) सम्यपर्वार्य प्रधान यहाँ पर प्रथमउच्च उच्च पर्वार्य प्रधान है । जैसे (क)प्रकटाः । शोचारी इत इति विमल का पार इत जिसमें दो ऐसा विमल है जिसका कार्य बीज है । उमय पर्वार्य पर्वार्य शक्तिम पर्व प्रधान हो जैसे क्यकिटा उपसमीप्य गता विण्डियैयामिति विमल =समीपको प्राप्त होग्यहै वील किट्टोके लगभग वील कार्य है । (२) विष्कम्भ-इसका कार्य पय कम्प कोपके पठ ३३१ में विस्तार फेलाव का है विस्तार वा फेलावका कार्य उन्नतम भी समझा जासके है परन्तु पर्वार्य यह आयुष नहीं है क्योंकि उन्नतवीपसे लवणावधि का उन्नतम लगभग चौबीस गुणा अधिक होता है यहाँ पर विष्कम्भ का आयुष यह एक घोरका ध्यासकट है जो जम्बूद्वीपकी परिधिपर एक विन्दु लेकर उसकी वीचमें दूसरा विन्दु लवणोदधिकी परिधि परसे लेकर दोनों विन्दुओंको फिंसासे बनाता है । जम्बूद्वीपसे लवणोदधि लगभग चौबीस गुणा है और धामुकी लव जम्बूद्वीपसे लगभग एकचौ लवानीस गुणा है ऐसा कि



एवाविवासी भाग्यसहाय पत्नीलघुत पदकेन्द्रं चौर विपणत्पर्यसरित् सर्वाथसिद्धिदा शुभ्यशः हिन्दीभनुनाद् अत्याप ३ सुष ६  
 अत्राह, जम्बूद्वीपस्य प्रदेशसस्थानविष्कम्भा वक्तव्यास्तन्मूलत्वादितरविष्कम्भादिविज्ञानस्येत्युच्यते  
 तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥९॥

अत्र ७ अह, जम्बूद्वीपस्य प्रदेशसस्थान-विष्कम्भाः। वक्तव्याः। अहिकाणा (= प्रदेश) आकार, व्यासमण्य करना चारिप  
 तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥ ९ ॥

अत्र ७ अह, जम्बूद्वीपस्य प्रदेशसस्थान-विष्कम्भाः। वक्तव्याः। अहिकाणा (= प्रदेश) आकार, व्यासमण्य करना चारिप  
 तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥ ९ ॥

अत्र ७ अह, जम्बूद्वीपस्य प्रदेशसस्थान-विष्कम्भाः। वक्तव्याः। अहिकाणा (= प्रदेश) आकार, व्यासमण्य करना चारिप  
 तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥ ९ ॥

अत्र ७ अह, जम्बूद्वीपस्य प्रदेशसस्थान-विष्कम्भाः। वक्तव्याः। अहिकाणा (= प्रदेश) आकार, व्यासमण्य करना चारिप  
 तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥ ९ ॥

अत्र ७ अह, जम्बूद्वीपस्य प्रदेशसस्थान-विष्कम्भाः। वक्तव्याः। अहिकाणा (= प्रदेश) आकार, व्यासमण्य करना चारिप  
 तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥ ९ ॥

अत्र ७ अह, जम्बूद्वीपस्य प्रदेशसस्थान-विष्कम्भाः। वक्तव्याः। अहिकाणा (= प्रदेश) आकार, व्यासमण्य करना चारिप  
 तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥ ९ ॥

अत्र ७ अह, जम्बूद्वीपस्य प्रदेशसस्थान-विष्कम्भाः। वक्तव्याः। अहिकाणा (= प्रदेश) आकार, व्यासमण्य करना चारिप  
 तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥ ९ ॥

अत्र ७ अह, जम्बूद्वीपस्य प्रदेशसस्थान-विष्कम्भाः। वक्तव्याः। अहिकाणा (= प्रदेश) आकार, व्यासमण्य करना चारिप  
 तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥ ९ ॥



एतानिवासी भाग्यसहाय वहीसकृत पदच्छेद और विषयपर्यन्तसहित सर्वाभिसिद्धिका शब्दशः द्वितीयमुपाद आध्याय ३ सूत्र ६  
**अत्राह, जम्बूद्वीपस्य प्रदेशसंस्थानविष्कम्भा वक्तव्यास्तन्मूलत्वादितरविष्कम्भादिविज्ञानस्येत्युच्यते**  
**तन्मध्ये मेरुनाभिवृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥९॥**

अत्र ० आह, जम्बूद्वीपस्य, प्रदेशसंस्थान-विष्कम्भादीवक्तव्या-यार्हो अर्थ है कि जम्बूद्वीपका ठिकाना (=अर्थ) आकार, व्यासममाण करना चाहिए  
 =उस (जम्बूद्वीप के) स्थित आदिक होने से अर्थात् नियम आदिक होने से  
 =सर्वोद्वीप तथा समुद्र के विस्तारदिक जानेको इसकार (अभिप्रेत करने) कहा जाता है कि

**इतर-विष्कम्भादिविज्ञानस्य ॥ इति ० उच्यते ॥**  
**(१) सूत्रम्—तन्मध्ये (१) मेरुनाभिवृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीप ॥ ९ ॥**

सूर्याय = दृश्यमान वेदनाभिधि  
 जिसकी नाभि (=मध्य) में है ऐसा  
 =बलयाकार (सूर्य के बल सह साहस वा कुलाल के चक्र सह्य आकारवात्)  
 =रक्तलक्ष्ण योजन व्यासधारक जम्बूद्वीप है अर्थात् जम्बूद्वीप मत्त पटल वृष है शेष  
 समुद्र और द्वीप स्वयम्भूरण समुद्र तक बलयाकार पूर्वी, चक्र, अथवा कड़े के  
 आकारवत् है सो इस जम्बूद्वीपके मत्त्येक व्यासकी लम्बाई एक लाख योजन है  
 और उस जम्बूद्वीप की परिधि तीन लाख सोलह हजार दोसौ सपात्रस योजन तीन कोश  
 एक सौ अष्टात्रस पाप साठे तेरह अंगुल से कुछ अधिक है ( योजन २००० कोशका है )

(१) स्थोपाखर और विष्णुवर दोनों आत्माओं में इस सब का जाठ और अर्थ एकला है ॥ कहीं कहीं पर हमारे यहां जम्बूद्वीप भी जाठ ठीक है ॥  
 (२) मेरुनाभि इस वाक्य के वा प्रकार के समास है (१) मेरुपर्यन्त है अर्थात् जिसकी नाभिमें है वहीमेरी शक्ति के समासों का  
 यह आशय है कि मेरु जिस (जम्बूद्वीप) के बीच में है ॥  
 (३) वृत्त = कुलाभके चक्र सहस्र वृत्त होता है उसके वीणाबीज में एक विष्णु दक्षिण बटे ठो उस विष्णुको केन्द्र केंद्र में इस वृत्तकी धिनारेका  
 बीजित्वा गोळ रेखाको परिधि कहते हैं इस परिधि पर दो बिन्दु एकदूसरेके सामने खेचर केंद्रमें होकर जो रेखा जाती है उसको व्यास वा तन्वी  
 कहते हैं ॥ (४) यहाँ बाजल वा सहस्र कोशका जानना चाहिये (५) व्यासका अर्थ (६) विस्तार (का) कोलाव (७) सूचीके हैं इसलिये यह शब्द विष्कम्भ  
 एतके अनुवाद के लिये बहुत पाप्य है ॥









एतद्विषयासी भगवत्प्राप्त्याप यथाश्च इव परस्वेव और विपरत्यर्ष साधित सर्वार्थसिद्धिश्चा शब्दः। द्विती अनुवाद भाष्याव ६ सूत्र १०

ऽकृत्रिम सपरिवारस्तदुपलानितोऽयं द्वीप ॥

तत्र जम्बूद्वीपे पृथ्वि कुलपर्वतैर्विभक्तानि सप्त क्षेत्राणि कानि तानीत्यत आह ॥

॥ भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरायवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥

भरतादयः सञ्ज्ञा अनादिकालप्रवृत्ता अग्निभिन्ना ॥ तत्र १ भरतवर्षः कसन्नविष्ट १ । दक्षिणदिग्भागे

अकृत्रिमः स-परिवारः।

=सकृत्रिम परिवार (अर्थात् अपने वारों और आने आने मयाण किये एक सौ आठ घोड़े जम्बूद्वीपों गरित

एव उपसर्चित ७ अर्षः। द्वीपः।

=जम् (मघाल बूझ)के योगस (=अपलक्षित) यह द्वीप है

तत्र जम्बूद्वीपे पृथ्विः कुलपर्वतैर्विभक्तानि ॥

=वहाँ जम्बूद्वीप विभक्त कुलपर्वतानि (=कुल पर्वतः) विभाग कियेये सप्तः। कुलपर्वतः। कानिः। कानिः। इति ७ अर्षः ७ आर्षः=सात अर्ष है वे कौन है इत्युच्यते (उपर सूत्र में) कहते हैं कि

"सूत्रम्—भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरायवतैरावतवर्षा क्षेत्राणि ॥ १० ॥

=(जम्बूद्वीपे) भरतवर्षः, हैमवतवर्षः, हरिवर्षः, विदेहवर्षः, रम्यकवर्षः, हैरायवतवर्षः, येरावतवर्षः, क्षेत्राणि यवन्ति ॥ १० ॥

सुभार्थः—(जम्बूद्वीपे) भरतवर्षः, हैमवतवर्षः, हरिवर्षः, विदेहवर्षः, रम्यकवर्षः, हैरायवतवर्षः, येरावतवर्षः, क्षेत्राणि यवन्ति ॥ १० ॥

हरिवर्षः। विदेहवर्षः। रम्यकवर्षः।

=हरिवर्ष, विदेहवर्ष, रम्यकवर्ष,

हैरायवतवर्षः। येरावतवर्षः। अनादिकालप्रवृत्ताः।

=हैरायवतवर्ष, येरावतवर्ष(ये सात) सूत्र है

पुण्यनुवाक—भरत-आदयः। सञ्ज्ञाः। अनादिकालप्रवृत्ताः।

=परवादिक नाम अनादिकालसे भवतत है

अग्निभिन्नाः। तत्र १ भरतवर्षः।

=निभिन्नरहित अर्थात् स्वयम् (अन) तर्षा (जम्बूद्वीपमें) पहिला भारतवर्ष (=परतवर्ष)

क सन्निविष्टः। दक्षिण दिग्भागे।

=कहाँ स्थिति है (उपर) जम्बूद्वीपके दक्षिण दिशाके विभागमें

(१) द्वाते वरौ एव सूत्रका मत सौर अर्थ सर्वत्र एक है ॥ इत्येतादृश आम्नायके समाप्त्यन्तरात्परिमाण सक्रमे भारत हैमवत रवादि के पहिले तत्र एव अर्थिक है मिल तेष एवम् का अर्थ है "तर्षा" कर्णीय जम्बूद्वीपकवयोपपत्त्य रत्यादि" एव तातवर्षा सूत्र से "जम्बूद्वीप" यही अनुसृष्टि इत्य सूत्रमें लीगई है । द्वीपों सम्प्रदायों में इत्य तातवर्षा अर्थ एक है ॥



एवाभिषक्तौ भगवतासाय वशीत् ७ पक्षद्वयं और विपारण्यसक्ति सर्वाभिसिद्धिः। शक्यं विवीभनुवाद अप्याय ३ सूत्र १०  
 पूर्वापरसमुद्रयोरन्तरे ४ विदेहस्य सन्निवेशो द्रष्टव्य ॥ नीलत उत्तरो रुक्मिणो दक्षिण पूर्वापर-  
 समुद्रयोर्मध्ये ५ रम्यकर्ण ॥ रुक्मिण उत्तराच्छिखरिणो दक्षिणापूर्वापरसमुद्रयोर्मध्ये सन्निवेशो ६  
 हेरायवतवर्ष ॥ शिखरिण उत्तरतल्लयाणा समुद्राणा मध्ये ७ ऐरावतवर्ष । स विजयाब्देन रत्तारत्तो-  
 दाभ्या च निभक्त पट्वरगह ॥ पटकुलपर्वता इत्युक्त, के पुनस्ते, कथं वा व्यवस्थिता इत्यत आह—

- =पूर्व पश्चिम (खण्ड) समुद्रके भागोंके मध्यमें वीथा विदेह क्षेत्रकी
- =सम्यक्त स्थिति जानना योग्य है अथवा देखने योग्य है ॥ नील कुलाचलसे उत्तर
- =उत्तरी वा रूपीकुलाचलसे दक्षिण (और) पूर्व और पश्चिम दोनों ओरके खण्ड समुद्रके
- =बीचमें पर्वतों रम्यक वर्ष है ॥ रुक्मि कुलाचलके उत्तर दिशासे और
- =शिखरी कुलाचलके दक्षिण दिशासे पूर्व और पश्चिम दोनों ओरके खण्ड समुद्रके
- =अंतराल स्थितिमें खर्वा हेरायवत वर्ष है ॥
- =शिविरी कुलाचलकी उत्तर दिशासे (और) तीन ओर खण्ड समुद्रके
- =बीचमें सागरी ऐरावत वर्ष है ॥ वर (ऐरावत क्षय) वैतादण पर्वतफरि
- =या (च) रत्ता रत्तादा दोनों नदियोंकरि करि लक्ष्मणमें वटा हुआ है ॥
- =ब्रह्म कुलाचल पर्वत ऐसा कहा गया है अथवा बर्णित है । बहुरि-पुन )ते कोन है ॥
- =अथवा किम प्रकार व्यवस्थिता है । इसलिय (आचार्य अग्निम सूत्रमें) कहते हैं कि

कि समुद्र समुद्र बलयाकार सर्वाः अग्रद्वीपयो चोरे द्वय परक ही हे "समुद्राणाम्" बहुवचन और समुद्रयाः" द्विवचन इव कारणसे लाये हैं  
 अग्निमाव है इसीलिए अनुजातमें शाग ग्रन्थ आए हैं (२) रुक्मिणः । अथवा ! शीतो वा सक्तो है पश्चमी विभक्तिमें धर्ष कर्णो कुलाचलसे वक्षिण  
 पला होगा और पश्ची विभक्तिमें (उत्तमी कुलाचलके) वक्षिण ऐसा धर्ष है ॥

॥ तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवान्निपधनीलशक्ति-  
शिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥ ११ ॥

तानि चेत्राणि विभजन्त इत्येवंशीलास्तद्विभाजिन ॥ पूर्वापरायता इति पूर्वापरकोटिभ्या लक्षण-  
जलधिस्पर्शिन इत्यर्थ ॥ हिमवदादयोऽनादिकालप्रवृत्ता अनिमित्तसज्जा वर्षविभागाहेतुत्वाद्द्वर्षधर-  
पर्वता इत्युच्यन्ते ॥ तत्र क्व हिमवान् ? । भरतस्य हिमवतस्य च सीमनि व्यवस्थित ॥ द्रुद्रहिम-  
वान् योजनशतोच्छ्राय ॥ हिमवतस्य हरिवर्षस्य च विभागकरो महाहिमवान् द्वियोजनशतोच्छ्राय ॥

सूत्रम्—तद्विभाजिन पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निपधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वता ११

पूर्वाका—वृद्धविभाजिनःपूर्व  
अपर-आयतान्ने हिमवत्-महाहिमवत्-निपध  
नील-रुक्मि-शिलरिखिःपूर्वपरपर्वतान्ने  
पुष्पर्य-वानिः॥ध्वेःशक्तिः॥विमग्नोऽति पूर्व शीतान्ने॥  
तद्विभाजिनः॥ पूर्व-अपर-आयतान्नेःशक्तिः  
पूर्व-अपर-कोटिभ्यान्नेःश्रवण-अस्वपि-स्वर्धिनः  
शक्तिःअर्धः॥ । हिमवत् आदयन्नेःअनादिकाकल्पपुष्पाः  
अनिपधनसम्बन्धैःपर्यतिपाणोऽहेतुत्वः॥  
वर्षधर-पर्वतान्नेःश्रुतिवच्यन्ते, तत्र ० क्व-विमवान्नेः  
परावर्षाः हिमवतस्यैव—सीमनिः॥ध्वेःशक्तिः  
द्रुद्र-विमवान्नेःयोजन-शत उच्छ्रायः  
हेतुत्वस्यैःपरिवर्षस्यैःच-विभागकरोः  
महाहिमवान्नेःद्वि-योजन-शत-उच्छ्रायः

=तिन (पारत, हैपवत, इत्यादिक मात कुत्रों) को पुष्प करनेवाले पूर्व  
=परिषम खवशांनपितक लम्ने विमवान्, महाहिमवान्, निपिप,  
=नील, रुक्मि (राम्पी वा रूपी) शिलिरी (अथत्रपर्य परत, कुलपर्वत वा इत्याचल है  
=विन (भरत हैपवत इत्यादि) कुत्रोंको पुष्प करते हैं ऐसे समय वा प्रकृति वाले हैं॥  
=वे तद्विभाजन है (वा विभाग करने वाले है) (सूत्रमें) पूर्व पश्चिम सन्ने ई ऐसे  
=पूर्व पश्चिमकी अन्तनीयों करि (=कोटिभ्यः) खवशादपिको होने वाले ही इत्याचल है॥  
=वैसा अभिप्राय है ॥ हिमवान् आदिक (पद-इत्याचल) अनादिकालत मवती  
=निपिधरहित नाम वाले वा स्वयं नाम पारक कुत्रोंको पुष्प २ करनेके कारणसे  
=वर्षधर पर्वत ऐसे करे आय है । (मस) तदा विमवान् (पर्वत) कहां है ।  
=(अपर) पारत क्षेत्रकी बहुरि हैपवत वर्षको सीमामें अवस्थित है  
=द्रुद्र विमवान् है (पुत्र-योजना) जिसकी योजन सौ वर्षाई (=उच्छ्राय) है ॥  
=हैपवत-क्षेत्रका गया हरिवर्षका विभाग करने वाला  
=पराविमवान् है जिसकी योजन दो सौ की छ-वर्षाई है ॥

विटेहरय दक्षिणतो हरिष्योत्तरतो निषधो नाम पर्वतश्चतुर्थोयोजनशतोच्छ्रय ॥ उत्तरे त्रयोऽपि पर्वता स्ववर्षविभाजिनो व्याख्याता ॥ उच्छ्रयश्च तेषा चत्वारि द्वे एक च योजनशतं वेदितव्यम् ॥ सर्वेषां पर्वतानामुच्छ्रयस्य चतुर्भागोऽवगाह ॥ तेषां वर्णविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः ॥ १२ ॥

विदरस्म<sup>१</sup>दक्षिणत<sup>२</sup> हरिष्योत्तरत<sup>३</sup> निषधो नाम<sup>४</sup> पर्वतः<sup>५</sup> चतुर्थोयोजनशतं<sup>६</sup> उच्छ्रयः<sup>७</sup> त्रयोऽपि पर्वताः<sup>८</sup> विभाजिनो<sup>९</sup> व्याख्याताः<sup>१०</sup> उच्छ्रयश्च<sup>११</sup> तेषां चत्वारि<sup>१२</sup> द्वे एकं<sup>१३</sup> योजनशतं<sup>१४</sup> वेदितव्यम् ॥ सर्वेषां<sup>१५</sup> पर्वतानामुच्छ्रयस्य<sup>१६</sup> चतुर्भागोऽवगाहः<sup>१७</sup> तेषां वर्णविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

=विटेहर क्षेत्रकी दक्षिणदिशासे हरिष्यक्षेत्रक उत्तरदिशासे  
=निषधनाम पर्वत है जिसकी चारसौ योजन ऊंचाई है ॥  
=उत्तरदिशामें तीनोंही (नील, शक्ति, शिवरी) पर्वत अपने-अपने क्षेत्रोंके  
=दो तथा एक सौ, पावन (क्रमसे) जानना चाहिए अर्थात् नील पर्वतकी चारसौ  
योजन ऊंचाई है शक्ति पर्वतकी दोसौ योजन है व शिवरी पर्वतकी सौ योजनहै  
=सस्यस्त पर्वतोंकी ऊंचाईका चौथाई भाग (क्रमानुसार) पृथिवीमें  
मंदिष्ट है वा पृथिवीमें अवगाह है ॥ (तात्पर्य यह है कि शिववान् पर्वतकी नीचपक्षीस  
योजनकी १०० योजन ऊपर है । महाशिववान् ४० योजन पृथिवीमें मंदिष्ट है २०० योजन धरासे ऊंचाहो  
योजन नीच है । ४०० योजन पृथिवी ऊपर है स्वामी पर्वत ४० योजन पृथिवीमें अवगाह है २०० योजन पृथिवीके  
है ऊपर और शिवरी पर्वत २४ योजन पृथिवीमें है १०० योजन प्रतिमिस ऊंचाई है ॥

सर्वेषां पर्वतानामुच्छ्रयस्य चतुर्भागोऽवगाहः

योजनकी है और सौ योजन भूमिके ऊपर है । और ४०० योजन धरातलके ऊपर है । इसीकार नील पर्वतकी नीचपक्षीस  
निषध पर्वतकी १०० योजन नीच है । और ४०० योजन धरातलके ऊपर है । इसीकार नील पर्वतकी नीचपक्षीस  
योजन नीच है । ४०० योजन पृथिवी ऊपर है स्वामी पर्वत ४० योजन पृथिवीमें अवगाह है २०० योजन पृथिवीके  
है ऊपर और शिवरी पर्वत २४ योजन पृथिवीमें है १०० योजन प्रतिमिस ऊंचाई है ॥

तेषां वर्णविशेष प्रतिपत्ति अयम् ॥ आह ॥  
(१) सूत्रम्—हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममया । १२। हेमार्जुन वैडूर्य पाठ भी “अक्षोरवाभ्याम् द्वे वा” सूत्रसे शुद्ध है  
=उत्तर पर्वता इत्यम, अर्जुनमय, तपनीयमया, वैडूर्यमया, रजतमया हेममया, च (यथाऽयम्) ॥ १२ ॥

॥ (१) उत्तर पर्वतोंके वर्णविशेष प्रतिपत्ति अयम् ॥ आह ॥ (२) सूत्रम्—हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममया । १२। हेमार्जुन वैडूर्य पाठ भी “अक्षोरवाभ्याम् द्वे वा” सूत्रसे शुद्ध है ॥ (३) उत्तर पर्वतोंके वर्णविशेष प्रतिपत्ति अयम् ॥ आह ॥ (४) सूत्रम्—हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममया । १२। हेमार्जुन वैडूर्य पाठ भी “अक्षोरवाभ्याम् द्वे वा” सूत्रसे शुद्ध है ॥

पद्यनिपाती आरुपसहाय प्रकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धि का शब्दशः सिन्धीअनुवाद अर्थात् ३ सूत्र १२ त एते हिमवदादय पर्वता हेमादिमया वेदितव्या यथाक्रमम् ॥ हेममयो हिमवान् चीनपदवर्ण । अर्जुनमयो महाहिमवान् शुक्लवर्ण । तपनीयमयो निपथस्तस्यादित्यवर्ण । वेदूर्यमयो नीलो मयूरशी- वाभ । रजतमयो रुक्मी शुक्ल । हेममय शिखरी चीनपदवर्ण ॥ पुनरपि तद्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

- =कुलाचल पर्वत स्वर्ण सद्य अर्थात् पीतवर्ण शुभ्रसम अर्थात् श्वेतवर्ण
- =तप्तसुवर्णसरीला अर्थात् रक्तवर्ण वेदूर्य मच्छिपत् अर्थात् नीलवर्ण
- =रुपा वा चांदी सम अर्थात् शुभ्रवर्ण और कचन सद्य अर्थात् पीतवर्ण क्रमसे है ॥
- तात्पर्य यह है कि हिमवान् पर्वत पीत वर्ण है महाहिमवान् पर्वत रजतवर्ण है त्रिपिप पर्वत रक्तवर्ण है, नीलापर्वत नीलवर्ण है, रुक्मि (रुक्मी, रूपी) पर्वत शुभ्रवर्ण है । और शिखिरी पर्वत, पीन वर्ण है ॥
- =सद्य-रुभानुसार जानना चाहिए । स्वर्ण सरीला (=मय)
- =हिमवान् पर्वत पीला (=चान) यात् (सम) वर्ण है । शुभ्र सम
- =महाहिमवान् पर्वत श्वेत रंग है । तप्त वा तापे दुग् सुवर्ण सद्य नियच पर्वत
- =दुपहरी वा पथ्याहरे सूर्य तथा अर्णात् रक्त है । वेदूर्यमणि संपान नील पर्वत
- =पौरकेःकंससद्य (=आमसु) नीला' है (चांदी वा रुपा सरीला रुक्मि, (रूपी, रूपी), पर्वत
- =वर्ण है । सुवर्णावत् (शिखिरी) पर्वत पीले पट्ट वर्ण है ॥
- =फिर भी विन (पदकुलाचलौ) का विशेष प्रतिपादनके लिए अग्रिमसूत्रमें करते हैं कि

सूत्राः— सर्वारणवर्णः हेममयः अर्जुनमयः ।  
 तपनीयमयः वैदूर्यमयः ।  
 रजतमयः ऐममयः शुक्लयथाक्रमम् ॥ १ ॥

युष्मानुवादः— एते हिमवत् आदयः पर्वताः हेम-आदि-  
 मया वैदितव्या यथाक्रमम् ॥ हेममयः ।  
 हिमवान् पीन-य-वर्णः अर्जुनमयः ।  
 महाहिमवान् शुभ्रवर्णः । तपनीयमयः त्रिपिपयः ।  
 वरुण-आदित्य-वर्णः । वेदूर्यमयः नीलः ।  
 मयूर-शीला-आमयः रजतमयः रुक्मीः ।  
 शुभ्रः हेममयः शिखिरीः पीन-य-वर्णः ।  
 पुनरपि तद्विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थमाह ॥ १ ॥

एव दिव्यते) दो है कि "एस विकल्पमें बहुतसे विचार, स्वयं और भी बहुत सजोको रखना करक उनका व्याख्यान करते हैं । विस्तार न हो इस विषे आचार्यने संक्षेपस पद तत्त्व समष्टि किंवा है और इसी हेतुने आत्मनिपुणजन विस्तार कृतस जो सूत्रोंका कथन है वद प्राचीन नहीं है देखा करते हैं । और विस्तार ही इस है ता लक्षणपक्षी परिभाषाकएते आधुनिकका विस्तार करते भी भी क्या विस्तार हुआ । अर्थात् ऊंच नहीं ऊपका विस्तारपक्षी) उक्त आचार्योंके लक्षण सूत्रोंके बहुत गुणगुण किंवागत तथा निवचन आता है । इस हेतु उनका अविश्वस्य कथिकाके जोर है ॥





पदानिवासी साक्ष्यसहाय बहोक्त कृत् पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सहायसिद्धिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद । अर्थात् ३ सूत्र १४, १५

॥पद्ममहापद्मतिगिच्छकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेपामुपरि॥१४

पद्म महापद्म तिगिच्छ केसरी महापुण्डरीक पुण्डरीक इति तेषा हिमवदादीनामुपरि यथाक्रममेते ह्रदा वेदितव्या ॥ तत्राद्यस्य सस्थानविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदङ्घ्रिविष्कम्भो ह्रदः ॥ १५ ॥

सूत्रम्—(१)पद्ममहापद्मतिगिच्छकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेपामुपरि ॥ १४ ॥

सूत्रार्थ—पद्म-महापद्म-तिगिच्छ-केसरी-महापुण्डरीक =पद्म, महापद्म, तिगिच्छ, केसरी, महापुण्डरीक, और पुण्डरीकम् । ह्रदाः= तेषाम् । उपरि=उपयाक्रमम् । सस्थानविशेष-पद्म-महापद्म-तिगिच्छकेसरिः । महापुण्डरीकम्=पुण्डरीकम् । प्रतिपत्तिः=प्रतिपत्तिः । यथाक्रमम्=यथाक्रमम् । ह्रदः=ह्रदः । इति=इति । विदितव्याः=विदितव्याः ।

अर्थात् विमान पर्वतपर पद्मसरोवर है महाविषयान् पर्वतपर महापद्म सरोवर है नियमपक्षपर

तिगिच्छ ह्रद है नीलपर्वतपर केसरी ह्रद है शिमपर्वतपर महापुण्डरीक सरानर है और शित्तरी पर्वतपरपुण्डरीकह्रद है

सूत्रम्—(१)प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदङ्घ्रिविष्कम्भो ह्रदः ॥१५॥

सूत्रार्थ—पद्मम्=पद्मम् । पामुपरि=पामुपरि । योजनसहस्रायामस्तदङ्घ्रिविष्कम्भो ह्रदः=योजनसहस्रायामस्तदङ्घ्रिविष्कम्भो ह्रदः ।

(१) प्रथमतः साक्षात् सजात्यस्यकारणविधायकत्वात् यो यो नो मूक गरी षि (१) ह्रदामे यदा कही कही कर प्रथमे पाठ है कही २ पर मन्त्र पाठ है दोनो पाठ ही है सर्व का अर्थ अकार अकारद्वयकार के वा" गुणोक्त मूकसे कीकटा होतया सब का सूत्र पर पठना कर बना यह अर्थमा अन्वयविष्कम्भो



# ॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥ १७ ॥

योजनप्रमाणं योजनं, कोशायामपत्रत्वात्कोशहयविष्कम्भकणिक्रवाच्च योजनायामविष्कम्भम् ॥  
जलतलात्कोशहयोच्छ्रयनाल तावद्वहुलपत्रप्रचय पुष्करमवगन्तव्यम् ॥  
इतरेषा हृदाना पुष्कराणा चायामादिनिर्द्धानार्थमाह—

सूत्रम्—तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥ १७ ॥

सुवार्थे—वद-वप्यः योजने ॥ पुष्करे ॥

वृषपुत्रात्—योजन-मया ॥ योजने ॥ कोशे ॥ योजने ॥ पुष्करे ॥

आयाम-पत्रत्वात्-कोश-हय-विष्कम्भ-कणिक्रवात् ॥ योजने ॥ कोशे ॥ योजने ॥ पुष्करे ॥

योजन आयाम-विष्कम्भम् ॥

= उस(पञ्चमाश्राव)के बीच में एक योजन(लिबा चौडा रत्नमयी)कमल है  
= योजन भर पाप है सो योजन है । (एक एक)कोशकी (दोनो)ओर आयने सामनेक  
= सुवार्थे पपोंही होनस और दो कोशकी चौडाईकी कणिका अर्थात् (कमल क बीचका)

कुट्टल होन स

= ऐसे एक योजन लंबाई=आयाम) चौडाई(=विष्कम्भ)है अर्थात् कमलके एकओर  
के कमल के पचे की लम्बाई एक कोश और उसक सामने क पचे की लंबाई एक कोश  
अथवा एक योजन के बीच क कुट्टल(कमल की कणिका) की लंबाई चौडाई दो कोश एते पार कोश  
मिखाकर एक योजन का व्यास होगा इस प्रकार सब आयन सामने क पचे और बीच की कणिका को  
लम्बा, एक ही योजन चौडा सर्वक मरलके सव्य वलयाकर मतर वृषस्य पत्रद्रवक मध्यमें कमल है  
= नीरक तल दो कोशकी लम्बाईकी(उच्छ्वास) (कमल की)जाल अथवा नली है  
= इतनी(अर्थात् दो कोश की) मोटाई (के बहुल, बहुल)पत्रोंका सम्भू(=अथवा) बाला  
= कमल जानना चाहिये अन्य(योग)पचे हुये पां(को)सरोवरों की  
= तया(=अ)क्रमकों की लंबाई आदिक निर्णयके लिये (आचार्य उचर सुवर्ण) करते हैं कि  
= (यथा) इस अन्वयकी विष्कम्भकी पुष्क ३-६, १०० पर)

मल-खात ॥ कोश-हय-उच्छ्रय-पनाले ॥  
यावत्-बहुल-पत्र-वप्ये ॥  
पुष्कराणि ॥ अथ-गन्तव्यम् ॥ इतरेषां सुवार्थः ॥  
पुष्कराणि ॥ अथ-यायाम-आदि-निर्द्धान-सर्वे ॥ आह-तया(=अ)क्रमकों की लंबाई आदिक निर्णयके लिये (आचार्य उचर सुवर्ण) करते हैं कि

# तद्द्विगुणाद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥

स च तच्च ते, तयोर्द्विगुणा द्विगुणास्तद्द्विगुणद्विगुणा इति द्वित्वं व्याप्तज्ञानार्थम् ॥ केन द्विगुणा? आयासादिना ॥ पद्महृदस्य द्विगुणायामविष्कम्भावाहो महापद्महृद । तस्य द्विगुणायामविष्कम्भा-  
वगाहस्तिगिञ्जहृद । पुष्कराणि च किं? द्विगुणानि द्विगुणानीत्यभिसम्बन्धयन्ते ॥

(१) सूत्रम्—तद्द्विगुणाद्विगुणाह्रदा पुष्कराणि च ॥ १८ ॥

सूत्रार्थः—तद्द्विगुण-द्विगुणा ॥

इति ॥ पुष्कराणि ॥ १८

= वन (पद्मपत्रद्वय और कपक)से दुगने दुगने(खम्भाई, चौड़ाई तथा गहराई में ढगले दो

पद्मपत्र और तिगिक्क)

= सरोवर ई और (दुगने दुगने अग्रिम दो)कपक ई पावार्य पपनायात्रहसे दुगुण-महापत्रद्वय

ई ॥ और महापत्र से दुना तिगिक्क सरोवर ई इन तीनों द्रवों क पत्रापर ही उचरामोरके

तीनों पत्रों क तीनों द्रव ई तथा द्रवों के कपकों के पत्रापर कमल ई

= चतुरि बह(पत्रद्वय)अथा(=चतुर)वे दोनो(=वे)सुप्रमे तद्द्विगुणद्विगुणा(सुप्रमे)

= वन(पत्रद्वय और पुष्कर)का दुगुना दुगुना ई सो तद्द्विगुणद्विगुणा(सुप्रमे)

= ऐसा द्वित्व अथवा दुना २ पना व्याजि योपक क ई अर्थात् सूत्र में दो बार

द्विगुण द्विगुण द्रवों और कपकों का विस्तार जानवने के लिये प्रयुक्त किया ई

= किस स दो गुना ई । खम्भाई आदिक से पत्रद्वय की

= दुगुणी खम्भाई(=आयाम)चौडाई(=विष्कम्भ)गहराई(=अपघाह)का महापत्र सरोवर ई

= विस(महापत्रद्वय)की दुनी खम्भाई चौडाई गहराई का

= तिगिक्क द्रव ई (रस) "पुष्कराणि च" एसा वाक्य सूत्र में क्यों दुगुने

= दुगुन ऐसा(पुष्करों के साथ) खगाया जाय अथवा जोड़ा जाय ई अर्थात्

(१) इस सूत्र का हकारे यहाँ एकठा पाठ ई ॥ श्रवणाःपर आत्मायाके समाम्यतावाप्याधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं ई(इस अष्टायापकी द्विपकी पुष्ट १०, १८)

तन्निवासिनीनां देवीनां सञ्ज्ञाजीवितपरिवारप्रतिपादनार्थमाह—  
॥ तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीद्वैधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः

तेषु पुष्करेषु कर्णिकामध्यदेशनिवेशिन शरह्रिमलपूर्णचन्द्रद्युतिहरा क्रोशायामा क्रोशाह्वविष्कम्भा  
देशोन्नकोशोत्सेया प्रासादास्तेषु निवमन्तीत्येवशोलास्तन्निवासिन्यो देव्य श्रीद्वैधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्मी-

पद्मत्रये के कम्बसे इनी लम्बाई चौलाई और मागई आदिका मगपम द्रवका कम्बल है और मग  
पद्मत्रये के पुष्करस इनी लम्बाई चौलाई मागई आदिका ति, गङ्गाद्रवका कम्बल है ॥ इन तीनों इदोंके  
बराबर ही उपर ओरके तीनों पर्यन्तके तीनों इद हैं और तीनों इदोंके कम्बलोंके बराबर कम्बल हैं ॥  
= तिन (कम्बलोंमें) निवास करनेवालों दवियोंके नाम आयु और परिचार  
= तिन (कम्बलोंमें) निवास करनेवालों दवियोंके नाम आयु और परिचार

सूत्रम्—तन्निवासिन्यो देव्य श्रीद्वैधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः

पूशार्थ-बुद्ध-निवासिन्यो देव्यः ॥  
श्री-द्वै-धृति-कीर्ति-बुद्धि-स्वरम्यः ॥  
स-सामानिक-परिपत्काः ॥  
शुभ्रुवादा-येषु ॥ पुष्करेषु ॥  
शरह्र-मल-पूर्ण-चन्द्र-द्युति-हरा ॥  
कोश-आयापना ॥ क्रोशाह्व-विष्कम्भा ॥ देव्य-उन-कोश-  
उत्सेया ॥ प्रासादान् ॥ तेषु ॥ निवसन्ति ॥ इति ॥ कथम् ॥  
शीला ॥ बुद्ध-निवासिन्यः ॥ श्री-द्वै-धृति-कीर्ति-बुद्धि-स्वरम्यः ॥  
श्लोकात्पर आत्मापके समाख्य शब्दायां विग्रहस्युत्तमं पद सप्त मदी है अर्थात् एकको मूल मदी भाग्यः ॥  
= तिन (पद्मरूपमयी पुष्करोंके मसदोंमें) (कम्बसे) निवास करनेवाली (बुद्ध-देवियाँ)  
= श्री, द्वै, धृति, कीर्ति, बुद्धि, स्वरम्य, (पल्येक) पुष्पोपम आयुकी प्रारक है (और)  
= सामानिक जातिके देव और परिपद् जातिके देवों सहित बतें हैं अर्थात् राखी है  
= शरह्र बुद्धके अथवा कुवार कार्तिकके निर्मल पूज शशिकी कान्ति जीतनेवाले  
= (एक) क्रोशकी लम्बाईके आये काशकी चौड़ाईके बुद्ध हीन क्रोशकी  
= उर्ध्वार्थके श्रेष्ठगुण किन्तमें निवास करनेवाली श्री द्वै धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मी है ॥ इस प्रकार  
= अर्थात् स्वर्णशाली किन्तमें निवास करनेवाली श्री द्वै धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मी है ॥

श्री द्वैधृतिकीर्ति बुद्धि लक्ष्मी है ॥

एतानिवासी जगत्पसदाय वकीलकृत पदच्छद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः शिन्वीमनुवाद अप्याय ३ सूत्र १६  
 संज्ञिकास्तेषु पञ्चादिषु यथाक्रमं वेदितव्या ॥ पल्योपमस्थितय इत्यनेनायुष प्रमाणमुक्तम् ॥  
 समाने स्थाने भवा सामानिका । सामानिकाश्च परिपदश्च सामानिकपरिषद । सह सामानिकपरि-  
 पद्विर्वर्तन्त इति ससामानिकपरिपत्का ॥ तस्य पदस्य परिवारपद्मेषु प्रासादानामुपरि सामानिका  
 परिपदश्च वसन्ति ॥ यकाभि सरिद्धिस्तानि क्षेत्राणि प्रविभक्तानि, ता उच्यन्ते—

सङ्घिकाऽऽ वेपुः। पञ्चादिषुः। यथाक्रमं च श्रितव्याः। = नाम है भिनके तिन पञ्चादिक(द्रष्टो)में क्रमानुसार मानना काशिये(अर्थात् पचद्ररूपलक्षके

भण्ड गुहमें श्री दधी महापद्मइद पुष्करके उषम गेर (मासाद)में ही देवी, विगिख  
 सरोवर कमलके मासादमें वृति देवी और केसरि द्रर कमलके उषम परमें कीति  
 देवी महापुटरीक इद पुष्करक यवनमें बुद्धि देवी और पुटरीकद्रर कमलके मासादमें  
 लखवी देवी रहती है ॥

पल्योपम-स्वितयः। इति च अनेनः। आयुषः।

प्रमाणम्। उक्तम्। समानम्। स्थानम्। भवाः।

सामानिकाः। सामानिकानामुप परिपदः। य

सामानिक-परिपदः। सह च सामानिक-

परिपदः। वर्तन्ते।

इति च ससामानिक परिपत्काः। वस्वः। पक्षस्यः।

परिवार पद्मेषु। प्रासादानामुपरि सामानिकाः।

परिपदः। य वसन्ति यकादिः। सरिद्धिः।

तानि। क्षेत्राणि। विभक्तानि। ताः। उच्यन्ते।

(१) वा स्वोक्तिग पदु शब्द में क नू (=क) प्रत्यय इसी कार्य में लगाया है कार्यन् क नू (=क) अगली जाता है कार्य भी शब्द का नहीं पलटता है न

तन्निवासिनीनां देवीनां सञ्ज्ञाजीवितपरिवारप्रतिपादनार्थमाह—  
॥तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः

ससामानिकपरिपत्काः ॥ १९ ॥  
तेषु पुष्करेषु कर्णिकामध्यदेशनिवेशिन शरह्रिमलपूर्णचन्द्रद्युतिहरा क्रोशायामा क्रोशाद्द्विष्कम्भमा

देशोन्कोशोत्सेधा प्रासादास्तेषु निवमन्तीत्येवशोलास्तन्निवासिन्यो देव्य श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्मी-  
पद्मद्वारे कम्बलसे इनी लम्बायां चंद्रां और योग्यां आदिका महापप द्रष्टा कम्बल ई और परा  
पद्मद्वारे पुष्करसे इनी लम्बायां चंद्रां योग्यां आदिका ति, गच्छद्रका कम्बल ई ॥ इन तीनों द्वारोंके  
परापर ही उपर ओरके तीनों पक्षोंके तीनों द्वार हैं और तीनों द्वारोंके कम्बलोंके परापर कम्बलई ॥  
=तिन (कम्बलोंमें) निवास करनेवाली देवियोंके नाम आयु और परिचार  
=तिन (पद्मलम्पयी पुष्करोंके मत्स्यो) में (क्रमसे) निवास करनेवाली (श्रुत) देवियां  
=भी, श्री, श्रुति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी, (मत्स्यके) पद्मोपम आयुकी पारक ई (और)  
=सामानिक आदिके देश और परिपद आदिके देवों सहित वृत्तों में अर्थात् रहती ई  
=शत ब्रह्मोंके अर्थात् चंद्रा पर कालिकेके निर्मल पूर्ण शशिकी कान्ति जीवनेवाली  
=(एक) क्रोशकी लम्बायांके आगे क्रोशकी चंद्रायांके बुध हीन क्रोशकी  
=ऊर्ध्वायांके भोग्युर तिनमें रहती ई ॥ इस प्रकार  
=अर्थात् स्वयापवाली तिनमें निवास करनेवाली श्री ह्री पुति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मीदे

सूत्रम्—तन्निवासिन्यो देव्य श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्य पल्योपमस्थितयः

सर्वायं न्यु निवासिन्यः देव्यः ॥  
श्री-श्री-श्रुति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्मी-पद्मोपम-स्थितयः ॥  
स-सामानिक-परिपत्काः ॥  
शतं विष्कम्भ-पुष्कर-श्रुति-इन्द्रां ॥  
क्रोश-आयामां क्रोश-मद-विष्कम्भा देव्य-ऊन-क्रोश-  
वस्तुपादुप्रासादां तेषु निवसन्ति श्रुति-पद्म-  
शिका ॥ पद्म-निवासिन्यः ॥ श्री-श्री-श्रुति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्मी—  
स्वेकारम्भ-शालायांके अर्थात् स्वयापवाली तिनमें निवास करनेवाली श्री ह्री पुति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मीदे

सू. २१

एगविषयो मगकपसहाय बहीछाहण पदच्छेद और विचारपर्यवसहित सर्वाथिसिद्धिका शब्दश विधीभनुवाद अध्याय ३ सू. २१  
 ह्योह्यो सरितोरेकं क्षेत्रं विषय इति वाक्यविशेषाभिसम्बन्धादेकत्र सर्वासा प्रसंगनिवृत्ति  
 कृता ॥ पूर्वा पूर्वा इति वचन दिविविशेषप्रतिपर्ययम् ॥ तत्र पूर्वा या सरितस्ता पूर्वगा । पूर्व  
 जलाधिं गच्छन्तीति पूर्वगा ॥ किमपेक्ष पूर्वत्व ? सूत्रनिर्देशापेक्षम् ॥ यद्येवं गगासिन्धादय सप्त  
 पूर्वा इति प्राप्तम् । नैप दोष । ह्योह्योरेत्यभिसम्बन्धात् ॥ ह्योह्यो पूर्वो पूर्वगा इति वेदितव्या ॥

इतरासा दिविविभागप्रतिपर्ययमाह—

- = ह्यो ॥ ह्यो ॥ सति ॥ एक पद ॥ स्वर् ॥ विप ॥ = (साव युगल) नदिव्ये से दोदो एकपक्ष क्षम विषे (क्रमसे) है
- = इति ॥ साव विषये अतिसम्बन्धात् ॥ एक ॥ सर्वासा ॥ = ऐसा वचन विशेष ओदनस एक स्थानसे सबके
- = मसंग-नितुवि ॥ कृता ॥ पूर्वा ॥ पूर्वगा ॥ = संगोक्त निराकरण क्रिया भाय है (सम्ये) पहिली पहिली गमन करनेवाली
- = इति ॥ तन्ने ॥ दिक्-विशेष-मविषयि अथम् ॥ = एसा वाच्य विशाक विशेषके कानके शिष्ये है ॥
- = सत्र ॥ अर्थात् ॥ सति ॥ सा ॥ पूर्वगा ॥ = एसा (सम्ये) पहिलीपहिली जो नदिया है व पूर्व विशाको जानेवाली है
- = पूर्व अक्षिर्दिग्गन्वि ॥ इति ॥ पूर्वगा ॥ पूर्वत्वम् ॥ = पूर्व समुद्रका गमन करती है ऐसी पूर्वगा (नदिये) है (मयन) पूर्व पन
- = दिक् अथर्वे ॥ पूर्वत्वम् ॥ सूक्त-नि ॥ यथा अवेत्ता है अर्थात् किसती अवेत्तानुसार पहिली है (इस) सत्रके कयनकी
- = अथर्वम् ॥ = विवक्षा है अर्थात् सत्रके पाठमें ओ पहिले कहीं तिसकी विवक्षा से पहिली है ॥
- = यवि ॥ एषम् ॥ = ओ ऐस है (अर्थात् ओ नदियां समुद्र में पहिले कथित है सो पहिली है) वो
- = गंगा-सिन्धु मादय ॥ सत्त्व ॥ पूर्वगा ॥ इति ॥ मात्तम् ॥ = गंगासिन्धु रोहित रोहितास्या आदि सातपुत्रदिशाको बहनवाली ऐसा अर्थ प्राप्त हुआ
- = न ॥ एषम् ॥ दोष ॥ = यह पदक्ष नहीं है अर्थात् सत्रमें पूर्वा शब्द कानेसे गंगा सिन्धु-रोहित रोहितास्या
- = ह्यो ॥ ह्यो ॥ इति ॥ सम्बन्धात् ॥ = इति ॥ शिकान्ता-सीतान्ये सम्यगी का सकती है ॥
- = ह्यो ॥ ह्यो ॥ पूर्वगा ॥ इति ॥ सम्बन्धात् ॥ = क्योंकि युगल-युगलमें ऐसा (पूर्व शब्दके साथ) ओदनस वा सम्बन्धकारनेसे
- = इतरासा ॥ दिक्-विभाग प्रतिपर्ययम् ॥ आह ॥ = युग-युगमेंसे पहिली पहिली पूर्व समुद्रको जानेवाली है इस प्रकार जानना चाहिये
- = इतरासा ॥ दिक्-विभाग प्रतिपर्ययम् ॥ आह ॥ = अन्य (नदियों)के दिशा बिपक्षिके कहनेकछिद (आधार्ये अगले सूत्रमें) कहते है कि



॥ गङ्गासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकास्तासीतासीतोदानारीनरका-  
 न्तासुवर्णरूप्यकूलारक्तोदा सरितस्तन्मध्यगा ॥ २० ॥  
 सरितो न वाप्य । ता किमन्तरा उत समीपा ? इत्यत आह तन्मध्यगा । तेया क्षेत्राणा मध्यं,  
 तन्मध्यं तन्मध्येन वा गच्छन्तीति तन्मध्यगा ॥ एकत्र सर्वासा प्रसङ्गनिवृत्त्यर्थं द्विविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह-  
 सूत्रम्-<sup>(१)</sup> गङ्गासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकास्तासीतासीतोदानारीनरकान्तासुवर्णरूप्यकूलारक्ता-

सिद्धि  
 सूत्र २०  
 सूत्र २१

॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥ २१ ॥

रक्तोदा सरितस्त मध्यगा ॥ २० ॥

सुवर्णः—गंगा-सिन्धु-रोहि-रोहितास्या-रति ररिकास्ता-सीता-  
 सीतोदा-नारी-नरकान्ता-सुवर्णकूला-रूप्यकूला-रक्ता-  
 रक्तोदाः॥सरितः॥रुद्र-न यगाः॥  
 सुवर्णसुवर्णः—सरिताः॥न०वाप्यः॥  
 ताः॥किस०अन्तरा०उत०समीपाः॥पृति०अदाः०  
 भारु तेषां॥स्वेषार्णः॥पृष्यः॥कल्प्यः॥तन्मध्येनः॥  
 शाक्यपत्न्या इति० तन्मध्यगाः ॥ एकत्र०सबासां॥  
 मसंग-निवृत्ति अर्थः॥, द्विविशेष मतिपक्ष-अयसः॥भारु  
 सूत्रम्-द्वयोर्द्वयो पूर्वा पूर्वगा ॥ २१ ॥  
 पूर्वाः—द्वयोर्द्वयोः॥सरिताः॥सूत्रे  
 पूर्वाः॥द्वयोर्द्वयोः॥पूर्वाः॥पृष्यः॥

—गंगा, सिन्धु, रोहिर् रोहितास्या, हरिव, हरिकान्ता, सीता  
 =सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता  
 =सूत्रम् सरित शुष्क खानेसे यह अप्रियार्ण है कि चौदह नदियों हैं नकि पावाड़िये  
 नौ(नदियों)या अन्यराल-दूर दूर हैं(अन्तरा)या पास २(इनसे)को, हैं इतलिये  
 =कहते हैं कि तिन सबको बीच सो तन्मध्य है ॥ (तिन क्षेत्रोंके मध्यमेंसे है  
 =अथवा गमन करती है पत्नी तन्मध्यगा है । एक और सब (नदियों ) के  
 =सयोगके निषेधके लिय और दिशाके भेद करनेके लिये(अप्रियसूत्रमें, आवतें कि  
 =द्वयोः द्वयोः सरितोः पूर्वाः कथिताः ( सूत्रे ) पूर्वगा गच्छन्ति  
 =(नदियोंके मल्येक युगल युगलमेंसे या युग-युग-मेंसे [बीसबा] सूत्रमें  
 =परिष्ठी परिष्ठी बाणित नदी) पूर सद्यस्को जाती हैं अर्थात् गंगा, रोहित,  
 =रक्ता ये सातनदियें पूर्वकी ओर बहकर सपण सद्यस्में मिलती हैं ॥

(१) येगास्वर आत्माके कलात्मकस्वरूपीविषयसूत्रमें बह सूत्र जरा है ॥ २० ॥  
 सूत्र की रूपसे आये हैं दोनों जोक है ॥





एवमिवासी अगस्तसहाय रकीलकृत पदच्छेद और विमलस्यसहित सप्तार्थसिद्धिका शक्यताः हिन्दीमनुवाच अ याप ३ सूत्र २२, २३  
 तोरणद्वारनिर्गता सीता ॥ उदीच्यतोरणद्वारनिर्गता नरकान्ता ॥ महापुण्डरीकहृद्प्रभवा दक्षिण-  
 द्वारनिर्गता नारी ॥ उदीच्यतोरणद्वारनिर्गता रूप्यकूला ॥ पुण्डरीकहृद्प्रभवा अवाच्यतोरणद्वार-  
 निर्गता सुवर्णकूला ॥ पूर्वतोरणद्वारनिर्गता रत्ना ॥ अपरतोरणद्वारनिर्गता रक्तोदा ॥

तासां परिवारप्रतिपादनार्थमाह—

॥ चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गङ्गासिन्धवादयो नद्यः ॥ २३ ॥

तोरण-द्वार-निर्गताः ॥ सीताः ॥

उदीच्य-तोरणद्वार-निर्गताः ॥ नरकान्ताः ॥

महापुण्डरीकहृद्-प्रभवाः ॥ दक्षिण-द्वार-निर्गताः ॥ नारीः ॥

उदीच्य-तोरण-द्वार-निर्गताः ॥ रूप्यकूलाः ॥

पुण्डरीकहृद्-प्रभवाः ॥ अपरतोरणद्वार-निर्गताः ॥ सुवर्णकूलाः ॥

पूर्वतोरणद्वार-निर्गताः ॥ रत्नाः ॥

अपरतोरणद्वार-निर्गताः ॥ रक्तोदाः ॥

सीताः ॥ परिवार-प्रतिपादन-अर्थम् ॥ आर १

सूत्रम्— १) चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गङ्गासिन्धवादयो नद्यः ॥ २३ ॥

सूत्रार्थः— चतुर्दशनदी-सहस्र-परिवृताभिः ॥ गङ्गासिन्धु-  
 आदयः ॥ नद्यभिः ॥

= तोरणद्वारसे निकली हुई सीता है ॥

= उससेसरीस्ररके) उचरके तोरणद्वारसे निकली हुई नरकान्ता नदी है ॥

= महापुण्डरीकहृद्-प्रभवाः उद्भवस्थानके दक्षिण द्वारसे निकली हुई नारी नदी है

= उस महापुण्डरीकहृद्-प्रभवाके तोरण द्वारसे निकली हुई रूप्यकूला नदी है ॥

= पुण्डरीकहृद्के दक्षिणके तोरणद्वारसे निकली हुई सुवर्ण कूला नदी है ॥

= उस पुण्डरीकहृद्के) पूर्व तारण द्वारसे निकली हुई रत्ना नदी है ॥

= (उस पुण्डरीकहृद्के) पश्चिमद्वारसे निकली हुई रक्तोदा नदी है

= निम्न(नदियों)केकुम्बुकी नदियोंके जाननेकेलिए अग्रिमसूत्रमें कहते हैं कि

= चौदह सप्त नदियों करि परिवारित गंगा तथा सिन्धु  
 = आदि नदियों हैं अर्थात् गंगामें छोटी नदीय सप्त नदियें आकर मिलीं  
 और सिन्धुमें भी छोटी २ नदीय सप्त नदियें मिली हैं । रोहित तथा रोहितास्या प्रत्येककी अर्धार्धस २ सप्त  
 परिवारकी नदियें हैं ॥ इमिकार इति और इरिका वाकी षापन सप्त है ॥ सीता और सीतोदाकी

(१) इतकाअर्थ आनापक सम्यक् तस्वार्थाधिगम सूत्रमें यह सूत्र नहीं है ।

षडधिकं विशति षड्विंशति । षड्विंशतिरधिकानि येषु तानि षड्विंशानि । षड्विंशानि षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तार । षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तार । षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तार ॥ भरत क्रिमेतावानेव, नैत्याह । षट्चै-  
सुत्रार्थः— भरतर्षे षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारर्षे ॥

षट् षडधिकं ऊन विशति-यागाः योजनस्यर्षे ॥  
युष्पनुवादाः— षट्-अधिकं षड्विंशतिर्षे षड्विंशतिर्षे ॥  
षट् षड्विंशतिर्षे अतिक्रान्तिर्षे ॥  
षट् षड्विंशतिर्षे अतिक्रान्तिर्षे ॥  
षट् षड्विंशतिर्षे अतिक्रान्तिर्षे ॥  
षट् षड्विंशतिर्षे अतिक्रान्तिर्षे ॥

यस्य षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारः षट् षड्विंशतिर्षे ॥  
यस्य षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारः षट् षड्विंशतिर्षे ॥  
यस्य षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारः षट् षड्विंशतिर्षे ॥  
यस्य षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारः षट् षड्विंशतिर्षे ॥

यस्य षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारः षट् षड्विंशतिर्षे ॥  
यस्य षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारः षट् षड्विंशतिर्षे ॥  
यस्य षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारः षट् षड्विंशतिर्षे ॥  
यस्य षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारः षट् षड्विंशतिर्षे ॥



एवमिवासी गणस्यसाय बह्विह कृत पदभेदे और विमलस्यै सति सर्वांसिदिका शय्याः दिन्वी अनुपाद आधाय ३ सूत्र २५, २६  
नेत्याह, विदेहान्ता इति ॥ अथोत्तरेषा कथमित्यत आह—

## ॥ उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥ २६ ॥

नभ्रविःआह्राविदर भन्नाः॥विः

=वेसा नदी है-कहा है कि (आठ) विदेह सेभक्त (पारतर्षसे परत और क्षेत्र एक दूसरे से  
उपरोपर हुगने हुगने) है अर्थात् परत क्षेत्र ५ २६ई, योजन चौड़ा है (१) विमान् कुशाचल=  
१०५ २११ योजन चौड़ा है ॥ (२) हैभवत् क्षेत्र=२१०५ई, योजन चौड़ा है ॥ (३) महाविमान्  
कुशाचल=४२१०ई योजन चौड़ा है ॥ (४) हरिश्चन्द्र=४२११, योजन चौड़ा है ॥ (५) निपप  
कुशाचल=१६०४३ई, योजन चौड़ा है ॥ (६) विदेहक्षेत्र=३३६०६ई, योजन चौड़ा है ॥  
=आष (विदेहक्षेत्र स) उचर दिशाओं का (विस्तार) इसै है इसलिय (आगला सूत्र में)कतहैं कि

(१)सूत्रम्-

उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥ २६ ॥

इस सूत्र में यदि २५वां सूत्रसे "वपपर र्षा" और "विदेह" बाक्योंका अनुवर्षण करे तो पाठ और  
अर्थ निम्नलिखित (१)के अनुकूल होता है और यदि केवल "विदेह" शब्दकी अनुवृत्ति लें तो पाठ और  
अर्थ (२) के अनुसार होता है पिछला अर्थ पर्यपाद सामीची सर्वांसिदिका के अनुसार है और  
परिष्ठा अर्थ बहुत विस्तृत भी है जैसा कि दोनों मति के अर्थ जो नीचे लिखे जाते हैं उनसे पाठ है ॥

वर्षपरवर्षाः॥विदर उचराः॥दक्षिण  
तुल्याः॥

(१) वर्षधरवर्षा विदेहोत्तरा दक्षिणतुल्या ।

=परत और क्षेत्र विदेह से उचर दिशा के दक्षिण दिशाके (परत और क्षेत्रों के)  
=समान है अर्थात् विदेह क्षेत्रसे उचरदिशाके तीन मील र्षवी और शिलवी परत और तीन  
रम्पक, हैरण्य और ऐरावत क्षेत्र विदेहसे दक्षिणदिशाके तीन निपप, महा  
हैभवत् क्षेत्रपरत परत और तीन हरिश्चन्द्र परत क्षेत्रोंके परापर विस्तारवाले है ।

(१) हमारे पाठ एक सूत्र का पाठ एक है । उचर दक्षिणतुल्या, बरीबरी पर पाठ है वह कथक है । उचराश्चर आगलासे एकको सूत्र नहीं माना है ।

एवमित्यासी अगल्पसहाय इत्यत्र ह्य परब्रह्मे और विभक्त्यर्थे सारित सर्वार्थसिद्धिश्च उच्यते। इत्यौच्युत्वात् । अथाप ३ सूत्र २६  
 उत्तरा एरावतादयो नीलान्ता भरतादिभिर्दक्षिणैस्तुल्या द्रष्टव्या । अतीतस्य सर्वस्याय विशेषो  
 वेदितव्यः ।

पश्चे एषीसर्गा सूत्रे दक्षिणके पक्षत तथा छत्रोका पुण्ड् पुण्ड् विस्तार इति सो ही उच्यते पर्वत तथा छत्रोका समकना चारिये ॥

(२) विदेह-उत्तरा दक्षिण-तुल्या ॥

=विदेहक्षेत्रे उत्तरादिशाके

(१) पर्वत, ३ छत्र, १ द्रव ३ कमला षड नदिये और पारिवारिक नदिये आदि।

=दक्षिण दिशाके

(२) पर्वत ३ छत्र ३ द्रव ३ पुण्ड्रक षः नदिये और पारिवारिक नदिये आदि।

पर्वतस्य नदियोर्येते सीतानदी केसरी द्रवसे निकलकर पूर्वी विदेहोके विभाग करती हुई खलखलसुप्रभे पूर्वकी ओर जाकर  
 भिल्लतीर और सीतोदा नदी सिंगिब्रदसे निकलकर पश्चिमी विदेहोके विभाग करती हुई खलखलसुप्रभे पूर्वकी ओर जाकर  
 सुपनुवादा-उत्तराकरेरावत-आदयः।

नील-अन्वाः। पारतादिभिः।

दक्षिणैः। तुल्याः। दृष्टव्याः। अतीतस्यः।  
 सप्तस्यः। आगम्यः। विद्योः। वेदितव्यः।

(१) पश्चिम कोय पृष्ठ ७१ में 'उत्तरा' शब्दका अर्थ आद्यः वेदे है (लो०) येवकी विस्तृत्यति होवेपर सप्तस्योकरके अन्वतर जो पितृसम्बन्धी  
 किया की जाती है सप्तस्योकरके पीछेकी आद्यकियाये । उत्तर दिशा कात्र, दश(अस्य०) इत्यत्रिये अनुवादमें उत्तर दिशाके अर्थमें अथप्य माना है ।



एवमिवासी काक्यसाय कर्षिक ह्य पदच्छेद और विपण्ययं सशिव सर्वायसिद्धिका शब्दशः शिल्पी अनुवाद अर्थाय ३ सूत्र २५, २६  
नेत्याह, विदेहान्ता इति ॥ अथोत्तरेषां कथमित्यत आह—

## ॥ उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥ २६ ॥

नक्षत्राणां विवर उतरा दक्षिणतुल्याः

—येसा नही रे-कहत है कि (आठ) विदेह क्षेत्रक (मरतभर्यसे पूर्व और क्षेत्र एक दूसरे से उचरोपर दुगने दुगने) है अर्थात् मरत क्षेत्र ५२६६, योजन चौड़ा है (१) विमान् इत्यापक= १०५२३३ योजन चौड़ा है ॥ (२) ऐषवत् क्षेत्र=२१०५१, योजन चौड़ा है ॥ (३) महाविमान् इत्यापक=४२१०१३ योजन चौड़ा है ॥ (४) हरिश्चन्द्र=४२११, योजन चौड़ा है ॥ (५) निपप योजन चौड़ा है ॥ (६) विदेहक्षेत्र=३३६०६३, योजन चौड़ा है ॥

अथ उतरा दक्षिणतुल्याः  
(१) सूत्रम्—

उतरा दक्षिणतुल्या ॥ २६ ॥

इस सूत्र में यदि २५वां सूत्रसे “वपपर वर्षा” और “विदेह” शब्दोंका अनुकरण करें तो पाठ और अर्थ निम्नलिखित (१)के अनुकूल होता है और यदि केवल “विदेह” शब्दकी अनुवृत्ति लें तो पाठ और अर्थ (२) के अनुसार होता है जिसका अर्थ एकपाद स्वामीकी सर्वायसिद्धिपुत्रि के अनुसार है और परिभाषा अर्थ बहुत विसृत भी है जैसा कि दोनों अर्थों के अर्थ जो नीचे लिखे जाते हैं उनसे पाठ है ॥

वर्षावर्षां विवर उतरा दक्षिणतुल्याः

(१) वर्षावर्षा विदेहोत्तरा दक्षिणतुल्या ।  
—वर्षात और सूत्र विदेह से उतरा विद्या के दक्षिण दिशाके (पूर्व और क्षेत्रों के) —समान है अर्थात् विदेह क्षेत्रसे उतरादिशाके वीन वीस कर्मी और शिल्लरी पकव और वीन

रम्यक, हैरण्य और ऐरावत क्षेत्र विदेहसे दक्षिणदिशाके वीन विविष, महा हैरण्यक, हैरण्य और ऐरावत क्षेत्र और वीन हरिश्चन्द्र मरतक्षेत्रोंके बराबर विस्तारवाले हैं । (१) इससे वहाँ इस सूत्र का पाठ एक है । उतरा दक्षिणतुल्याः कर्षिकी वत् पाठ है यह अष्टक है । एतेनाष्टक आत्माकमे इत्यको सूत्र नहीं माना है ।

एतन्निवासी गणरूपसहाय बलीक कुत परबद्धय और विपारसर्व सखि सगणसिद्धिका शब्दशः सिन्धीअनुवाद । अप्याप ३ सूत्र २७  
 न तयो क्षेत्रयोरबुद्धिहासी स्त । असम्भवात् । तत्स्थाना मनुष्याणा बुद्धिहासी भवत ॥  
 अथवा अधिकरणनिर्देश भारते ऐरावते च मनुष्याणां बुद्धिहासाविति ॥ किं कृतौ बुद्धिहासी ?  
 अनुभवायु प्रमाणादिकृतौ ॥ अनुभव उपभोग, आयु

न कवयोऽपि ॥ क्षेत्रयाः ॥ बुद्धिहासीः स्तः ।  
 असम्भवात्तदौक्त्य  
 स्थानात् ॥ मनुष्याणां बुद्धिहासीः प्रमाणाः अथवा  
 अधिकरणनिर्देशोऽप्यभवात् ॥ परावर्तः च \*  
 मनुष्याणां बुद्धिहासीः मृतिः \*

एतन्न (भारत, ऐरावत) के सफल अथवा विस्तार की जाती पन्ती है ॥  
 =वर्षादि (विस्तारका बढ़ना पटना) असम्भव है । तिन (भारत ऐरावत) में  
 =उपरनेचाले मनुष्योंकी बढ़ती घटती होती है ॥ अथवा (पृथ्वी निर्देश्य लोडकर)  
 =सतमी विभक्तिक निरूपणमें भारतमें तथा ऐरावतमें (रहने वाले)  
 =मनुष्योंकी बढ़ती घटती है ऐसा है "भाषार्थ ऐसा है कि" सूत्र में "परतैरावतयोः"  
 यह वाक्य पृथ्वी वा सतमी विभक्तिमें एक ही रूप पारण करता है इस वाक्य के साथ  
 बुद्धिहासी वाक्य के जोर देने से पृथ्वी में यह अर्थ होता है कि भारत तथा ऐरावत की बुद्धि और इस अर्थात्  
 एक प्रकारसे ऐसा आशय समझा जासका है कि भारत और ऐरावत क विस्तारकी बढ़ती तथा घटती  
 नस्सर्पिणीकाल तथा अस्सर्पिणीकालमें होती है इस पूर्वोक्त संदर्भको दूर करनेके लिये भाषार्थ "परतै-  
 रावतयोः" वाक्यको सतमीमें लेकर ऐसा कथन करते हैं कि भारत तथा ऐरावतमें (निवास करने वाले  
 मनुष्यों की) बढ़ती और घटती होती है न कि भारतवर्ष तथा ऐरावतवर्षके विस्तार अथवा संश्रयणकी  
 घटती तथा पटती होती है ॥

क्रियेऽकृतौऽबुद्धिहासीः  
 अनुभव आयुस् प्रमाणा-आदि-कृतौः  
 अनुभवऽउपभोगऽआयुः ॥

(१) यह आयु शब्द कामरूपय भार १० खंडोके १२० में "आयुस्" इस रूपमें मनुसक किंगमें पाया जाता है इसकी प्रथमा विभक्ति एक पद्यका  
 "आयु" मनुसक किंगमें पयस् शब्द के सदृश बनेगी ॥

तेन दृढदुष्करादीनां तुल्यता योज्या ॥ अत्राह, उक्तेषु भरतादिषु द्वेषेषु मनुष्याणां किं तुल्योऽनुभवादि ।  
 आहोस्त्वित्काश्चिदस्ति पृतिविशेष इत्यत्रोच्यते—

भरतैरावतयोर्वृद्धिहासौ पट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥ २७ ॥

वृद्धिश्च ह्यामश्च वृद्धिहामौ । क्रम्या ? पट्समयाभ्याम् । कयो ? भरतैरावतयो ।

वर्णः  
 इ-नुष्कर  
 आदीनामप्युत्सवदोषकाः ॥ । अत्रकथाः  
 रकमुष्कः ॥ परतादिपुष्कः ॥ कर्णः ॥ पनुष्याणः ॥ किं कः कथित प्रतादिक सुत्रोमे मनुष्योका तथा  
 तुल्य मनुष्य आदिः ॥ आहोस्त्वित्काश्चिदुत्  
 अस्तिमविकिरणः ॥ पितृकथाः अत्रकथाः  
 सूत्रम्—(१) भरतैरावनयोर्वृद्धिहासौ  
 सूत्रार्थः—भारत-परावतयोः

=तिसा(विशेष अर्थात् जपरा दक्षिण तुल्या) करि  
 =इह, रूपल (पर्व, स्र, नदिये, परिकारकी नदिये)  
 =भाविकोकी समानता संगर्भ माय है । यहाँ ( शिष्य ) पूजका है कि  
 =तुल्य अनुपम आदिक हैं अथवा तुल्य  
 =विभक्त(=अविशेष) हैं इसलिये (=ति)यहाँ (अग्निपसूत्रों) कहा माय है कि ॥  
 पट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥ २७ ॥  
 =भारतवर्ष और परावतवर्षमे

( निवास करनेवाले मनुष्य और विष्वोकी आयु, क्षाय, अनुपम, सपदा, शीर्ष, दुःखपादिका)  
 =बढ़ना फटना उत्सर्पिणीकय अवसर्पिणीकय  
 =वै धै कासीके हेतुसे (पयासकय) होता है ॥  
 =और बढ़ना तथा घटना है सो बुद्धि हासौ है (मरन) किन सो हेतुसे बढ़ना घटना है ।  
 =(उत्तर-उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणीकमुगल व कासीसेबढ़ना तथा घटना है) ॥  
 =(परम)किन सोका [बढ़ना घटना है] (उत्तर)भारत परावतकता ॥

(१) हेतुवापर आत्मायके कताप्यतत्वात्पिणिगमपुत्रमे पर सुत्र नदी है इ इत्त कथायके पृष्ठ ३७, ३८की टिप्पणी देखो ॥  
 (२) मरिचीभ्याम्के कथनमेव(मरिचीकोम्ब)भाषक है पर एक प्रकारके कण्टक है (ऐको टिप्पणी कथाय मन्त्रमुक्त) ३)पेच पाठ बनारसे कर्मी परकी है



एवाविवासी काकयसराप वकीलकृत पदच्छेद और विपरस्पर्यसहित सर्वांगसिद्धिका शब्दश्च हिन्दीअनुवाद अन्वयाय ३ सुप्त २७

जीवितपरिमाणं, शरीरोत्सेध इत्येवमादिभिर्बुद्धिहासौ मनुष्याणा भवत ॥ किहेतुकी पुनस्तौ ? कालहेतुकी ॥ स च कालो द्विविध । उत्सर्पिणी अवसर्पिणी चेति ॥ तद्वेदा पट् ॥ अन्वर्थसञ्ज्ञे चैते ॥ अनुभवादिभिस्त्सर्पणशीला उत्सर्पिणी । तैरेवावसर्पणशीला अवसर्पिणी ॥ तत्रावसर्पिणी पट्विधा—सुप्तसुषमा । सुपमा । सुधमदुष्पमा । दुष्पमा । अतिदुष्पमा । उत्सर्पिण्यपि अतिदुष्पमाथा सुपमसुपमान्ता

जीवितपरिमाणं ॥ शरीर उत्सेधः ॥

स्वपपञ्चविधिर्बुद्धिहासौ मनुष्याणां भवत ॥

पुन क्वाः किञ्चैतुकी ?

काल-हेतुकाः स-च-कालादः ॥

द्विविधोऽवसर्पिणीः अवसर्पिणीः ॥ अ-व-स-र्पि- ॥

तद-अ-व-स-र्प- ॥ पट् ॥

अन्वर्थ-सञ्ज्ञे च-व-स-र्पे ॥ ।

अनुपम-यादिभिर्बुद्धिहासौ ॥

उत्सर्पिणीः ॥ तौ ॥ एव-अवसर्पण शीलाः ॥

अवसर्पिणीः ॥ तत्र-अवसर्पिणीः ॥ प-ट्-वि-या- ॥ सुपमसुपमाः ॥

सुपमाः ॥ सुपमदुष्पमाः ॥ दुष्पमसुपमाः ॥

दुष्पमाः ॥ अतिदुष्पमाः ॥ । उत्सर्पिणीः ॥ अ-रि- ॥

अतिदुष्पमाः ॥ जा-प- ॥ सुपमसुपमाः ॥ अ-म्भा- ॥

=जीवनकालका परिमाण (और) शरीरको ऊर्चाई

=इत्यादिक करिरी (=इत्येवमादिभि ) वक्षती और पन्ती मनुष्योंकी होती है ॥

=(पशुन) पशुरि वे (बुद्धिहास) कौन निमित्तक अथवा जनित है ।

=(वचर) समयकारणक है अर्थात् समृद्धि और क्षतिका हेतुकाव है । अर्थात्=वृत्तकाल

=दो प्रकार है । उत्सर्पिणी और (=च, अवसर्पिणी) एत ॥

=उन 'वत्सर्पिणी और अवसर्पिणी) के भेद पयक् पुयक् (मत्येक) एत है

=अशुचि=च, ये वत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी) मत्सा अर्पे वत्सा (=अन्वर्थ) नामधारक है

=(पूर्वोक्त) अनुपम आदिक सहित आगवदनेका (=उत्सर्पण) है स्वभाव जिसका

अर्थात् बुद्धि करनेकी है प्रकृति जिसकी सो

=वत्सर्पिणी है तिन (अनुपम, आदि) से ही (=एव) पीछेवदनेका (=अवसर्पण) है

स्वभाव जिसका अर्थात् ब्रूत करने की है प्रकृति जिसकी सो

=अवसर्पिणी है तहां अवसर्पिणी अथ प्रकार है सुप्तमसुप्तमा

=सुप्तमा, सुप्तमदुष्पमा, दुष्पमसुप्तमा

=दुष्पमा अतिदुष्पमा उत्सर्पिणी [काल] भी है

=जिसका अति दुष्पमा(काल)परिहार और सुप्तमसुप्तमा(काल, अथवसर्पिण्यथा(अन्वर्थ) है

व्यतिनाली नगरसप्तमय पक्षीखल्व पक्ष्मिद और निपत्स्यसंशित सर्वाथिसिद्धि शब्दः गिन्धीअनुवाद अर्यापय ३ सूत्र २८, २९

॥ ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥ २८ ॥

ताभ्या भरतेरावताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिता भवन्ति, न हि तत्रोत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ स्त ॥  
किं तासु भूमिषु मनुष्यास्तुल्याथुप आहोस्त्विकश्चिदस्ति प्रतिविशेष इत्यत आह—

॥ एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हेमवतकहारिवर्षकैवकुरवकाः ॥ २९ ॥

सूत्रम्—(१) ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिता ॥ २८ ॥

सूत्रार्थ—ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिता ॥ २८ ॥  
= तिन(परात तथा परावतवर्गों)से अन्य (हेमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हेरएयवत)

भूमि ॥ अवस्थिता ॥  
= नृप्रियायें उद्योकीत्योमित्य है अर्थात् इनके सभोंमें वृद्धि हुआ सर्वा होता है ॥

परावतवत—ताभ्यामपरावत-परावतान्यामपरा ॥  
= उन परत तथा परावत वर्गोंस अन्य (हेमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हेरएयवत)

भूमि ॥ अवस्थिता ॥ पवन्ति ॥  
= नृप्रियायें उद्योकीत्योमित्यविधान (अवस्थिता) हैं (=भवन्ति)

न ० रि ० व ० स ० १

वत्सविष्ठी-अकसर्विपर्युत् ॥ क्रियुः ॥ नासुः ॥ युमिपुः ॥  
= उत्सविष्ठी तथा अवसविष्ठीवाह (परत) क्या तिन (पंच) भूमिर्णोपिये

मुपय आयुषः ॥ पनुष्याः ॥ आतोस्वित् ॥ चरिवत् ॥  
= समान अवस्था वाले मनुष्य हैं ॥ अथवा (=आहोस्वित्) ॥ २८

अस्तिवतिविक्रमः ॥ पति ० मतः ० आह १

सूत्रम्—(१) एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हेमवतकहारिवर्षकैवकुरवका ॥ २९ ॥

सूत्रार्थ—एक-द्वि-त्रि-पल्योपम-स्थितयो हेमवतकहारिवर्षकैवकुरवका ॥  
= हरिषर्षके निवासकरसवाले मनुष्य और देवकुत्र(योगमूर्ति)क बसनेवाले मनुष्य हैं

एकद्वि-त्रि-पल्योपम-स्थितयो हेमवतकहारिवर्षकैवकुरवका ॥ २९ ॥  
= अर्थात् हेमवत कुर ओ नाल्य योग भूमि का लय है पक्षिके उपमे मनुष्योकी

एकद्वि-त्रि-पल्योपम-स्थितयो हेमवतकहारिवर्षकैवकुरवका ॥ २९ ॥

(१) हमारे वहाँ इन सूत्रोंका पाठ एकता है इत्यन्तम्पर आभ्यायके 'समाप्यतावागधिमक्रम मे इम सूत्रोंका मन् नहीं मानेहैं (दिल्लीकी पुस्तक ७ ३८ देखो)

एतन्निवासी ब्रह्मस्यसाय ब्रह्मीक इव स्वच्छेद और विपत्त्यर्थं सारिव सर्वाथैसिद्धिका शब्दशः शिल्पी मनुष्याय अप्याय ३ सप्त २७  
 ततः क्रमेण हानी सत्यां सुषमदुःखमा भवति हे सागरोपमकोटीकोट्यौ । तदादौ मनुष्या हेम-  
 वतकमनुष्यसमा ॥ तत क्रमेण हानी सत्यां दुष्पमसुषमा भवति एकसागरोपमकोटीकोटीद्विच-  
 त्वांशहर्षसहस्रोना । तदादौ मनुष्या विदेहजनतुल्या भवन्ति ॥ तत क्रमेण हानी सत्यां दुष्पमा  
 भवति एकविंशतिवर्षसहस्राणि ॥ तत क्रमेण हानी सत्यां अतिदुष्पमा भवति एकविंशतिवर्षसहस्राणि ॥  
 एवमुत्सर्पिण्यपि विपरीतकमा वेदितव्या ॥ अथेतरासु भूमिषु काऽवस्थेत्यत आह—

वतः क्रमेण हानी ॥ सत्याम् ॥ सुषमदुःखमा ॥  
 मपि ॥ २ ॥ सागरोपमकोटीकोट्यौ ॥ ३ ॥ आदौ ॥  
 मनुष्या ॥ रैषवतक मनुष्यसमा ॥  
 वतः क्रमेण हानी ॥ सत्याम् ॥  
 दुष्पमसुषमा ॥ एकसागरोपमकोटीकोटी-  
 द्विंशतिवर्षसहस्रोना ॥ मपि ॥  
 वतः क्रमेण हानी ॥ सत्याम् ॥ मपि ॥  
 एवमुत्सर्पिण्यपि विपरीतकमा वेदितव्या ॥ अथेतरासु भूमिषु काऽवस्थेत्यत आह—  
 वतः क्रमेण हानी ॥ सत्याम् ॥ सुषमदुःखमा ॥  
 मपि ॥ २ ॥ सागरोपमकोटीकोट्यौ ॥ ३ ॥ आदौ ॥  
 मनुष्या ॥ रैषवतक मनुष्यसमा ॥  
 वतः क्रमेण हानी ॥ सत्याम् ॥  
 दुष्पमसुषमा ॥ एकसागरोपमकोटीकोटी-  
 द्विंशतिवर्षसहस्रोना ॥ मपि ॥  
 वतः क्रमेण हानी ॥ सत्याम् ॥ मपि ॥  
 एवमुत्सर्पिण्यपि विपरीतकमा वेदितव्या ॥ अथेतरासु भूमिषु काऽवस्थेत्यत आह—

(1) कल्पे पलिकम् ६, वर्षे मनुष्यदुष्पमा ॥ इति कल्पव्याहारेऽन्वयान्ते (अथ) कल्प (सृष्टियों) विषे तथा दृष्टा (अथापत्या) हे इत्यस्ये कल्पे हे हि  
 वतः क्रमेण हानी ॥ सत्याम् ॥ सुषमदुःखमा ॥  
 मपि ॥ २ ॥ सागरोपमकोटीकोट्यौ ॥ ३ ॥ आदौ ॥  
 मनुष्या ॥ रैषवतक मनुष्यसमा ॥  
 वतः क्रमेण हानी ॥ सत्याम् ॥  
 दुष्पमसुषमा ॥ एकसागरोपमकोटीकोटी-  
 द्विंशतिवर्षसहस्रोना ॥ मपि ॥  
 वतः क्रमेण हानी ॥ सत्याम् ॥ मपि ॥  
 एवमुत्सर्पिण्यपि विपरीतकमा वेदितव्या ॥ अथेतरासु भूमिषु काऽवस्थेत्यत आह—

पदानिवासी आगलासहाय बहिलकृत पत्रकेदं और विपारपर्यंतसहित सर्वोपसिद्धिका शक्यः। शिवीअनुवाद आध्याय ३ सूत्र २६

तत्र मनुष्या एकपल्योपमायुषो द्विधनु सहस्रोब्धिता चतुर्थभक्ताहारा नीलोत्पलवर्णा ॥ पञ्चसु  
हरियंपेषु सुखमा सदाऽवस्थिता । तत्र मनुष्या द्विपल्योपमायुषश्चतुश्रापसहस्रोत्सेधा षष्ठभक्ताहारा  
शाखवर्णा ॥ पञ्चसु देवकुलरूपं सुषमसुषुपमा सदाऽवस्थिता । तत्र मनुष्यास्त्रिपल्योपमायुष

तत्र एकपल्योपमायुषः। मनुष्याः।  
द्विधनुः-सहस्र उष्णिक्वाः।  
चतुर्थं भक्त आहाराः।

नील-रत्न-वर्णः। पञ्चसु-हरियंपेषु।  
सुखमाः। सदा-अवस्थिताः। तत्र-मनुष्याः। दो-पल्योपमा  
आयुषः। षष्ठ-आप-सहस्र-वत्सेयान्।  
षष्ठ-भक्त-आहाराः।  
शैल-वर्णाः। पञ्चसु-देवकुलरूपं-सुषुपमायुषमा।  
सदा-अवस्थिताः। तत्र-मनुष्याः। त्रिपल्योपमायुषः।

बोधे तु कामसुखमाकाशमें एक बार भोजन साधारण प्रत्येक दिन मनुष्य करता था और एकमात्रमें बहुधा दो बार भोजन प्रत्येक  
रथो है । परकारक चतुर्थ भोजन करनेवालेका तापव्यं वह है कि 'एक दिनका अन्तर हैकर भोजन करनेवाला एक दिनके व्यवहार से भोजन प्रत्येक  
बाला' 'एकदिन चतुर्थ भोजन न करके भोजन करनेवाला' जैसे मानना कि पंचमकालके एक मत्तप्ये और अष्टम्य भोग मुक्तिके एक मत्तप्ये सायंसाय  
परी मत्तप्ये एक भोजन मंगलपारक प्रातःकालमें करेगा तबका पुरुष सोमपारकी प्रातःकालमें एक भोजन और दूसरा उसी पितृसक्तो सायंकाळको करेगा और  
सायंकाळको चौथा भोजन करेगा तब भोग मुक्तिका पूर्णक मत्तप्ये फिर भोजन करेगा रसलिये कहा है कि चौथा भोजन करनेवाले भगवति दीनपार  
का भोजन त्यागकर वा एक दिवसका अन्तर हैकर दूसरे दिन भोजन करनेवाला ॥



हेमवते भवा हेमवतका इत्येवं वृत्ति सति मनुष्यसम्प्रत्ययो भवति । एवमुत्तरयोरपि ॥ हेमव-  
तकादयस्त्रय । एकादयस्त्रय । तत्र यथासख्यमभिसम्बन्ध क्रियते । एकपत्योपमस्थितयो हेमव-  
तका । द्विपत्योपमस्थितयो द्वारिवर्षका । त्रिपत्योपमस्थितयो देवकुरवका इति ॥ तत्र पञ्चसु हेम-  
वतेषु सुपमदुष्पमा सदाऽवस्थिता ।

एक पत्योपकी भवत्या होती है । द्वारिवर्षे जहाँ पत्योपयोग भूमि है यहाँके निवासी मनुष्योंकी आयु दो पत्यु  
की होती है । और देवकुरव उद्यम योग्यमिहके निवासकरनवाले नरोंका हीन पत्योपम जीवन काल है ।  
=रैषवतकपत्तं हीनवाले अर्थात् उपजन वाले वे रैषवतका है इस प्रकार

=तुषु मप्य (रैषवत शब्द के साथ) हीनमें (=सति) (उत्सवेभ्यं हीनवाले)  
=मनुष्योंका ज्ञान वा योग होता है उसे आश्रिय दोमें (=उत्तरयो) भी है ॥ अर्थात्  
द्वारिवर्ष और देवकुरव शब्दों के साथ तुषु मप्य ज्ञान पर उन दोनों ज्ञानों में

वत्सल होनेवाले नरोंका जोप होता है और द्वारिवर्षक, देवकुरवकुरव होता है ॥  
=(इस सूत्र में) रैषवतक आदिक तीन हैं ॥ एक आदिक तीन (संख्या) है ॥  
=जहाँ (रैषवतक-द्वारिवर्षक और देवकुरवकुरव का एक दो तीन गणनाओंके साथ)

=सख्याके अनुसार वा अनुसरण (=यथासरणम् अर्थात् पहिले को पहिली  
दूसरे को दूसरी तीसरे को तीसरी इस क्रमसे),  
=सम्बन्ध वा संयोग किया जाय है (जैसे) एक पत्योपपत्नी आयुधारक

=रैषवत क्षेत्र (अन्य योग्यभूमि) के अपने मनुष्य है ॥  
=दो पत्योप के बीचकाखाल हरिवर्ष, तदन्य योग्य भूमि)के निवासी मनुष्य है  
=तीन पत्योपकी आख्यावाले देवकुरव (उद्यम योग्यभूमि के) रहने वाले नर है

=जहाँ पत्यु रैषवत क्षेत्रों में सुखमनुःख्य (काल) सर्वदाऽवस्थिताय है ।  
=जहाँ पत्यु रैषवत क्षेत्रों में सुखमनुःख्य (काल) सर्वदाऽवस्थिताय है ।  
=जहाँ पत्यु रैषवत क्षेत्रों में सुखमनुःख्य (काल) सर्वदाऽवस्थिताय है ।

एक पत्योपकी भवत्या होती है । द्वारिवर्षे जहाँ पत्योपयोग भूमि है यहाँके निवासी मनुष्योंकी आयु दो पत्यु  
की होती है । और देवकुरव उद्यम योग्यमिहके निवासकरनवाले नरोंका हीन पत्योपम जीवन काल है ।  
=रैषवतकपत्तं हीनवाले अर्थात् उपजन वाले वे रैषवतका है इस प्रकार  
=तुषु मप्य (रैषवत शब्द के साथ) हीनमें (=सति) (उत्सवेभ्यं हीनवाले)  
=मनुष्योंका ज्ञान वा योग होता है उसे आश्रिय दोमें (=उत्तरयो) भी है ॥ अर्थात्  
द्वारिवर्ष और देवकुरव शब्दों के साथ तुषु मप्य ज्ञान पर उन दोनों ज्ञानों में  
वत्सल होनेवाले नरोंका जोप होता है और द्वारिवर्षक, देवकुरवकुरव होता है ॥  
=(इस सूत्र में) रैषवतक आदिक तीन हैं ॥ एक आदिक तीन (संख्या) है ॥  
=जहाँ (रैषवतक-द्वारिवर्षक और देवकुरवकुरव का एक दो तीन गणनाओंके साथ)

=सख्याके अनुसार वा अनुसरण (=यथासरणम् अर्थात् पहिले को पहिली  
दूसरे को दूसरी तीसरे को तीसरी इस क्रमसे),  
=सम्बन्ध वा संयोग किया जाय है (जैसे) एक पत्योपपत्नी आयुधारक  
=रैषवत क्षेत्र (अन्य योग्यभूमि) के अपने मनुष्य है ॥  
=दो पत्योप के बीचकाखाल हरिवर्ष, तदन्य योग्य भूमि)के निवासी मनुष्य है  
=तीन पत्योपकी आख्यावाले देवकुरव (उद्यम योग्यभूमि के) रहने वाले नर है

=जहाँ पत्यु रैषवत क्षेत्रों में सुखमनुःख्य (काल) सर्वदाऽवस्थिताय है ।  
=जहाँ पत्यु रैषवत क्षेत्रों में सुखमनुःख्य (काल) सर्वदाऽवस्थिताय है ।  
=जहाँ पत्यु रैषवत क्षेत्रों में सुखमनुःख्य (काल) सर्वदाऽवस्थिताय है ।



एवमिवासी भगवन्महापद्मः कृत पदच्छेदं चौर विपक्ष्यर्पणं सञ्चित सभापसिद्धिं का शक्यः शिवीमनुवाद । अध्याय २ सूत्र २६, ३०  
 पठ्यन्तु सहस्रोच्चूया अष्टममत्काहारा कनकवर्णा ॥ अथोत्तरेषु काऽवस्थेत्यत आह—

॥ तथोत्तराः ॥ ३० ॥

यथा दक्षिणा व्याख्यातास्तथैवोत्तरा वेदितव्या । हेरपयवतकाहेमवतकेस्तुल्या । रास्यकाहारिविपर्यकेस्तुल्या ।

इतकपक्षाभिः १॥ अथ ३३ परेषुः  
 काभिः १॥ अथ ३३ ॥ प्रति ३३ मत ३३ आहार  
 सूत्रम्— (१) तथोत्तरा ॥ ३० ॥  
 सूत्रार्थः— यथा दक्षिणाः १॥ व्याख्याता १॥ यथा ३३ (एव ३३)  
 उत्तराः १॥ वेदितव्याः १॥

=श्रु सप्तस वाप ऊर्ध्वार्धेवाले आठवां भोजन प्रणय करने वाले हैं अर्थात् तीन दिन का बीच में अन्तर देकर चौथे दिन उसी समय भोजन प्रणय करनेवाले  
 =स्वर्ण वा रूप्यरूप हैं (मरुत) अब उत्तर दिशाओंमें  
 =यथा अबस्या है इतकिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि  
 =जैसे दक्षिणाः व्याख्याताः) तथा (एव) उत्तराः (पदितव्याः)  
 =उत्तरदिशाके (तीन क्षेत्र हेरपयवत रूप्यक और उत्तरकुठ के) निवास करनेवाले (मनुष्योंको) समझना चाहिये अर्थात् हेरपयवतक्षेत्र जो अल्प्य योग्यमृत्तिकाक्षेत्रे

यहाँके अपने मनुष्योंकी एक कल्प्य ही आयु होती है ॥ और उत्तरकुठ जो उत्तम भोग भूमिका क्षेत्र है यहाँके निवासी मनुष्योंकी आयु दोपक्ष्यकी होती है ॥ और उत्तरकुठ को उत्तम भोग भूमिका क्षेत्र है यहाँके निवासी नरोंका तीन कल्पोपमाका जीवनकाल है इस प्रकार पूर्वोक्त सन्मन्वी दक्षिण और उत्तरदिशाओंकी सर्व तीसमोगभूमि में व्याख्याता १॥ यथा ३३ एव ३३ उत्तराः ॥ जैसे दक्षिणदिशाए (सर्वाँ)वाले वर्णन कियेयें वैसेही उत्तरदिशाके (सर्वाँ)वालोंको हेरपयवत क्षेत्रके रहनेवाले मनुष्योंसे समान हैं । रूप्यक क्षेत्रके निवास करनेवाले मनुष्य हरिषर्पके मनुष्याः १॥ रास्यकाः १॥

(१) हमारे यहाँ इस सूत्रका पाठ सर्वत्र एक है ॥ इदं नाम्बर आठमाके सगण्यनस्तापीधिमन्त्रमे इसको स्पष्ट नहीं माना है (पृष्ठ ३०, ३२ की टिप्पणी)  
 (२) क्योंकि बर्णान् सप्तकृत वचिने वितीया चारक है इस हेतु से अनुवापसे मनुष्योंसे एका काये है जिसका वही अमिमाय है जो मनुष्योंके पासके सामान्य होता है अर्थात् हेरपयव क्षेत्रके रहनेवाले मनुष्योंके समान हैं ॥













# ॥ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥ ३२ ॥

जम्बूद्वीपविष्कम्भस्य योजनशतसहस्रस्य नवतिशतभागीकृतस्यैको भागो भरतस्य विष्कम्भ स पूर्वोक्त एव ॥ उक्तं जम्बूद्वीपं परिवृत्य वेदिका स्थिता, ततः परो लवणोदः समुद्रो द्वियोजनशतसहस्रवलयविष्कम्भः ॥

(१) सूत्रम्—भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥ ३२ ॥  
सुचार्यं—भरतस्य विष्कम्भः जम्बूद्वीपस्य।  
नवतिशतभागः।

=भारतवर्षकी (दक्षिण उत्तर) चौलाई मन्वुद्वीपके (मिस्रका व्यास एकलक्षयोजन है)

=एकसौ नव्वे भागों में से ( एक पाग ) है अर्थात्  $100000 = 12664$  योजन है )  
=जम्बूद्वीपके विस्तारके काल योजनके  
=एकसौ नव्वे पाग क्रिय हुआमें से, एकभाग भारतवर्षकी (दक्षिण उत्तर)  
=चौलाई है सो पहिले बणितकी है। नखित मन्वुद्वीपको  
=बौद्धकर पेंदी विष्ठी है अर्थात् मन्वुद्वीपके चारो ओर वेदिका है उसकपीछे खबणोदविधि है  
=मिस्र (वेदिका) से भागे खबणोदविधि समुद्र दोखाल योजन  
=खबणाकार ढङ्के आकार विस्ताररूप है अर्थात् खबणोदविधि की परिधिपर  
=दूसरा बिन्दुलेकर दोनों बिन्दुओंके मिलायेवाली रेखा दोखालयोजन लम्बी होगी।

एकबिन्दु लेकर उसकी सीपमें मन्वुद्वीपकी परिधिपर दूसरा बिन्दुलेकर दोनों बिन्दुओंके मिलायेवाली रेखा दोखालयोजन लम्बी होगी।

(१) इगारे परां इस सूत्रका पाठ एक है। स्पेताम्बर आत्मायके 'समाप्ताभ्यासायाध्यागम्य' में इसको सूत्र नहीं माना है ( इस आख्यायके पाठ भागोंमें मराठियायक पर्वत सोडब भागोंमें इरिष्येन पकोस भागोंमें निधिष पर्वत श्रीर चौलठि भागोंमें विरेडि लवका विस्तार है। येसे जम्बूद्वीपके एकसौ सवारस ( १४७ ) भाग तो दक्षिण सम्भवकी हैं और नौब पर्वत बचीस भागोंमें रम्यकण्डेन सोडब भागोंमें उकमी पर्वत भागोंमें ईरपगण्डेन कार भागोंमें शिपरी पर्वत दो भागोंमें मण देरावन काज एक भागमें विमक है। येसे कपार सम्भव्यो है जन्त माग सायाक पाठक ५९११६ = १७७७७ = १७१०० मिलाकसका है कि १२० बां भाग परत है। ५७ बां सूत्र के बोते हुये कि मरतकञ्च ५७९१६ है इसकी आकारयकता मही क्योकि एक सूत्र जो एसेके बना सूत्र है न बनाया होला ७७०००० = ७७१००० = ७७१०००

तत परो धातकीखण्डो द्वीपश्चतुर्भोजनशतसहस्रवलयविष्कम्भ ॥  
तत्र वर्षादीना संख्याविधिप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ द्विधातकीखण्डे ॥ ३३ ॥  
भरतादीना द्रव्याणां महिमाभ्यावृत्तिर्विबजिता । तत्र कथं सूचं ? अथाहियमाथाक्रियाभ्यावृत्तियोतनार्थः

- =उच (खण्ड समुद्र) से आगे पातकीखण्ड द्वीप वार
- =साल योमन वलयकार वा कड़केआकार विसारबाहा है । तत्र
- =सैआदिदोकी गणनाक रूप (=विधि) के आनेके खिय (अग्रिमसूत्रमें) करते हैं कि
- =धातकीखण्डे द्वीपे भरतादयो हि संख्यायन्ते ॥ ३३ ॥
- =पातकीखण्ड द्वीपमें भारतवर्ष, कुलाखण्ड, पषत, दूर रूपल आदि (अभ्यूहीपसे)
- =रूने देने गिनेमाते हैं ।

=(पातकीखण्डे पादिककी) (विषयासे क्रियागारं भागति सूत्रप्रत्ययों वा सभ्यालोमें कथन नहीं करना चाहिये), उसक उपार्थ करते हैं कि पातकीखण्ड और पुष्कार्थ आदिका कथन आचार्य करवुके तब दुबारा कथन कराविकुके विराण्ड किये विना होनहीं सकता है अगर ऐसा न करते तो यातकी खण्ड और पुष्कार्थ आदिका कथन अक्षरपही करनाया उनका कथनररमावा, तत्पार्थसूत्र बन्पूरा होमावा सो वीक नहींया इसअपवादको खियदुये दुबारापरागादिकका कथन करना पडा ॥

=वर्षा(सूत्रमें दिखण्डो)केसे सूच्यत्वय(मो रूपान्तर होकरासूच्य=सू=स्=र/शोवागे) = (इससूत्रमें) कियेके कल्पना द्वारा विराण्डकी स्पष्टताके मतानेके लिये

(१) इस सूत्रका नामो आत्मावो में पाठ और कथं एकसा है ॥ (२) पहा पर मालआदि द्रव्य हैं ॥ प्याकल्पते मकृति मयप सिंग संख्या विकिष्टयो द्रव्य कहा जाता है अतएव सिंग सिंग संख्या विकिष्ट होमेसे द्रव्ययावक शब्द हैं ॥ (स्याकल्पते) तब पार्थ कि जिसका सिङ्ग और संख्या से सम्बन्ध हा मयप है । यद्यप्यत्र पाठ पृष्ठा ६१ ॥ अणुरा द्रव्य शब्दका अर्थपाणर जीव, अजीव पान अयमं आकाश आत द्रव्योंमेंसे कार्त्तवी आठे-त नहीं है ॥

(१) सूत्रम्—द्विधातकीखण्डे ॥ ३३ ॥  
सामर्थ-पातकीखण्डे द्वीपे भार्त्तम् ॥ भार्त्त  
द्विधसंख्यायन्ते ॥  
पुण्यनुवाद-भारत-भारदीना ॥ (२) द्रव्याणां महिमाभ्यावृत्तिर्विबजिता ॥

सूत्रकार दुबारा कमी किसी बस्तुका कथन नहीं करते, अक्षर एकवार मत कुलाखण्ड, आदिका कथन आचार्य करवुके तब दुबारा कथन कराविकुके विराण्ड किये विना होनहीं सकता है अगर ऐसा न करते तो यातकी खण्ड और पुष्कार्थ आदिका कथन अक्षरपही करनाया उनका कथनररमावा, तत्पार्थसूत्र बन्पूरा होमावा सो वीक नहींया इसअपवादको खियदुये दुबारापरागादिकका कथन करना पडा ॥

(१) इस सूत्रका नामो आत्मावो में पाठ और कथं एकसा है ॥ (२) पहा पर मालआदि द्रव्य हैं ॥ प्याकल्पते मकृति मयप सिंग संख्या विकिष्टयो द्रव्य कहा जाता है अतएव सिंग सिंग संख्या विकिष्ट होमेसे द्रव्ययावक शब्द हैं ॥ (स्याकल्पते) तब पार्थ कि जिसका सिङ्ग और संख्या से सम्बन्ध हा मयप है । यद्यप्यत्र पाठ पृष्ठा ६१ ॥ अणुरा द्रव्य शब्दका अर्थपाणर जीव, अजीव पान अयमं आकाश आत द्रव्योंमेंसे कार्त्तवी आठे-त नहीं है ॥

# ॥ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥ ३२ ॥

जम्बूद्वीपविष्कम्भस्य योजनशतसहस्रस्य नवतिशतभागीकृतस्यैको भागो भरतस्य विष्कम्भ स पूर्वोक्त एव ॥ उक्तं जम्बूद्वीप परिवृत्य वैदिका स्थिता, तत परो लवणोद समुद्रो द्वियोजनशतसहस्रवलयविष्कम्भ ॥

## (१) सूत्रम-भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभाग ॥ ३२ ॥

- सुमार्यो-भरतस्यै विष्कम्भः १ जम्बूद्वीपस्य १।
- नवतिशतभागः १।
- पूरबुधवार-जम्बूद्वीप-विष्कम्भस्य (योजन शतसहस्रस्य) १।
- नवतिशत-भागीकृतस्य १ एकमी मासः १। भरतस्य १।
- विष्कम्भः १। सः १। पूर-उक्तः १। पृथक् उक्तः १। जम्बूद्वीपः १।
- परिवृत्य १। वैदिका १। स्थिता १।
- ततः परा १। लवणोद १। समुद्रः १। द्वियोजनशतसहस्र-  
वलय-विष्कम्भः १।
- = भारतवर्षकी (दक्षिण उच्चर) चौदार्द्वीपके (भिसका व्यास एकलक्षयोजन है)
- = एकसौ नव्वे भागों से ( एक भाग ) है अर्थात्  $1000000 \div 10 = 100000$  योजन है ।
- = जम्बूद्वीपके विस्तारके काल योजनके
- = एकसौ नव्वे भाग किये हुआओं से, एकभाग भरतवर्षकी (दक्षिण-उच्चर)
- = चौदार्द्वीप है सो पहिले बखितवही है । बखित जम्बूद्वीपको
- = बंदूकर पैदी तिथी है अर्थात् जम्बूद्वीपके चारो ओर वैदिका है उसके धीरे-धीरे लवणोदवि है
- = भिस (वैदिका) से आगे सबखोदवि समुद्र दोकाल योजन
- = लवणकार बंदेके आकार विस्तारस्य है अर्थात् लवणोदवि की परिधिपर

एकविंशु सेकर उसकी तीर्थे जम्बूद्वीपकी परिधिपर दूसरा विंशुकेर दोनोविंशुकेर विमानेबाकी रेखा दोलास्योभन क्षम्बी होगी ।

( १ ) इनारे यहाँ एक सूत्रका पाठ एक है । अनेकान्तर आख्यायके 'समाप्ततत्पार्थाधिगमस्य मे' इसको सुन नहीं माना है ( इस आख्यायके पृष्ठ ३४, ३८ की टिप्पणी देखो ) । ( २ ) सर्वप्रथम एक युगकथन है ३ ( ३ ) एक भागमें मागलोक से भागोंमें विस्तारपूर्वक आर भागोंमें है प्रवतलोक आठ भागोंमें मरुद्विपका, नव्वे सोलह भागोंमें इरियेक बल्लोस भागोंमें विविध पर्वत और कोनदि भागोंमें विरिरेक राजका विस्तार है । येसे जम्बूद्वीपके एकसी सत्पारस ( १२३ ) भाग तो बकिष सम्पत्की है और नील पर्वत बलीस भागोंमें रज्यकलोच सोलह भागोंमें एकमी पर्वत पाठ भागोंमें है रज्यमूलेक चार भागोंमें, शिखरी पर्वत दो भागोंमें तथा देवराजन छत्र एक भागमें विभक्त है । येसे उच्चर साक्यो के अन्त माग दोनो विमानेसे ( १२३ + १३ ) = १३६ भाग जम्बूद्वीप के हैं । २४ वां सूत्र के होते हुये कि भरतलोक ५०१ ई. है इसकी आकल्पकता नहीं कतौकि एक साक्षात्क पाठक ५२९ ई. = १११०० विमानसम्पत्ता है कि १६० वां भाग भरत है ३ अथवा एक सूत्रकी २४ वां सूत्र करतेसे तो विद्यमान कोनीसवा सूत्र को इतने बरा बरा है न बगलत दोता ओर १११०० = ११११० = ५२९ ई. परलोककेकी उच्चर बकिष की सूची की भिन्नक आती न

वर्षधरपर्वता । एवं ह्ये भरतौ ह्ये हिमवन्तौ इत्यवमादिसख्यानं द्विगुणं वेदितव्यम् ॥ जम्बूद्वीप  
हिमवदादीना वर्षधराणा यो विष्कम्भस्तद्विद्वगुणो धातकीखण्डे हिमवदादीना वर्षधराणाम् ॥ वर्ष-  
धराश्चकारवदवस्थिता ॥ अरविवरसस्थानानि जेत्राणि ॥ जम्बूद्वीपे यत्र जम्बूवृक्ष स्थित । तत्र  
धातकीखण्डे धातकीवृक्ष सपरिवार । तद्योगाद्वातकीखण्ड इति द्वीपस्य नाम प्रतीतम् ॥ तत्प-

=कुलाचल है इस प्रकार वो भारतवर्ष दो

=हिमवानपर्वत इत्येवं आदिक गणना (जम्बूद्वीपसे थाहुकीलहमें) इती

=माननी चारिये । जम्बूद्वीपके हिमवान् आदिक

=पर्वतोंका जो विस्तार है विससे दुगुणा

=थातकीलहमें, शिववार आदिक कुलाचलोंका है

=द्विद्वीके आकार (=संस्थान) (वत्) (भरवादिक) क्षेत्र है । अर्थात्

=जम्बूद्वीपमें जहाँ जम्बूवृक्ष अवस्थित है वहाँ

=थातकीलहमें यातकीवृक्ष खटे छोटे परिवार (के बुल्लों) सहित स्थित है विसके

=मरिचिद वा जात है । विस (यातकीलह द्वीप) को समस्त भोरसे घरे हुए कालोदः

=मधु टाकीव लदे काटे वा ठुल्ले हुए जलकेस्थान समान(=वीर्य)आवलास योनन

=सयोगसे वा बालकणसे थाकीलह ऐसी द्वीपकी संज्ञा

=मधु टाकीव लदे काटे वा ठुल्ले हुए जलकेस्थान समान(=वीर्य)आवलास योनन

=सयोगसे वा बालकणसे थाकीलह ऐसी द्वीपकी संज्ञा

=मधु टाकीव लदे काटे वा ठुल्ले हुए जलकेस्थान समान(=वीर्य)आवलास योनन

वपप.पर्वताः। एषमब्दोः। भारतोः। द्वीपः।

शिवन्तोः। इत्येषां आदि-संख्याः नमूः।। द्विगुणः।।

वर्षधराणां नमूः। यथा विष्कम्भः। आदीनां नमूः।।

धातकीलहः। शिववत्-आदीनां नमूः।।

वर्षधराणां नमूः। चक्रः। अरवत्-अपरिस्थिताः। अर

विवर-संस्थानानिः।। जेत्राणिः।।

इस प्रकार परिये कि वस्तुका समस्त घरा पृष्ठीको धूलाय तो उस परियेकी नामि (पुरी)और घरेके बीचमें देवराज्य

लकड़िये ई जैसे पर्वत विष्ट है और पूर्वोक्त लकड़ियेके मध्यका राज्य (लाली) स्थान रहता है जैसे जैप किच्छे है

जम्बूद्वीपः यत्र जम्बूवृक्षः स्थितः। तत्र

धातकीलहः यातकीवृक्षः सपरिवारः। तद्

योगात्। धातकीलहः शिववत्-द्वीपस्यः नामः।।

वर्षधराणां नमूः। तद्-परिस्थिताः। कालोदः।।

समुद्रः। तद्-परिस्थिताः। कालोदः।।

(१) यहियेका नामि अयथा पुरी वा शीबके गोलैक इरीमसे आ लकड़िये परिये परिये

आरक, भाद, अरा अयथा अर चदत है

आरक, भाद, अरा अयथा अर चदत है

आरक, भाद, अरा अयथा अर चदत है

आरक, भाद, अरा अयथा अर चदत है

सुच् ॥ यथा द्विस्तावानयं प्रासादो मीयत इति ॥ एवं द्विर्धातकीखण्डे भरतादयो मीयन्ते इति ॥  
 तद्यथा—द्वाम्यामिष्वाकारपर्वताभ्या दन्निणोत्तरायताभ्या लवयोदकालोदवेदिकास्पृष्टकोटिभ्या विभक्तो  
 धातकीखण्ड पूर्वापर इति ॥ तत्र पूर्वस्य चापरस्य मध्ये द्वौ मन्दरी । तयोरुभयतो भरतादीनि  
 नेत्राणि हिमवदादयश्च

सुप्

यथाऽद्विः०आवायुः० अयं०प्रासादः०मीयते०इति०  
 एतद्विः०गावः०शिल्लदेः०पारत-आदयः०  
 मीपन्ते०इति०

=द्विशब्द पर सुवर्गे अर्थात् स् (कर्त्तृका चिन्त्र को सूत्रमें 'र्' में पठत आता है लगापा)रे  
 यावार्थे इस सूत्रके 'द्वि' शब्द पर स् (=र्) कर्त्ता कारकका प्रत्यय (यापना) क्रिया के  
 (१) अर्याहार वा सूत्रके अन्वये(यापना) क्रिया की विद्यमानताकी रूप्यनाक किये जाय है ॥  
 =जैसे दोगुणा(=द्वि)याप (=तावान्) यह राजभवन नापाया है वा परिमाण कियायाप है  
 =इस प्रकार (अभ्युदीप्ते) द्विगुन (=द्वि) शतकीलंब द्वीपमें भरतचेन्द्रादिक  
 =जाये गते है अथवा गणना किये गते है यावार्थ-इस सूत्र के द्विशब्द पर स्(=र्)कर्त्ता  
 का प्रत्यय छानेसे और सूत्रके अन्वये यापना क्रियाका अर्याहार करके यह फलनिकावा  
 हैकि अन्वुदीप्येओ भरतचेन्द्र, कुलाखल, इह पुंकरादिकहे उनकी अपेक्षा शतकीलंबमें द्रुगुणोहे  
 =जैसे दो इवाकार पर्वतोंकरि (ओ चारसौ योजन ऊंचे और सौ योजन पृथिवीमें मरिच्टे हे)  
 =सबण समुद्र और कालोदपिनी वेदियों को छूनेवाले दोनों भवनियों वा सिरों वक  
 =वसिष्ठ उत्तर दिशामें (चार साल योजन) लम्बे है । यातकी लंब  
 =पूर्व-मपरः० इति०मन्वुवस्वः०च०अपरस्वः०पठ्येः०=पूर्व वरिषम (दो पागों में) बटा हुआ है तथा पूर्व और परिवषक (पागों के) बीच में  
 दो०पन्तरी०शिल्लो०इमपत अमरव-  
 आतीनिः०॥॥चयाकिः०॥॥च०शिवपद आदयः०॥

'अर्याहार'-यह वाक्य जो स्पष्टता से समझमें नहीं आसका उसे किसी दूसरे शब्दकी बदलाग करि स्पष्ट करेगा । अनुपुष्टि और अर्याहार में  
 यह अर्थ है कि अनुपुष्टि में जो शब्द वा वाक्य किसी पर्वते सूत्र वा वाक्य में आया है उसे स्पष्ट सूत्र वा वाक्य में जोक लेना अनुपुष्टिय करना और  
 अर्यय प्रमिताय की समझसेना है पठ्यु अर्याहार में जो शब्द वा वाक्य पहिले सूत्र में ना आया गयी है पठ्यु किसी भी वाक्यको स्पष्ट करकेभी  
 भावस्पष्टता है जो उस वाक्यको स्पष्ट करके किये किसी शब्द वा वाक्यकी समझना करकेगै है जिससे कि सूत्र अर्याहारकर करके अर्याहारि वा  
 'अर्याहार'-यह वाक्य जो स्पष्टता से समझमें नहीं आसका उसे किसी दूसरे शब्दकी बदलाग करि स्पष्ट करेगा । अनुपुष्टि और अर्याहार में  
 यह अर्थ है कि अनुपुष्टि में जो शब्द वा वाक्य किसी पर्वते सूत्र वा वाक्य में आया है उसे स्पष्ट सूत्र वा वाक्य में जोक लेना अनुपुष्टिय करना और  
 अर्यय प्रमिताय की समझसेना है पठ्यु अर्याहार में जो शब्द वा वाक्य पहिले सूत्र में ना आया गयी है पठ्यु किसी भी वाक्यको स्पष्ट करकेभी  
 भावस्पष्टता है जो उस वाक्यको स्पष्ट करके किये किसी शब्द वा वाक्यकी समझना करकेगै है जिससे कि सूत्र अर्याहारकर करके अर्याहारि वा

वर्षधरपर्वता । एवं द्वौ भरतौ द्वौ हिमवन्तौ इत्यवमादिसंस्थान द्विगुण वेदितव्यम् ॥ जम्बूद्वीप  
हिमयदादीना वर्षधराणा यो विक्रमस्तद्विद्वगणो धातकीखण्डे हिमवदादीना वर्षधराणाम् ॥ वर्ष-  
धराएवकारवदवस्थिता ॥ अरविवरसस्थानानि जेत्राणि ॥ जम्बूद्वीपे यत्र जम्बूवूच स्थित । तत्र  
धातकीखण्डे धातकीवृच सपरिवार । तयोगाद्घातकीखण्ड इति द्वीपस्य नाम प्रतीतम् ॥ तत्प-

—कुलाचल है इस प्रकार दो भारतवर्ष दो

—माननी चारिये । जम्बूद्वीपके आदिक गणना (जम्बूद्वीपसे शतुकीलरसे) दुनी

—पर्वतोंका जो विस्तार है तिसस दुगुण

—कुलाचल परिपकी आरक भार वा अरा (=अरा)के सरण तिले हुए हैं । अराके

—द्विद्रोके आकार (=संस्थान) (पर्व) (भारतादिक) वृत्र है । अर्थात् परिपकी पुष्पीर

—जम्बूद्वीपमें अरा पुष्पोंके लक्षद्वियेके मध्यका शून्य (लाली) स्थान रहता है तैसे छेप तिले है

—धातकीलरमें धातकीपुत्र छोट छोटे परिवार (के बूजों) सरित स्थित) है तिसके

—असिद्ध वा अरा है । तिस (धातकीलर द्वीप) को समस्त अरासे वरे हुए कालोद

—समुद्र दाकीम छदे छादे वा उठले हुए जलकेस्थान समान(बीर्य)आवलास योगन

—असिद्ध नाम अराका पुत्री का जोके गोलेके बदादिस आ लक्षद्वियां वाइयक घेरक छरीमें लगाई जाती है उभमेस मयक लक्ष्मी देहेरुपको

कृष्णपर्वताम् १ प्रथमद्वीपः परतोऽथ द्वीपः  
रिपन्तान् इत्येवममादि-संस्थानम् ॥ द्विगुणम् ॥  
वर्षधराणाम् ॥ यत्र विक्रमस्तद्विद्वगणः  
धातकीलरम् ॥ हिमवत् मादनीनाम् ॥ तद्विद्वगुणम् ॥  
वर्षधराणाम् ॥ यत्र विक्रमस्तद्विद्वगुणम् ॥ तद्विद्वगुणम् ॥  
विषय-संस्थानानि ॥ जेत्राणि ॥  
इस प्रकार चरिये कि उसका समस्त वेरा पुष्पीको छुजाय तो उस परिपकी नामि (पुत्री)अौर घेरके बीचमेंद्वाराप  
लक्षद्विये है तैसे पर्वत तिष्ठ है और पूर्वोके लक्षद्वियेके मध्यका शून्य (लाली) स्थान रहता है तैसे छेप तिले है  
जम्बूद्वीपमें यत्र विक्रमस्तद्विद्वगणो धातकीलरम् ॥ अराके सरण तिले हुए हैं । अराके  
धातकीलरम् ॥ हिमवत् मादनीनाम् ॥ तद्विद्वगुणम् ॥  
वर्षधराणाम् ॥ यत्र विक्रमस्तद्विद्वगुणम् ॥ तद्विद्वगुणम् ॥  
विषय-संस्थानानि ॥ जेत्राणि ॥  
(१) परिपकी नाम अराका पुत्री का जोके गोलेके बदादिस आ लक्षद्वियां वाइयक घेरक छरीमें लगाई जाती है उभमेस मयक लक्ष्मी देहेरुपको

सर्वा  
पृष्ठ ७१

सुच् ॥ यथा द्विस्तावानयं प्रासादो मीयत इति ॥ एवं द्विधातकीखण्डे भरतादयो मीयन्ते इति ॥  
 तद्यथा—द्वाम्यामिष्याकारपर्वताभ्यां दन्विणोत्तरायताभ्या लवणोदकालोदवेदिकास्पृष्टकोटिभ्या विभक्तो  
 धातकीखण्ड पूर्वापर इति ॥ तत्र पूर्वस्य चापरस्य मध्ये द्वौ मन्द्रौ । तयोरुभयतो भरतादीनि  
 क्षेत्राणि हिमवदादयश्च

सुच्

=द्विशब्द पर) सुच् अर्थात् स् (कर्ताका चिन्व ओ सूत्रमें 'स्' में पठत आता है खगाया) है  
 भाषार्थ इस सूत्रक 'द्वि' शब्द पर स् (=द्) कर्ता कारकका प्रत्यय (भापना) क्रिया के

(१) अस्याहार वा सूत्रके अन्तर्गते(भापना) क्रिया की विद्यमानताकी रूप्यनाके लिये छाया है ॥

पयादिः अवाचनम् ॥ अर्थात् प्रासाद ॥ मीयत इति ॥  
 पत् ० दिः ॥ गवहीलपटोः परत-भादयम् ॥  
 मीपन्ते इति ०

=असे दोगुणा (=द्वि) भाप (=वाषान्) यह रामप्रभन नापामात्र है वा परियाण क्रियाभाप है  
 वास महार (अम्बदीपसे) दिगुने (=द्विः) यातकीसंद हीपमें भरतलेआदिक  
 =वापे आते है अथवा गणना किये आते है भावार्थ-इस सूत्र के दिग्गुन्द पर स् (=र) कर्ता  
 का प्रत्यय खानेसे और सत्रके अन्तमें भापना क्रियाका अस्याहार करक यह फलनिकाला  
 है कि अम्बदीपमें जो भरतलेत्र, इच्छाखण्ड, द्रष्टुकरादिकहै उनकी अपेक्षा यातकीलहमें दुगुणो है  
 =असे दो इव्याकार पर्वतोंकरि (ओ चारसी योजन ऊंचे और सी योजन पृथिवीमें प्रविष्ट है)  
 =उत्तम समुद्र और कालोदपिडी वेदियों को छूनेवाले दोनों अटनियों वा सिरों तक  
 =अच्छिण-उत्तर दिशामें (चार काल योजन) लम्बे है । यातकी संद  
 पूर्व भाप ॥ पतितान् अम्बदीपस्य ॥ अपरस्मि ॥ अप्ये ॥  
 दो ॥ अम्बदीप ॥ यो ॥ उपपत् ० परत-  
 आदीनि ॥ सूत्राणि ॥ ॥ च ० शिष्यत्-भादयम् ॥

तपसा अद्वाभ्याम् ॥ प्याकारपर्वताभ्याम् ॥  
 सारजोद-आलोद-वेदिका-स्पृष्टकोटिभ्याम् ॥  
 दक्षिण उत्तर भापवाभ्याम् ॥ विपत्क ॥ वातकीसंद ॥

पुर्व भाप ॥ पतितान् अम्बदीपस्य ॥ अपरस्मि ॥ अप्ये ॥

दो ॥ अम्बदीप ॥ यो ॥ उपपत् ० परत-  
 आदीनि ॥ सूत्राणि ॥ ॥ च ० शिष्यत्-भादयम् ॥

दो ॥ अम्बदीप ॥ यो ॥ उपपत् ० परत-  
 आदीनि ॥ सूत्राणि ॥ ॥ च ० शिष्यत्-भादयम् ॥

दो ॥ अम्बदीप ॥ यो ॥ उपपत् ० परत-  
 आदीनि ॥ सूत्राणि ॥ ॥ च ० शिष्यत्-भादयम् ॥

दो ॥ अम्बदीप ॥ यो ॥ उपपत् ० परत-  
 आदीनि ॥ सूत्राणि ॥ ॥ च ० शिष्यत्-भादयम् ॥

दो ॥ अम्बदीप ॥ यो ॥ उपपत् ० परत-  
 आदीनि ॥ सूत्राणि ॥ ॥ च ० शिष्यत्-भादयम् ॥

'अस्याहार'—यह वाक्य जो स्पष्टता से समझने नहीं आसक उसे किसी दूसरे शब्द को कहकरा करि स्पष्ट करदेता । अनुपुष्टि और अस्याहार में  
 यह अर्थ है कि अनुपुष्टि में जो उन्नत वा वाक्य किसी पहिले सूत्र वा वाक्य में आया है उसे उन्नत रूप वा वाक्य में जोड़के लेना अनुपुष्टि कहना और  
 अउन्नत क्रमिमात्र को समझलेना है परण अस्याहार में जो उन्नत वा वाक्य पहिले सूत्र में ही आया नहीं है परण किसी भी वाक्यको स्पष्ट करके  
 आसकरहना है जो उस वाक्यकी स्पष्ट करनेके लिये किसी किसी सूत्र वा वाक्यकी सहायता लेके करेगा अर्थात् किसी सूत्र वा वाक्यको स्पष्ट करके लेना अनुपुष्टि कहना और  
 अस्याहार कहना है ।

हिमवन्तौ इत्यादि । कुत्त १ । व्याख्यात ॥ यथा धातुकीखण्डे हिमवदादीनां विष्कम्भस्तथा पुष्करार्धे हिमवदादीनां विष्कम्भो द्विगुण इति व्याख्यायते ॥ नामानि तान्येव, इध्याकारो मन्दरो च पूर्ववत् । यत्र जम्बूद्वीपे जम्बूवृक्षस्तत्र पुष्करसगरिस ॥ तत्र एव तस्य द्वीपस्थानुख्डं पुष्करद्वीप इति नाम ॥ अथ कथं पुष्कराद्वसञ्ज्ञा १ मानुषोत्तरशैलेन विभक्तार्थवान्पुष्करार्धसञ्ज्ञा ॥ अत्राह विमर्थ जम्बूद्वीप- हिमवदादिसख्या द्विरावृत्ता पुष्करार्धे कथ्यते १ न पुन कृत्स्न एव पुष्करद्वीपे १ इत्यत्रोच्यते ---

विमवन्ताः, इत्यादि ॥ कुत्तः १ व्याख्यातः १  
 = विषवात् कुत्ताच्छ इत्यादिक स्वोक्त है (इससूत्रके) व्याख्यानसे ( मंभूदीपस पुष्करार्धे विषे दोषोपगत दोषोद्विषवात् कुत्ताच्च इत्यादिक ) है  
 यथा १ धातुष्करार्धे ॥ विष्कम्भः १ = जैसे मातृकीलभमे विष्कम्भ आदिक (कुत्ताच्छो) का विस्वार है  
 तथा १ पुष्करार्धे ॥ विमवत् आर्त्तनाम् १ = जैसे पुष्करार्धविषे विमवत् आदिक (कुत्ताच्छ) निष्का  
 विष्कम्भः १ द्विगुणः १ प्रति १ = यथास्मात् १ नानानि ॥ = (विस्वार) दुगुना है इसमकर विस्वार कियागया है । नाम  
 तानि ॥ एव १ इध्याकारौ १ मन्दिरो १ च १ = यही है दो इध्याकारपूर्ववत् और दो (पूर्वसे) मन्दिर नामा और यन्मिसे विष्कम्भाली १ मेव  
 पूर्ववत् १ यत्र १ जम्बूद्वीपे १ जम्बूवृक्ष १ तत्र १ = यही है दो इध्याकारपूर्ववत् और दो (पूर्वसे) मन्दिर नामा और यन्मिसे विष्कम्भाली १ मेव  
 पुष्करार्धे ॥ सगरिस ॥ = यही है दो इध्याकारपूर्ववत् और दो (पूर्वसे) मन्दिर नामा और यन्मिसे विष्कम्भाली १ मेव  
 दोषस्य १ अन्वयः १ = यही है दो इध्याकारपूर्ववत् और दो (पूर्वसे) मन्दिर नामा और यन्मिसे विष्कम्भाली १ मेव  
 अथ १ कथं १ पुष्करार्धे १ = यही है दो इध्याकारपूर्ववत् और दो (पूर्वसे) मन्दिर नामा और यन्मिसे विष्कम्भाली १ मेव  
 शैलेन १ विमर्थ १ मर्दस्य १ = यही है दो इध्याकारपूर्ववत् और दो (पूर्वसे) मन्दिर नामा और यन्मिसे विष्कम्भाली १ मेव  
 सञ्ज्ञा १ = यही है दो इध्याकारपूर्ववत् और दो (पूर्वसे) मन्दिर नामा और यन्मिसे विष्कम्भाली १ मेव  
 अत्र १ आहार १ क्रिय-अपम ॥ = यही है दो इध्याकारपूर्ववत् और दो (पूर्वसे) मन्दिर नामा और यन्मिसे विष्कम्भाली १ मेव  
 आदिसख्या १ दिग्-अपम ॥ = यही है दो इध्याकारपूर्ववत् और दो (पूर्वसे) मन्दिर नामा और यन्मिसे विष्कम्भाली १ मेव  
 न १ पुन १ कृत्स्ने १ = यही है दो इध्याकारपूर्ववत् और दो (पूर्वसे) मन्दिर नामा और यन्मिसे विष्कम्भाली १ मेव  
 इति १ मन्त्र १ उच्यते १ = यही है दो इध्याकारपूर्ववत् और दो (पूर्वसे) मन्दिर नामा और यन्मिसे विष्कम्भाली १ मेव



वलथविष्कम्भ ॥ कालोदपरिचोपी पुष्करद्वीप षोडशयोजनशतसहस्रवलथविष्कम्भ ॥

तत्र द्वीपान्मोनिधिविष्कम्भद्विगुणपरिक्रुतिसिद्धातकीखण्डवर्षादिद्विगुणवृद्धिप्रसङ्गे विशेषावधारणार्थमाह

॥ पुष्कराद्धे च ॥ ३४ ॥

(किं) द्विरित्यनुवर्तते। किमपेक्षा द्विरावृत्ति जम्बूद्वीपे भरतहिमवद्यद्यपे नयैव। जम्बूद्वीपात्पुष्कराद्धे द्वी भरती द्वी

वलथ-विष्कम्भ=कालादपरिचोपी। पुष्करद्वीपः।  
 षोडशयोजन-शुद्धसहस्र-वलथ-विष्कम्भः।  
 वृद्धीप-अन्मोनिधि-विष्कम्भ-द्विगुण-परिक्रुतिसिद्ध-  
 पालकीसहस्र-वर्ष-आदि-द्विगुण  
 बुद्धि-श्रसंगेन-विशेष-अवधारण-अर्थवर्षः॥  
 आर १

=शलयाकार (अर्थात् कड़ेके आकार) विस्तारक्य है। कालोदयि को बड़ेरूप पुष्करद्वीप  
 =सोलाहलाखयोजन क्लृपाकार(अर्थात् कड़ेके आकार)श्रीदार्द्रिका थारक है।  
 =वर्षा(पुष्करद्वीपेसर्वश्रीप और समुद्रों की द्विगुणी द्विगुणी रचनाके सदृश (परिक्रुतिसिद्ध)  
 =पावकी लठके छेप (तथा पर्वतों) आदिक से दुगुन (दुगुन आंगोंके छेप तथा पर्वतोंकी)  
 =७ तीके अबसर(आजाने) पर पुण्य अथवा थिम =विशेष) नियमके लिये  
 =आचार्य,अग्रियसूत्रमें) करते हैं। यावार्थ-जम्बूद्वीपस अंगलके समुद्र तथा द्वीपोंका विष्कम्भ  
 हुआ है और जम्बूद्वीपसे पावकी लठकी रचना हुनी है वो इस प्रसंगके नियमके लिये अर्थात्  
 कि पा की लठसे पुष्करद्वीपकी रचना हुनी है। उपर सूत्र करते हैं कि "पुष्कराद्धे च" ॥

एतान समग्र विषयाज्वाै कि पा की लठसे पुष्करद्वीपकी रचना हुनी है। उपर सूत्र करते हैं कि "पुष्कराद्धे च" ॥

सूत्रम्— 'पुष्कराद्धे च ॥ ३४ ॥  
 सूवार्थ-वक्ष्यते आदयम्॥दि ४  
 पुष्कर अर्द्धे॥सास्यास्वत्  
 बुध्नव्याव-र(क्रियः॥॥दि ४श्रुतिअनुवर्तते  
 किम्॥अपसाः॥दिः आयुषि॥॥जंश्री १॥परात  
 दिवन्-आदि-अपव्या॥पव०  
 जंश्रीपातः॥पुष्कराद्धे॥॥द्वैर्परातोर्षाः॥

=और (=च) मारकरप (कुलावल-श-कमल) आदिक (जम्बूद्वीपसे) हुने हुने  
 =पुष्करद्वीपके आरेमाममें गिनाये गये हैं  
 =जम (क्या दि(शब्द) ऐसा (पहिले सूत्रने इससूत्रमें अनुवर्तताई वा छाया गया है)  
 =द्विस विक्वा द्विगुणना (=आशुषि) है (उपर) जम्बूद्वीपमें मरतखेप तथा  
 =शिमवाप्तपर्वत आदिककी अपेक्षामें द्वी(पुष्कराद्धेमें हुनखेप तथा हुने कुलावल) है  
 = मरन)जंश्रीपसे पुष्कराद्धेविषं को मरतखेप को

(१) स्वतावत् आम्नायके समाप्ततत्त्वावधिगमसकमे 'पुष्कराद्धे च' देखा पाठ है हमारे पार्श्व में जैसे तत्कार्य-पाठ पु-२३३ व्लोक काति कर्मोमी  
 यही पाठ 'पुष्कराद्धे च' है इसलिये शोभी आम्नायकीमें गच्छेन नहीं है। अर्थ में दोनों समान्यकीमें एक है। अर्थात् जोट अर्द्ध' शोभी' खण्ड कीक है।



एतन्निवासी भास्करासाहाय वर्षासिद्धत पदच्छेद और विमपत्यसंश्रित सर्वार्थसिद्धिका शुभ्यः हिन्दीमनुवाद आध्याय ३ सूत्र ३५

# ॥ प्राङ्मानुयोत्तरान्मनुष्याः ॥ ३५ ॥

पुंकरद्वीपवहुमध्यदेशभागी बलववृत्तो मानुपोत्तरो नामशैल । तस्मात्प्रागवे मनुष्या न बहिरिति । ततो न नहि पूर्वोक्तवेत्रनिभागोऽस्ति । नास्मादुत्तरं कदाचिदपि विधाधरा ऋद्धिप्राप्ता अपि मनुष्या गच्छन्ति अन्यत्रोपपादसमुद्घाताभ्यां । ततोऽस्यान्वर्थसञ्ज्ञा ॥ एवजम्बूद्वीपादिष्वर्धतृतीयपुद्गयोश्चसमुद्रयोर्मनुष्या-

(१) सूत्रम् — प्राङ्मानुयोत्तरान्मनुष्या । ( अन्यपाठ ) प्राग्मानुयोत्तरान्मनुष्या ॥ ३५ ॥

पुंकरद्वीप-पुंकरद्वीप-वहु-मध्य-देश-भागी-  
बलव-वृत्तः-मानुपोत्तरः-नामशैलः ।  
तस्मात्-प्राग्-एव-जम्बूद्वीप-  
तत-अन्यत्र-सु-पूर्वोक्त-वेत्र-नि-  
भाग-ः । अस्ति-  
ऋद्धि-प्राप्ता-अपि-मनुष्या-  
गच्छन्ति-अन्यत्र-उप-  
पाद-समुद्घाताभ्याम्-  
तत-अस्य-अन्वर्थ-सञ्ज्ञा-  
अर्द्धतृतीयपुद्ग-यो-  
मनुष्या-  
( १ ) दोनो भाग्याप्रोसे एव सञ्ज्ञा पाठ और फल मनुष्याः ।  
तत अस्य अन्वर्थ सञ्ज्ञा पाठ और फल मनुष्याः ।  
अर्द्धतृतीयपुद्गयो मनुष्याः ।

=मानुपोत्तर परतस पहिल पहिले दशा वा स्थानमें मनुष्य है अर्थात् जम्बूद्वीप, प्रातकीखट और पुंकरद्वीपके उत्तरक भागभागमें ऐसे अर्द्धार्थ द्वीपमें मनुष्य है  
=पुंकरद्वीपक बहुतबीच (=बीबाबीचही) का स्थान(=देश) भागमें  
=बलायाकार वृत्तव्य मानुपोत्तर नामक पर्वत है  
=विस (मानुपात्तर पवन) स पहिली मनुष्य है बाहिर नहीं है  
=तिस(मानुपात्तर पवन) स बाहिर (बहिस) मयमपणित जनों का विभाग नहीं है  
=न इस (मानुपोत्तर) स आगे क्वी भी विभापर (और)  
=ऋद्धिपारी भी मनुष्य, उपपाद और समुद्रयातोसे अतिरिक्त, गमन करते हैं  
(भाषार्थ-मूलदेशको न छोड़कर उपादासे और समुद्रयातस आत्माके प्रदेश अर्द्धार्थद्वीपसे बाहिर जाते हैं बिना उपादा और समुद्रयातके अस्वाक प्रदेश बाहिर नहीं जाते हैं)  
=विससे इस (मानुपोत्तर पवन) का सार्थक नाम है । इसमकार जम्बूद्वीप आदिके  
=अर्द्धार्थ (द्वीपों) आगे दो (बाषण्णाद और काबोद) समुद्रोंमें मनुष्य

तत अस्य अन्वर्थ सञ्ज्ञा पाठ और फल मनुष्याः ।  
अर्द्धतृतीयपुद्गयो मनुष्याः ।  
( १ ) दोनो भाग्याप्रोसे एव सञ्ज्ञा पाठ और फल मनुष्याः ।  
तत अस्य अन्वर्थ सञ्ज्ञा पाठ और फल मनुष्याः ।  
अर्द्धतृतीयपुद्गयो मनुष्याः ।

वेदितव्या ॥ ते द्विविधा ॥

॥ आर्यां स्लेच्छाश्च ॥ ३६ ॥

गुरोर्गुणवद्विर्वा अर्यन्त इत्यार्या । ते द्विविधा । ऋद्धिप्राप्तार्या अनृद्धिप्राप्तार्यश्चेति ॥ अनृद्धि-  
प्राप्तार्या पञ्चविधा । क्षेत्रार्या जात्यार्या कर्मार्यश्चरित्रार्या दर्शनार्यश्चेति ॥ ऋद्धिप्राप्तार्या  
सप्तविधा । बुद्धिविक्रियातपोवलीपथरसावीणमेदात् ॥ स्लेच्छा द्विविधा । अन्तर्हीपजा कर्मभूमि-  
जाश्चेति ॥ तत्रान्तर्हीपा लवणोदधेरभ्यन्तरेऽप्राप्तु दिक्वष्टौ । तदन्तरेषु चाष्टौ, हिमवच्छिखरिणो-

नेदितव्या ॥ ३६ ॥ द्विविधा ॥

सूत्रम्— आर्यां स्लेच्छाश्च ॥ ३६ ॥ = (मनुष्या) आर्यां स्लेच्छाश्च भवन्ति ॥ ३६ ॥

॥=ज्ञानना वागिये ते (मनुष्य) यो प्रकार है ॥

सप्तार्यः— मनुष्याः ॥ आर्याः ॥ स्लेच्छाम्निः ॥ चक्षुष्य इति ॥

पूर्वार्थः— गुणैः ॥ गुणवद्वि ॥ वाक्यार्थोक्तिः ॥ आर्याः ॥ आर्यो ऋषिः ॥ गुणवान् पुरुषोऽहं स मेमाप ॥ ऐसे आर्या हैं

तद्विधिषा ॥ अस्तिप्राप्तः ॥ आर्याः ॥ चक्षुष्य इति ॥

आर्याः ॥ अस्तिप्राप्तः ॥ आर्याः ॥ चक्षुष्य इति ॥

चक्षुष्यः ॥ अस्तिप्राप्तः ॥ आर्याः ॥ चक्षुष्य इति ॥

इत्येव ॥ अस्तिप्राप्तः ॥ आर्याः ॥ चक्षुष्य इति ॥

सप्तः ॥ अस्तिप्राप्तः ॥ आर्याः ॥ चक्षुष्य इति ॥

अस्तिप्राप्तः ॥ आर्याः ॥ चक्षुष्य इति ॥

स्लेच्छा ॥ द्विविधा ॥ आर्याः ॥ चक्षुष्य इति ॥

तत्रान्तर्हीपजा ॥ लवणोदधेरभ्यन्तरेऽप्राप्तु दिक्वष्टौ ॥

॥=ज्ञानना वागिये ते (मनुष्य) यो प्रकार है ॥

॥=ज्ञानना वागिये ते (मनुष्य) यो प्रकार है ॥

॥=ज्ञानना वागिये ते (मनुष्य) यो प्रकार है ॥

॥=ज्ञानना वागिये ते (मनुष्य) यो प्रकार है ॥

॥=ज्ञानना वागिये ते (मनुष्य) यो प्रकार है ॥

॥=ज्ञानना वागिये ते (मनुष्य) यो प्रकार है ॥

॥=ज्ञानना वागिये ते (मनुष्य) यो प्रकार है ॥

॥=ज्ञानना वागिये ते (मनुष्य) यो प्रकार है ॥

॥=ज्ञानना वागिये ते (मनुष्य) यो प्रकार है ॥

॥=ज्ञानना वागिये ते (मनुष्य) यो प्रकार है ॥

॥=ज्ञानना वागिये ते (मनुष्य) यो प्रकार है ॥

॥=ज्ञानना वागिये ते (मनुष्य) यो प्रकार है ॥

॥=ज्ञानना वागिये ते (मनुष्य) यो प्रकार है ॥

एतन्निवासी नागरसहाय बहूल्लक्ष्य पक्वदेव और विपक्वार्थसहित सर्वाथिसिद्धि का शब्दशः हिन्यीमनुषाद अध्याय ३ सूत्र ३५

सिद्धि

# ॥ प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥ ३५ ॥

पुंस्कार्हीपमहुमध्यदेशभागी वलयवृत्तो मानुषोत्तरो नामशैल । तस्मात्प्रागेव मनुष्या न बहिरिति । ततो न बहि पूर्वोक्तेत्रविभागोऽस्ति । नास्मादुत्तरं कदाचिदपि विद्याधरा ऋद्धिप्राप्ता अपि मनुष्या गच्छन्ति अन्यत्रोपपादसमुद्घाताभ्याः । ततोऽस्यान्यर्थसञ्ज्ञा ॥ एवजम्बूद्वीपादिष्वर्धतृतीयपुह्योऽससुद्घोऽससुद्घोर्मनुष्या-

(१) सूत्रम् — प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्या । ( अन्यपाठ ) प्राग्मानुषोत्तरान्मनुष्या ॥ ३५ ॥

सूत्रार्थः — प्राग्-मानुषोत्तरात् । मनुष्याः ।

इत्थनुषोत्तर-पुंस्कार्हीप-यदु-मध्य-देश-भागी ।  
 वलय-वृत्त-विभागो-त्तर-विभागो-नामशैल ।  
 तस्मात्-प्रागे-व-मनुष्या-गच्छन्ति ।  
 ततो-न-बहि-पूर्वो-क्ते-त्र-वि-भागो-ऽस्ति ।  
 ना-स्मा-द-उ-त्तर-क-दा-चि-द-पि-वि-द्या-ध-रा-ऋ-द्धि-प्रा-प्ता-अ-पि-म-नु-ष-या-ग-च्छ-न्-ति ।  
 अ-न्य-त्र-उ-प-पा-द-स-मु-द्-घा-ता-भ्या-ः ।  
 त-तो-ऽ-स-या-न्य-र-थ-स-ञ्ज्ञा-ः ॥  
 ए-व-ज-म्बू-द्वी-पा-दि-ष्व-र्ध-तृ-ती-य-पु-ह्य-ो-ऽ-स-स-ु-द्-घ-ो-ऽ-स-स-ु-द्-घ-ो-र-म-नु-ष-या-ः ॥

=मानुषोत्तरं पर्वतसे पहिले पडिले दश वास्यानेमनुष्य हे अर्थात् अम्बूद्वीप, यावकीलद  
 और पुंस्कार्हीपके वरक आपभागमें ऐसे अर्द्धार्थ द्वीपमें मनुष्य हे  
 =पुंस्कार्हीपक बहुलक्षीव (=बीवाबीचरी) का स्थान(=देश) भागमें  
 =यलयाद्वार बुधरूप मानुषोत्तर नामक पर्वत हे  
 =तिस (मानुषोत्तर पर्वत) स पहिलेही मनुष्य हे वाहिर नहीं हे  
 =तिस(मानुषोत्तर पर्वत) स वाहिर (बहिस) मयावर्णित सत्रों का विभाग नहीं हे  
 =न इस (मानुषोत्तर) स आगे कभी भी विषाचर (और)  
 =ऋद्धिप्राप्ती ही मनुष्य, उपपाद और समुद्घातोस अतिरिक्त, गमन करते हे  
 (भाषार्थ-भूल्लेखकों न छोड़कर उपपाद और समुद्घातस आत्म्याके प्रदेश अर्द्धार्थ द्वीपसे  
 वाहिर जात हे विना उपपाद और समुद्घातस आत्म्याके प्रदेश वाहिर नहीं जाते हे)  
 =तिससे इस (मानुषोत्तर पर्वत) का सार्थक नाम हे । इस प्रकार जम्बूद्वीप आदि  
 =अर्द्धार्थ (द्वीपों) और दो (खण्डों) और काकोट) समुद्रोंमें मनुष्य

वग अस्पर्धमान्मर्थसञ्ज्ञा ॥ एवजम्बूद्वीपमहुमध्यदेशभागी वलयवृत्तो मानुषोत्तरो नामशैल । ततो न बहि पूर्वोक्तेत्रविभागोऽस्ति । नास्मादुत्तरं कदाचिदपि विद्याधरा ऋद्धिप्राप्ता अपि मनुष्या गच्छन्ति अन्यत्रोपपादसमुद्घाताभ्याः । ततोऽस्यान्यर्थसञ्ज्ञा ॥ एवजम्बूद्वीपादिष्वर्धतृतीयपुह्योऽससुद्घोऽससुद्घोर्मनुष्याः ॥ ३५ ॥

वेदितव्या ॥ ते द्विविधा ॥

॥ आर्यां स्लेच्छाश्च ॥ ३६ ॥

गणैर्गुणवद्विर्वा अर्यन्त इत्यार्या । ते द्विविधा । ऋद्धिप्राप्तार्या अनृद्धिप्राप्तार्याश्चेति ॥ अनृद्धि-  
प्राप्तार्याः पञ्चविधा । नेत्रार्या जाल्यार्या कर्मर्यश्चरित्रार्या दर्शनार्याश्चेति ॥ ऋद्धिप्राप्तार्याः  
सप्तविधा । बुद्धिविक्रियातपोवलोपधरसाक्षीणभेदात् ॥ स्लेच्छा द्विविधा । अन्तर्हीपजा कर्मभूमि-  
जाश्चेति ॥ तत्रान्तर्हीपा लवणोदधेरभ्यन्तरेष्टासु दिक्चप्टौ । तदन्तरेषु चाष्टौ, हिमवच्छिखरिणो-

=मानना वाक्ये ते (मनुष्य) दो प्रकार हैं ॥

सूत्रम्—'आर्यां स्लेच्छाश्च ॥ ३६ ॥'(मनुष्या) आर्यां स्लेच्छाश्च भवन्ति ॥ ३६ ॥

- वेदितव्याः १। नृ ॥ द्विविधाः १।
- सूत्रम्—'आर्यां स्लेच्छाश्च ॥ ३६ ॥'(मनुष्या) आर्यां स्लेच्छाश्च भवन्ति ॥ ३६ ॥
- सप्तार्याः—ननुगणः १। आर्याः १। स्लेच्छाः १। पञ्चपत्रित्वा =पशुत्व आर्य और (=च) स्लेच्छा होते हैं
- द्वेषवर्गः—मुष्टे १। गुणवद्वि १। आर्यः १। अर्यो करि अथवा गुणवान एकयोकरि सेवेनाय हैं ऐसे आर्या हैं
- नृ ॥ द्विविधा १। ऋद्धिप्राप्त-आर्याः १। पञ्च अन्-ऋद्धिप्राप्त-  
न्ते (आर्या) दो प्रकार हैं । ऋद्धि प्राप्त आर्या और अनृद्धिप्राप्त  
=आर्या । अनृद्धिप्राप्त आर्य पांच प्रकार हैं ।
- सप्त-आर्याः १। आदि-आर्याः १। कर्म आर्याः, जाति आर्याः, रूप आर्याः, वारिष आर्याः,  
=सप्त आर्याः १। पञ्चद्विक =स्ले-आर्या, जाति आर्या, रूप आर्य, वारिष आर्या
- दर्शन आर्याः १। चरित्रिक । ऋद्धि-प्राप्त-आर्याः १।  
=सात प्रकार, बुद्धिऋद्धि, विक्रियाऋद्धि, तपोऋद्धि, बलऋद्धि, औपवऋद्धि, रसऋद्धि
- सप्त-विधा १। बुद्धि-विक्रिया-तपो-वलो-पध-औपव-रस  
=सप्तौ ऋद्धि यैर्वोक्त्रि, हैं (इनक पेट, प्रपेदक वास्तेदो) पञ्चपत्रित्वा १०। अय ०। पत्र ० ३३१। से ३४०।
- अक्षीण-भेदावः १।
- स्लेच्छाः १। द्विविधाः १। अन्तर्हीपजाः १। कर्मभूमिजाः १। षट्ति=स्लेच्छा (स्लेच्छा, स्थिच्छ) दो प्रकार हैं अन्तर्हीपमे वलयशत्रुये  
=नृणां अंतर्हीपज लवणसमुद्र के
- पञ्च अन्तर्हीपजा १। लवणोदधेः १।  
=पीठर (=अभ्यन्तरे) आठ (पूर्व, ईशान, उत्तर, वायव्य, पश्चिम, नैऋत्य
- अभ्यन्तरे १। आठ्यासु १। दिक्पुत्राः १। आठ्याः १।  
=आठ आठ, दक्षिण, आग्नेय वा अग्नि) दिशावै (दिक्षु) आठ (अन्तर्हीप)
- षट् अन्तरेषु १। पञ्च अन्तरेषु १। शिखरिणोः १।  
=तथा तिन(विशाओ, के अंतराल वा मध्यमे आठ (अंतर्हीप)और शिखरिणोर्वत

रुभयोरश्च विजयाद्द्वयोरन्तेष्वष्टौ । तत्र दिनु द्वीपा वेदिकायास्तित्येकपञ्चयोजनशतानि प्रविश्य भवन्ति । विदिच्चन्तरेषु च द्वीपा पञ्चाशत्पञ्चयोजनशतेषु गतेषु भवन्ति । शैलान्तेषु द्वीपा पट्सु योजनशतेषु गतेषु भवन्ति । दिनु द्वीपा शतयोजनविस्तारा । विदिच्चन्तरेषु च द्वीपास्तदर्धविष्कम्भा ।

उपयोर्द्वीपवर्षिकपादयोर्द्वीपान्तुः  
 अन्तः  
 तपःशदिनुः द्वीपाः॥ वेदिकायाः॥ विर्षिकः॥  
 पञ्चयोजनशतानि॥ परिपय - पबन्दिगुविदिनुः॥  
 अन्तरेषु द्वीपाः॥ पञ्चाशत्पञ्चयोजनशतेषु॥  
 गतुः॥ परन्ति । शैल-अन्तरेषु द्वीपाः॥  
 पट्सु योजनशतेषु॥ गतुः॥ परन्ति । दिनुः  
 द्वीपाः॥ योजनशतविस्ताराः॥ विदिनुः॥ अन्तरेषु द्वीपाः॥  
 द्वीपाः॥ अर्धविष्कम्भा ॥

=दोनोके (पूर्व और पश्चिम) और दोनोंबेताड्यो के(पूर्व और पश्चिम के)अन्तर्विने  
 =माठ है (अर्थात् सप्त मिलाकर चौबीस अंतर्द्वीपों)  
 =वर्षा (आठ) दिशाविने अन्तर्द्वीप (=अम्बूद्वीपकी) वेदिकाके तिर्यक्  
 =पर्वसौ योजन (समुद्र में) मयेरा होते हैं और (=च)विदिशा  
 =अन्तराल में (आठ) अन्तर्द्वीप (अम्बूद्वीप की वेदिका से) पर्वसौ पचास योजन  
 =परे (समुद्रमें) है । पर्वतों के अन्त में (आठ) अन्तर्द्वीप (अम्बूद्वीपकी वदीसे)  
 =अन्तर्द्वीप सौ सौ योजन विस्तार वाले हैं । (आठ) दिशाओंमें  
 =अन्तर्द्वीप दन (आठ आठ दिशा वाले अन्तर्द्वीपों से) आधे आय अर्थात् पचास  
 पचास योजन विस्तार वाले हैं



(१) स्तोत्रिय विषयमें आठ दिख मानी गई हैं और यहाँ पर मुख्यपाद स्वामी ने अणुद्वीपोंके विस्तारके सहायमें  
 सौ सौ योजन विस्तार किया है इसलिये आठ दिशाके अन्तर्द्वीपोंका जो अम्बूद्वीपकी वेदिकासे पर्वसौ योजन समुद्र में परे हैं  
 विदिशा ईशान वायव्य वैश्याय कार्त्तिय प्रसिद्ध है इसलिये वे अक्षर पश्चिम और दक्षिण प्रसिद्ध हैं और वाहरी  
 पश्चिम दक्षिण कार्त्तिय वाहरी दिशा मान कर और ईशान वायव्य वैश्याय कार्त्तिय प्रसिद्ध हैं और वाहरी  
 कि "तर्ह दिशाभि के (चार) द्रीय ती अम्बूद्वीप की वेदी में पर्वसौ योजन विदिशा मानकर विद्योत्त  
 बहुरि दिक्कामि हैं (चार) द्रीय वेदीमें पर्वसौ योजन परे हैं तिनका विस्तार पचास पचास (५५) योजन का है बहुरि  
 दिक्क दिक्कामि के अणुद्वीपोंके (आठ और चोटी में) पर्वसौ योजन परे हैं । तिनका विस्तार पचास पचास (५५) योजन का है बहुरि  
 योजनका है - ॥





रुमयोरश्च विजयाद्वयोरन्तेष्वष्टौ । तत्र दिवु द्वीपा वेदिकायास्तियक्ष्यञ्चयोजनशतानि प्रविश्य भवन्ति । विदिच्चन्तरेषु च द्वीपा पट्सु योजनशतेषु गतेषु भवन्ति । द्वीपास्तदर्थमिच्छन्मा । द्विद्विच्वन्तरेषु च उपयोऽपि च विजयाद्वयोर्द्वीपान्तेषु भवन्ति ।

- =दोनोके (पूर्व और परिषम) और दोनोवेताड्यो के (पूर्व और परिषम के) अन्तर्विषे
- =भाठ है (अर्थात् सब मिलकर चौबीस अन्तर्द्वीपों)
- =वर्षा (भाठ) दिशाविषे अन्तर्द्वीप (=अम्बुद्वीपकी) वेदिकाके विषयक्
- =पाषसो योजन (समुद्र में) मवेद्य होते हैं और (=च) विविद्या
- =अन्तराल में (भाठ) अन्तर्द्वीप (अम्बुद्वीप की वेदिका से) पाषसो पचास योजन
- =परे (समुद्रमें) है । पवनों के अन्त में (भाठ) अन्तर्द्वीप (अम्बुद्वीपकी वदीसे)
- =बारसो योजन परे (=तोषु) (समुद्र में) है । (भाठ) दिशाओंमें
- =अन्तर्द्वीप उन (भाठ) भाठ दिशा वाले अन्तर्द्वीपों से) आये आय अर्थात् पचास पचास योजन विस्तार वाले हैं

अथोऽपि च विजयाद्वयोर्द्वीपान्तेषु भवन्ति ।  
अथोऽपि च विजयाद्वयोर्द्वीपान्तेषु भवन्ति ।  
अथोऽपि च विजयाद्वयोर्द्वीपान्तेषु भवन्ति ।  
अथोऽपि च विजयाद्वयोर्द्वीपान्तेषु भवन्ति ।  
अथोऽपि च विजयाद्वयोर्द्वीपान्तेषु भवन्ति ।  
अथोऽपि च विजयाद्वयोर्द्वीपान्तेषु भवन्ति ।  
अथोऽपि च विजयाद्वयोर्द्वीपान्तेषु भवन्ति ।  
अथोऽपि च विजयाद्वयोर्द्वीपान्तेषु भवन्ति ।



पूर्व आनेय सामान्य कथन किया है इसलिये भाठ दिशाके अन्तर्द्वीपोंका जो अम्बुद्वीपकी वेदिकासे पाषसो योजन समुद्र में परे हैं विविधा दिशा योजन सामान्य कथन किया है इसलिये भाठ दिशाके अन्तर्द्वीपोंका जो अम्बुद्वीपकी वेदिकासे पाषसो योजन समुद्र में परे हैं पवित्रम सक्षिप बार ही दिशा मान कर और दिशा सामान्य कथन किया है इसलिये भाठ दिशाके अन्तर्द्वीपोंका जो अम्बुद्वीपकी वेदिकासे पाषसो योजन समुद्र में परे हैं कि 'वर्षा' दिशाके (चार) द्वाय की अम्बुद्वीप की वेदी में पाषसो योजन परे हैं तिनका विस्तार पचास पचास योजन किया है चतुरि दिशिदिशि में (चार) द्वीप वेदीमें पाषसो योजन परे हैं तिनका विस्तार पचास पचास योजन किया है दिक् दिशिदिशि के अन्तर्द्वीपोंके (भाठ) द्वीप वेदी में पाषसो योजन परे हैं । तिनका विस्तार पचास पचास योजन किया है ।





शीलान्तेषु पञ्चविंशतियोजनविस्तारा । तत्र पूर्वस्यां दिश्येकोरुका । अथरस्यां दिशि लांगूलिन उत्तरस्या  
 दिश्यभापका । दक्षिणस्यां दिशि धिपाणिन । विदित्नु शशकर्णशकुलीकर्ण कर्णप्रावरण लम्बकर्णाः

सर्वादि  
 भाषाणा

शेष—आन्तर्द्वीप  
 पश्चिमिदिशि योजन विस्ताराः  
 तत्र अश्वस्याम् दिशि एक उरुकाः

अथरस्याम् दिशि लांगूलिन  
 अथरस्याम् दिशि अर्थापकाः  
 दक्षिणास्याम् दिशि धिपाणिनाम्  
 (१) विदित्नु ॥  
 शशकर्ण  
 शकुलीकर्ण -

(१) कर्ण प्रावरण—

लम्बकर्णाः

सिद्धि  
 मन् ३७

- = (विषवात् शिशिरी शीतलविमर्द्याः) अर्धवर्गोऽत्रे भाठश्रोत्रो मे वा आठ शान्तो मे (आठद्वीप)
- = अथीस पथीस योजन विच्छेदय के पारक है
- = १११ पूर्वदिशामें (वा अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले) एक बाय क (ऊरुका) पारक है
- अर्थात् एक रोगवाले मनुष्य पूर्वा अन्तर्द्वीपमें निवास करते है
- = यथिय दिशामें (मो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले मनुष्य) पूर्व वाले है
- = उत्तर दिशामें (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले मनुष्य) उत्तर रहने गते है
- = दक्षिण दिशामें (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले मनुष्य) दक्षिण वाले है
- = (पार) दिशि शो (ईशान-वायव्य-जैश्वत्यु आग्नेय) में (मो अन्तर्द्वीप है उनके मनुष्य)
- = लाररा के सहय कानवाले (=शशकर्ण) मनुष्य है (शशक-लाररा-ससा प्रकार्य है)
- = साकळ वा शाकली कहिये पथकी नाली क समारह कान भिनके ऐसे मनुष्य अर्थात् एक पथार के पथ सशर ह कान भिनके ऐसे मनुष्य होते है
- = नान ही है मोहने और डकने का दुष्टा वा उपकरण भिनके अर्थात् अन्तर्द्वीप के रहने वाले व मनुष्य भिनके पादरा वा उससे और बड़ बड़े कान है भिनसे एक कान पर बिना सकते है दूसरे को ओठ सकते है
- = (विषम पित्त) लम्बार्ह के कानों सहित अन्तर्द्वीप वासी मनुष्य है ॥

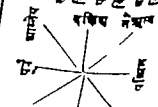
(१) विदित्नु — इस शब्द को मूलस्यम वाच्ये न तथा लेखकोऽत्र असाकषागोसे किलो किली इत्य निमित्त विधिमें उचर वाक्य 'आठ  
 विदित्नु इत्यादि मे मित्राकर' विदित्नुसिद्धेश्वरमादि श्रावति' लिखदिया है तथा श्रावदिया है । किली किली प्रथिमे इव श्रावके मागे  
 एक एक विराम का चिह्न देकर । विदित्नु देया गिजा है । कही पर दोनो वाक्यों को एक कर दिया है जिससे यह गही काय पड़ता है कि यह  
 शब्द दिशि शो से संबन्ध रखता है अथवा दिशि शो के बोध र में जो दिशामें है उससे संबन्ध रखता है इससे इसको सबसे प्रथमसे लिखा है  
 इससे स्पष्ट होजाय कि यह प्रथम वाक्य सं सम्बन्ध रखता है । जो ईशान-वायव्य-जैश्वत्य आग्नेय दिशि शो का धोतक है  
 (२) कर्ण-प्रावरण के स्थान में 'प्रावरण' देया सर्वार्थसिद्धि दोनो श्रावणियों में अश्व सुष गया है । क्योंकि हमने इत्यादि लिखत मीन  
 प्रथिमे मिसाया ता सबसे उर्ध्वप्रावरण' लिखता दूसरे यह कि सुदित रात्रकारिक तथा एवगठानाका उर्ध्व अश्ववहित रात्रकारिक

रुमयोश्च विजयाद्द्वयोरन्तेष्वष्टौ । तत्र दिव्जु द्वीपा वेदिकायास्तिर्यक्पञ्चयोजनशतानि प्रविश्य  
भवन्ति । विदिच्चन्तरेषु च द्वीपा पटसु योजनशतेषु गतेषु भवन्ति । शैलान्तेषु द्वीपा  
पटसु योजनशतेषु गतेषु भवन्ति । दिव्जु द्वीपा शतयोजनविस्तारा । विदिच्चन्तरेषु च  
द्वीपास्तदर्थविष्कम्भा ।

यमपोद्द्वीपः षड्भिमार्दयोः द्वान्वयुः  
मन्वीः  
तत्र दिव्जु द्वीपा वेदिकाया इति निर्दिष्टः  
पञ्चयोजनशतानि प्रविश्य - यच्चन्तरेषु च द्वीपाः  
अन्वयुः द्वीपाः पञ्चयोजनशतेषु गतेषु भवन्ति ।  
गतेषु भवन्ति । यैः चन्तरेषु च द्वीपाः  
पटसु योजनशतेषु गतेषु भवन्ति ।  
द्वीपाः योजनशतेषु गतेषु भवन्ति ।  
द्वीपाः योजनशतेषु गतेषु भवन्ति ।

योनोके (पूर्व और पश्चिम) और दोनों वेदाङ्गों के (पूर्व और पश्चिम) के अन्तर्विषय  
= मात है (अर्थात् सब मिलाकर चौबीस अंगद्वीपों पर)  
= नारां (आठ) दिशाओं पर अन्वर्तीय (= अन्वर्तीयकी) वेदिकाके तिर्यक्  
= पांचसौ योजन (समुद्र में) प्रवेश होते हैं और (= च) विदिशा  
= अन्वयुः में (आठ) अन्वर्तीय (अन्वर्तीय की वेदिका से) पांचसौ पचास योजन  
= परे (समुद्र में) हैं । पर्वतों के अन्त में (आठ) अन्वर्तीय (अन्वर्तीयकी वृत्तसे)  
= अन्वर्तीय सौ सौ योजन विस्तार वाले हैं । (आठ) दिशाओं में  
= अन्वर्तीय इन (आठ) आठ दिशा वाले अन्वर्तीयों से) आठ (आठ) विदिशा अन्वयुः  
पचास योजन विस्तार वाले हैं

(१) ज्योतिष विषयमें आठ विंश मार्ग हैं और वहाँ पर पुरययाद् स्वामी न चरन्तीति लोक विस्तारके सङ्कल्पमें  
सौ सौ योजन विस्तार है एतन्निचे आठ दिशाके अन्वर्तीयों का जो अन्वर्तीयकी वेदिकासे पांचसौ योजन समुद्र में परे हैं  
तिरिण इति नाम विस्तार का है परन्तु बहुधा कति सकारमें कारिका पूर्ण उत्तर पश्चिम और वृत्ति प्रसिद्ध हैं और कारकी  
पश्चिम वृत्ति चार ही दिशा मान कर और ईशान वायव्य शिखर आग्नेयका विदिशा मानकर विशेषतः चतुर्दिशा में पूर्व उत्तर,  
कि 'वहाँ दिशाओं के (आठ) द्वीप ही अन्वर्तीय की वेदों में पांचसौ योजन परे समुद्र में हैं तिनका जो सौ योजन विस्तार है  
बहुति विदिशाओं के (आठ) द्वीप वेदिकाके अन्वर्तीयों के अन्तर्विषय में पांचसौ योजन परे हैं । तिनका विस्तार पचास योजन विस्तार है ।  
पिण्ड विदिशाओं के अन्वर्तीयों के अन्तर्विषय में पांचसौ योजन परे हैं । तिनका विस्तार पचास योजन विस्तार है ।  
वर्षा



एतन्निवासी भाकरूपसहाय ब्रह्मण इव पदभ्रमद आर ॥१५॥११॥११॥ संहित सभाषसिद्धिका शब्दशः हिन्दीभनुवाद । अध्याय ३ सूत्र ३६  
 मत्तयमुखकालमुखा हिमवत उभयोरन्तयो । हस्तिमुखा आदर्शमुखा उत्तरविजयाह्वर्योभयो-  
 रन्तयो । गोमुखमेपमुखा दक्षिणद्विजयार्धस्योभयोरन्तयो । एकोरुका मृदाहारा गुहावासिन  
 शेषा पृष्यफलाहारा वृजवासिन सर्वे ते पत्योपमायुष ॥ ते चतुर्विंशतिरपि द्वीपा जलतलादेक-  
 योजनोत्सेधा ॥ लवणोदधेर्बाह्यपार्श्वेऽप्येवं चतुर्विंशतिर्द्वीपा विज्ञातव्या ॥ तथा कालोदेऽपि वेदितव्या ॥

अथ च्छ वा पृथ्वीके समान मुखवाले और बाले वा झालनील (=झाक) मुखवाले  
 =हिमवान् कुलावलके दोनों (पूर्व-पश्चिम) छोरोंमें (दो अन्तर्द्वीपोंके रानेवाले) हैं  
 =हस्ती समान मुखवाले (मनुष्य) और दर्पन समान मुखवाले (मनुष्य)  
 =उत्तर वैराट्य पर्वतके दोनों (पू्व पश्चिम) छोरोंमें (अन्तर्द्वीपोंमें) हैं  
 =गो सहस्र मुख पारक (मनुष्य) और मेषा वा भेड़ समान मुखवाले (मनुष्य)  
 =दक्षिण दिशिक वैराट्य पर्वतके दोनों (पूर्व-पश्चिम) अन्तोंमें (अन्तर्द्वीपोंमें) हैं  
 =एक बाँधवाले मनुष्य मिट्टीका आहार करनेवाले हैं (और) गुफाओंमें रहनेवाले हैं  
 =प्रशोप मनुष्य (जो अंतर्द्वीपों में रहते हैं) फल पत्रक आहारी हैं पेटोंके बासी हैं  
 =ते समस्त पश्य मण्य आयुक्त वा स्थितिक धारक हैं । वे चौबीसों  
 =द्वी (अन्तर) द्वीप भूकक तलसे एक योजन ऊँचे हैं या योजनके उचाई वाले हैं  
 =उत्तर समुद्रक बाहिरी पत्रक वा बाहिरी परिधिमें (=बाह्य-पार्श्व) भी ऐसे  
 =चौबीस (अन्तर) द्वीप मानना चाहिये अर्थात् चौबीस अन्तरद्वीप जो ऊपर ऊरे  
 =वैस ही (जैसा कि ऊपर ऊपरके हैं) काखोवपि समुद्रमें भी (४८ अन्तरद्वीप) हैं  
 अर्थात् चौबीस अन्तरद्वीप काखोद्विक्ती भीतरी परिधि सम्बन्धी और चौबीस ही

मत्स्य मुखाः<sup>१</sup> काक-मुखाः<sup>१</sup> (१)

हिमवतः<sup>१</sup> उभययोः<sup>१</sup> अन्तयोः<sup>१</sup>

हस्ति-मुखाः<sup>१</sup> आदर्श-मुखाः<sup>१</sup>

उत्तरविजयाह्वर्योः<sup>१</sup> उभयोः<sup>१</sup> अन्तयोः<sup>१</sup>

गो-मुखाः<sup>१</sup> मेष-मुखाः<sup>१</sup>

दक्षिणदिग्विजयार्धस्योः<sup>१</sup> उभयोः<sup>१</sup> अन्तयोः<sup>१</sup>

एक-<sup>१</sup> ऊरुकाः<sup>१</sup> मृत् आहाराः<sup>१</sup> गुहा आवासिनः<sup>१</sup>

शुभाः<sup>१</sup> पुष्य-फल आहाराः<sup>१</sup> पृच्छ-वासिनः<sup>१</sup>

सर्वे<sup>१</sup> शू<sup>१</sup> पत्योपम-आयुषः<sup>१</sup> । ते चतुर्विंशतिः<sup>१</sup> ।

अपि<sup>१</sup> अद्वीपाः<sup>१</sup> भूकक-तलादेः<sup>१</sup> एक-योजन उरसयाः<sup>१</sup>

उत्तर उदय<sup>१</sup> पार्श्व-पार्श्वे<sup>१</sup> अपि<sup>१</sup> अष्टपञ्च<sup>१</sup>

चतुर्विंशतिः<sup>१</sup> । द्वीपाः<sup>१</sup> विज्ञातव्याः<sup>१</sup>

तथा<sup>१</sup> काखोदरे<sup>१</sup> अपि<sup>१</sup> अष्टवेदितव्याः<sup>१</sup> ।

और जो ऊपर

(१) काक = काला कालानोलासिद्धिपत्त (१) पद्यमहायका काकपुच्छ १८१ । (२) ऊरु = बाँध, ऊरुक = बाँधवाला जीवधारक

पद्यानिपाती काकमसाप यद्गील कृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थे सपिप सर्वार्थेसिद्धिका शब्दशः शिन्दी अनुवाद्य अप्याप ३ सूत्र ३६  
 अन्तरेषु थस्वसिंहस्वमहिषवराहव्याघ्रकाकपिमुखा ॥ मेघविद्युन्मुखा शिखरिणा उभयोरन्तयो

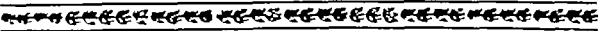
पूष उचर-परिषप-दक्षिण चार दिशाओं तथा शिान-बापव्य-नैऋत्य आग्नेय चार विदिशाओंके  
 =भ्रतराळोंमें-भन्तविशाओंमें अर्थात् चारविशा चार विदिशाओंके बीच बीच की(भाठ)दिशाओंमें  
 ओ अंतर्द्वीप है इनमें रहनेवाले मनुष्य  
 =जोड़ा ऊं सहस्र सुलवाले, सिंहा सरतीले सुलवाले, कुशा सप्त सुलवाले,  
 =मैसा समान सुलवाले, सूकर सप्त सुलवारक, बयोरानेके सहस्र सुलवारक  
 =श्याक समान सुलवाले वा कटकभा सहस्र सुलकेके पारक, बंदरके समान सुलवाले, शोवे रें ॥  
 =जोय सुलवाले और विजलीके सहस्र सुलवाले (मनुष्य) शिशिरो पर्यंके  
 =दीनों (पूर्व-परिषपक) अंतोमें-कोरोंमें (दो अंतर्द्वीपों में बसान वाले) हैं

(१) अन्तरेषु ॥ (विद्युः ॥)

भरत-मुलाः ॥ सिंह-मुलाः ॥ रघु-मुलाः ॥  
 गरिप-मुलाः ॥ बभार-मुलाः ॥ व्याघ्र-मुलाः ॥  
 काक-मुलाः ॥ क्षपि-मुलाः ॥ ॥  
 मेघ-मुलाः ॥ विपु-मुलाः ॥ गिलिखि-मुलाः ॥  
 वयपोऽग्नी-मन्त्रयोऽग्नीः

तथा ही इत्त लिखित साथ प्रतिवे जो इसको एन्द्रप्रस्थक मन्त्रियोंसे प्राप्त हुई हैं सबमें ही 'कूर्व'शब्द'एक' पाठ है । इसके अनेककी व्याख्ययकता नहीं है कि 'म्लेच्छ' विविधा देशिकाया रक्षादि से सर्वे ते तस्योपमापुत्रः पर्यन्त सर्वावेसिद्धिवृत्ति और एकावर्तिकका लेख क्रममग एकही है प्र तीसरे यह कि 'मगवर्ण' का अर्थ दुग्धा है केवल'मगवर्ण'का विना कर्षे शब्द जाये हुये कुक्षुमी अर्ग' नहीं होसकता है अत पाठ शुद्ध करके लिखा है ॥

(१) अन्तरेषु शब्द के साक्य में हमारी बही दिव्यपी है जो हमने पृष्ठ ७७ में विरिचु शब्द के सम्बन्ध में दी है ।  
 (२) काक' शब्दके पर्याय 'यूक' शब्द ही इत्तलिखित मन्त्रियोंसे लिखाया गया उनमें किसीमें नहीं है । 'यूक' का अर्थ पुरुष्य वा यज्ञ है । एवं अणवत्पदकबीने 'एवाग के सहस्र मुकपाले' वा एवागमुका अणवी कविकाममें भी लिखा है परन्तु 'उत्कृष्टमुका' काक मुका लिखा है सम्भव है कि कित प्रतिवे उनमें एकामिका की हो उसमें 'समुका' बहो शीर'काकपुत्रमुका हो जैसा कि सर्वाथे सिद्धि की शोनों मुद्रित आनुषिचो से प्राप्त है ॥ एकावर्तिकको मुद्रित तथा इत्तलिखित दोनों प्रकारकी मंत्रियों में 'अत्रन सिंह रूप अदिह-वराह-व्याघ्र-उभूक कविमुका' देखा पाठ है अर्थात् "काकपुत्रमुका" के स्थान में 'उत्कृष्टमुका' शब्द है यदि इस सब मामलों कि मुकपाठ वाली सर्वावेसिद्धिमें 'यूक' शब्द नहीं है तो 'काकमुका' के स्थान में 'उत्कृष्ट मुका' रहजाता है ॥ इसमें एक बहुत प्राचीन दण्ड लिखित सर्वावेसिद्धिमें अणव का पाठ कर्तव्य लिखा है उसमें 'यूक' शब्द नहीं है अतः यून शब्द की उचित है हमारे लिखावटमें अणवका पाठ अन्वर्तिककीमें भी प्रकारके सुलवाले नहीं होसकते हैं । पूष दोनो पाठक करवा सुचित करे ॥



मरपर्यं सशित सबायसिद्धिका शुद्धयः सिन्धीमनुवाद । अथप्राय ३ सत्र ३६

मरयमुखकालमुखा हिमवत उभयोरन्तयो । हस्तिमुखा आदर्शमुखा उत्तरविजयार्द्धस्योभयो-  
रन्तयो । गोमुखमपमुखा दक्षिणद्विजयार्द्धस्योभयोरन्तयो । एकोरुका मृदाहारा गुहावासिन  
शेषा पुष्यफलाहारा वृक्षवासिन सर्वे ते पत्योपमायुष ॥ ते चतुर्विंशतिरपि द्वीपा जलतलादेक-  
योजनोत्सेधा ॥ लवणोदधेर्बाह्यपार्वेऽप्येवं चतुर्विंशतिर्दीपा विज्ञातव्या ॥ तथा कालोदेऽपि वेदितव्या ॥

—अथ्व वा मध्यक्षीके समान मूलषाले और ऋाले वा ऋालनील (=ऋाल) मूलषाले  
=रिषवान् कुडाचलक दोनो (पूर्य-परिषप) खोरोंमें (दो अन्तर्द्विपोंके रहनेवाले) है  
=रस्ती समान मूलषाले (मनुष्य) और दर्पन समान मूलषाले (मनुष्य)  
=उत्तर वैशाख्य पर्वतके दोनो (पूष परिषप) खोरोंमें (अन्तर्द्विपोंमें) है  
=गो सहय मुख धारक (मनुष्य) और मेवा वा भेड़ समान मूलषाले (मनुष्य)  
=दक्षिण दिशिके वैशाख्य पर्वतके दोनो (पूष-परिषप) अन्तोंमें (अन्तर्द्विपोंमें) है  
=एक नायषाले मनुष्य विहीका आहार करनेवाले हैं (और) गुफामोंमें रहनेवाले हैं  
=मधुशेप मनुष्य (गो अन्तर्द्विपों में रहते हैं) फल फलक आधारी हैं पेशोंके वासी हैं  
=ये समस्त पत्य मयाण आयुक्त वा स्थितिके पारक हैं । वे चौबीसी  
=री (अन्तर) द्वीप मरक लसे एक योजन ऊंचे हैं वा योजनके उचाई वाले हैं  
=कषण समुद्रक बाहिरी पक वा बाहिरी परिषिमें (=आप्त-पारखें) भी ऐस  
=चौबीस (अन्तर) द्वीप जानना चाहिये अर्थात् चौबीस अन्तरद्वीप जो ऊपर करे  
=चौबीस ही (जैसा कि ऊपर कह चुके हैं) कालोदधि समुद्रमें भी (४८ अन्तर्द्विप) हैं  
अर्थात् चौबीस अन्तर्द्वीप कालोदधिकी भीतरी परिषि सम्बन्धी और चौबीस ही

मत्स्य-मुलाः ॥ काठ-मुलाः ॥ (१)

रिषवतः ॥ उपयोः ॥ अन्तयोः ॥

इस्ति-मुलाः ॥ भावर्ष-मुलाः ॥

उत्तरदिश्यादर्शस्य ॥ उपयोः ॥ अन्तयोः ॥

गो-मुलाः ॥ भेष मुलाः ॥

दक्षिणदिग्निश्यादर्शस्य ॥ उपयोः ॥ अन्तयोः ॥

एक- ॥ ऊरुकाः ॥ मृद आहाराः ॥ गुह आवासिनः ॥

श्याः ॥ पुण्य-फल आहाराः ॥ वृक्ष-वासिनः ॥

सर्वेषु ॥ पश्योपम-आयुषम् ॥ ते चतुर्विंशतिः ॥

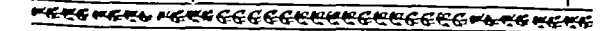
अपि ॥ द्वीपाः ॥ मरक-शलात् ॥ परु-योजन उत्सेपाः ॥

कषण इदधर्षाद्य-पारखे ॥ अपि ॥ एकपकम् ॥

चतुर्विंशतिः ॥ द्वीपाः ॥ विज्ञातव्याः ॥

तथा ॥ कालोदधे ॥ अपि ॥ वेदितव्याः ॥

(१) काठ = ऋाला आनामोलिमिभित (एको पद्यकद्रकोष्ठ पृष्ठ १०६) वैशमहाशयक काशपुष्ट १८५ ॥ (२) ऊरु = जीय, ऊरुक = जीयपासा जीयपारक







त एतेऽन्तर्द्वापिजा स्लेच्छा कर्मभूमिजाश्चकयवनशवरपुलिन्दादयः ॥ का पून कर्मभूमय इत्यत आह—  
**॥ भरतैरावताविदेहा कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरुत्तरकुरुभ्यः ॥३७॥**

नैते इतने अन्तरद्वापिमे वल्लभादुये म्बच्छा इ । और (=च) कर्मभूमिये वल्लभादुये  
 =शक-यवन शवर-पुलिन्द आदि (स्लेच्छ) इ । (परत) पुनि कर्म  
 =भूमिये क्या है । ऐसा (परत होने पर) इसलिये (अग्रिम सूत्रमे) कहते हैं कि  
 =भरतैरावताविदेहा कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरुत्तरकुरुभ्यः (१) ।  
 =भरतैरावत विदेहा (पञ्च, पञ्च, एता) कर्मभूमय-  
 भवन्ति, अन्यत्र(पञ्च)देवकुरुभ्य, (पञ्च)उत्तरकुरुभ्य । ३७।  
 =(पांच मेह सम्बन्धी)पांच देवकुरु<sup>१</sup> (जहाँ उचम भोग भूमि भवती है और)  
 =(पांच मेह सम्बन्धी) पांच भरत क्षेत्र (पांच मेह सम्बन्धी) पांच ऐरावत क्षेत्र  
 =(पांच मेह सम्बन्धी सामान्यरूपस) पांच (भरा<sup>२</sup>) विदेह क्षेत्र  
 (विद्ययातास अत्यक मेहसम्बन्धी बन्तीस बन्तीस विदेह ऐस एकसौ साठ विदेह)  
 =ये कर्म भूमिये<sup>३</sup> है ॥ (इसकी विशेषी टिप्पणी संख्या चारमे नीचे देखो)

श्रीपतः॥ अन्तर्द्वापिजाः स्लेच्छाः कर्मभूमिजाः चकय-  
 वनशवरपुलिन्द आदयः पुनः स्लेच्छा-  
 भूमिये ॥ काः ॥ प्रतिश्रुतः ॥ आद्यः  
 (१) सूत्रम्—

सूत्रार्थः—पञ्चदेवकुरुभ्यः<sup>१</sup>  
 पञ्चउत्तरकुरुभ्यः<sup>२</sup> अन्यत्र<sup>३</sup>  
 पञ्चभरतान्<sup>४</sup> पञ्चऐरावतान्<sup>५</sup>  
 पञ्चविदेसान्<sup>६</sup>  
 एतान्<sup>७</sup> कर्मभूमिये<sup>८</sup> भवन्ति ।

(१) जामे सरसवामे इस सूत्रका एत और अर्थ एकसा है ३ (२) पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरुत्र एसे वृष्ट क्षेत्र दुये इसलिय सूत्रमे  
 'देवकुरुत्तरकुरुभ्य पञ्चमे बहुपुत्रक जाये है यदि एक एक क्षेत्र वाता ना पञ्चमी द्विपुत्रक 'देवकुरुत्तरकुरुभ्याम्' एसा वाक्य ज्ञात ।  
 (३) पांच मेहसम्बन्धी पांच इतिवर्त और पांच रम्यक क्षेत्र ये वृष्ट मयम आगमभिय और पांच मेहसम्बन्धी पांच हीमवत और पांच ऐरावत  
 ये वृष्ट अणय आगमभिये अङ्गतालीस अक्षरोंपर बरण समुद्र सम्बन्धी और अङ्गतालीस क्षात्रोदधि सम्बन्धी ये विद्यागये अथय आगमभिये हुईं इस  
 प्रकार देवकुरु उत्तरकुरु वृष्ट अणय और वृष्ट अथय भोग अभिये सर्व मिलकर एकसौ छत्तीस हुईं  
 (४) पांच विदेह पांच मेह सम्बन्धी बड़े हैं वास्तविक मे पांच विदेह विद्ययक्षपसे एकसौ साठ है । और प्रत्येक विदेहमे पांच स्लेच्छ पंड है  
 और एक क्षार्थ जगह है । और पांच मेहसम्बन्धी पांच मत्तलेत्र है । और पांच ही ऐरावत क्षेत्र है । और प्रत्येक मग क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्रमे पांच  
 पांच स्लेच्छ पंड है और एक एक क्षार्थ पंड है । इस प्रकार विदेह और भरत और परायत समस्त क्षेत्रों में १३० क्षार्थ जगह है । और २५० स्लेच्छ  
 जगह है विद्ययक्षपसे १३० कर्मभूमिये है । सामान्यरूप से १५ है अर्थात् १५० विदेहो का पांच महाविदेह पांच मेह सम्बन्धी कहल है ॥



पदानिवासी बगलसहाय बड़ीक कृष्ण पदच्छेद और विपक्षस्य संहित सभासिद्धिका शब्दशः हिन्दीबनुबाद । अस्याप ३ सूत्र ३७ तत एवं प्रकर्षगतिर्विज्ञास्यते प्रकर्षेण यत्कर्मणोऽधिष्ठानमिति ॥ तत्राशुभकर्मणस्तावत्समनरकप्रापणस्य भरतादिव्येवार्जनं, शुभस्य सर्वार्थसिद्ध्यादिस्थानविशेषप्रापणस्य पुण्यकर्मण उपार्जनं, तत्रैव कृष्यादिलक्षणस्य पदविधस्य कर्मण

ततः प्रकर्षमर्थक्यं

गतिर्निः । निश्चायतो ११ प्रकर्षेण १॥ कर्मण १॥

अधिष्ठानम् १॥ इति ॥

=वर्षा (कर्मभूमिमें कर्मका आधारपना) वास्तविक (=यव) उत्कर्ष

=श्या (=गति) में जाना जाता है (आयाव) उत्कृष्टपनासे जो कर्मका

=आभय है ऐसा भाषार्थ है कि आचार्यके इस उत्तर पर कि कर्मके आभयपनासे इन पन्द्रह खेतीके कर्म भूमिपना है शिष्यने फिर तर्क की कि कर्मके आधार तो तीन खोकरा है तो तीनो खोक कर्मभूमि क्यों न करेगये इसपर कहते हैं कि कर्मका आधार तो तीनोखोकमें अवश्य है । परन्तु जिन स्थानोंमें कर्मका आश्रय अतिशयकरि भयवा उत्कृष्टपनासे पायाजाता है । उन पन्द्रह भूमियोंको कर्मभूमि कहा है । (आगे इस उत्कृष्ट कर्मपनाके दो शब्द देते हैं )

=वर्षा अशुभरूपकर्मसे सातवां नरक तक (=आवत)

=पानेकी(=आपणस्य)भरतादिक(पन्द्रहकर्मभूमियों)में ही सिद्धिवा माप्ति(=अर्जन)होती है ।

=(और) शुभकर्म (कर्मसे) सर्वार्थसिद्धि(आदिक) विगोप स्थानोंके पानेके

=पुण्यकर्मणम् १॥ उपार्जनम् १॥ तर्हा (कर्मभूमियोंमें) ही

=कृषि-आदि-लक्षणस्य १॥ पद-विपक्षम् १॥ कर्मणम् १॥ =लेती करना आदिक लक्षणस्य प्रः प्रकारके कर्मका

(१) 'प्रकर्षे' शब्द पुङ्गिण है । जब 'प्रकर्षेण' और 'प्रकर्षात्' काण्य कारक और अपादान कारको पन्द्रहवत् उत्कृष्टता वा प्रमाणताके अर्थमें आत है तब उनका प्रयोग कण्यकी मति होता है । इसलिये 'उरकर्मण' शब्दका पदच्छेदमें लक्ष्य लिया है । वेको देवकोष्ठ पुच्छ ७१९ ॥

(२) (क) अतिमंशिः इतिविधा वाक्यस्य विष्णुमिषयि । कर्माणि पद्विधानिस्यु प्रजाबीजगतैः ॥ १ ॥ (ख) अत्रासिकर्म संघावा मयिद्विपि विधी स्मता । कर्मिर्म कर्मसे प्रोक्ता विधा शास्त्रोपबोधेः ॥ वाक्यस्य वशिष्ठो कर्ममित्यस्य स्वारकारकोऽर्थकम् । तद्य चित्रकलापञ्चमेवार्थिकुप्या समुत्तम् ॥ ३ ॥



एवमन्वयान्वासा नगकपसहाय बहोव कृष्ण वदन्वेव और विमत्स्यर्थं संहित सवायसिद्धिका शब्दशः सिन्धी अनुवाद । अध्याय ३ सूत्र ३७ तत एवं प्रकर्षगतिविज्ञास्यते प्रकर्षेण यत्कर्मणोऽधिष्ठानमिति ॥ तत्राशुभकर्मणश्चावस्तावत्सप्तमनरकप्राणस्य भरतादिव्यवर्जनं, शुभस्य सर्वार्थसिद्ध्यादिस्थानविशेषप्रापणस्य पुण्यकर्मण उपार्जनं, तत्रैव कृष्यादिलक्षणस्य पद्विधस्य कर्मण

सकृत्पुण्यकर्मणः

गतिः ॥ विज्ञापते ॥ प्रकर्षणञ्च ॥ कर्मणः ॥

अधिष्ठानम् ॥ इति ॥

=वर्षां (कर्मभूमिमें कर्मका आधारपना) वास्तविक (=पूर्व) उत्कर्ष

=दशा (=गति) में जाना आना है (अर्थात्) उत्कृष्टपनासे जो कर्मका

=आश्रय है ऐसा भाषार्थ है कि आचार्यके इस उत्तर पर कि कर्मके आश्रयपनासे इन

पन्द्रह क्षेत्रोंके कर्म भूमिपना है शिष्यने फिर तर्क की कि कर्मके आधार तो तीन

लोकही हैं तो तीनों लोक कर्मभूमि क्यों न करोगये इसपर करते हैं कि कर्मका

आधार ही तीनोंलोकमें अवश्य है । परन्तु जिन स्थानोंमें कर्मका आश्रय अतिशयफरि

अथवा उत्कृष्टपनासे पायाजाता है । उन पन्द्रह भूमियोंको कर्मभूमि कहा है ।

(भागो इस उत्कृष्ट कर्मपनाके दो रहलान् देखे है )

=वर्षां अशुभकर्मसे सातवां नरक तक (=तावत्)

व्यानेकी(=आणस्य)भरतादिक(पन्द्रहकर्मभूमियों)में ही सिद्धिवा प्राप्ति(=अर्जन)होती है ।

=(और) शुभकर्म (कर्मसे) सर्वार्थसिद्धि(आदिक) विशेष स्थानोंके पानेके

=पुण्यकर्मका उपार्जन है । वर्षां (कर्मभूमियोंमें) ही

=सर्वेति करना आदिक लक्षणस्य त्रः प्रकारके कर्मका

(१) 'प्रकर्षे' शब्द पुक्तिग है । जब 'प्रकर्षे' शब्द और 'प्रकर्षणं' शब्द का एक ही अणुदान का लोको परकनचम उत्कृष्टना वा प्रधानताके अर्थमें आत है तब उक्तका प्रयोग कर्मव्यवही गति होता है । इसलिये 'प्रकर्षे' शब्दके अर्थमें कर्मव्यव निम्न है । देको विषयको पृष्ठ ४५३ ॥

(२) (क) अतिरिक्ति इतिरिक्ता वाक्यस्य शिष्यमिवापि । कर्माणि पञ्चभियांसिपुः प्रजाजीवनेतक ॥ १ ॥ (क) अत्रासिद्धं सवायां मविलिपि विधौ स्थता । इतिरिक्तं कर्मस्य वलिङ्गं कर्मस्य स्वप्नकरीणम् । तद्य विप्रकलापकश्चेदादिबहुया इत्युक्तम् ॥



एतद्विवासी गणरूपधाराय इतीह क्व पक्षद और विपारस्यं सखि सभायसिद्धका शय्यय हिन्दोऽनुवाद । अथाप्य ३ सूत्र ३७

तत एवं प्रकर्षगतिनिज्ञास्यते प्रकर्षेण यत्कर्मणोऽधिष्ठानमिति ॥ तत्राशुभकर्मण्यस्तावत्सतमनरक-  
प्रापणस्य भरतादिव्येवार्जनं, शुभस्य सर्गाथसिद्ध्यादिस्थानविशेषप्रापणस्य पुण्यकर्मण्य उपार्जनं,  
तत्रैव कृत्यादिलक्षणस्य पडविधस्य कर्मण्य

त ० पपप ० मरु  
गतिः ॥ विद्यापारा 'मरुण ० अत्र' ॥ 'कमण ०' इति ०  
अभिपुनम् ॥ इति ०

=वर्षा (कर्मभूमिमें कर्मका आधारपना) भास्वविक्र (=पर्व) उत्कर्ष  
=व्यथा (=व्यति) में जाना जाता है (अथाव) उत्कृष्टपनासे जो कर्मका  
=आशय है ऐसा भावार्थ है कि आधारके इस उचर पर कि कर्मके  
पत्रर क्षेत्रके कर्म भूमिपना है शिष्यने फिर तर्क की कि कर्मके आधारपनासे इन  
लोकरी है तो तीनों लोक कर्मभूमि क्यों न करेगये इसपर कहते हैं कि कर्मका  
आधार ही तीनोंलोकमें अवश्य है । परन्तु जिन स्थानोंमें कर्मका आधार्य अविशयकरि  
अथवा उत्कृष्टपनासे पायाजाता है । उन पत्रर भूमियोंको कर्मभूमि कहा है ।  
(भागे इस उत्कृष्ट कर्मपनाके दो दृष्टान्त देते हैं)  
=वर्षा अथुरूपकर्मसंसातर्षं नर्क तक (=आवृत्त)  
=वर्षा (आपणस्य)भरतादिक(पत्ररकर्मभूमियों)में ही सिद्धिवा माप्ति(=अर्जन)होती है ।  
=आर) शुभरूप (कर्मस) सर्वाथसिद्धि(आदिक) विशेष स्थानोंके पानेके  
=शुभकर्मका उपार्जन है । तर्षा (कर्मभूमियों) ही  
=लेती करना आदिक लक्षणरूप त्रः प्रकारके कर्मका

तत्र ० अशुभ कमणः ॥ भावत् ० सतम-नरक  
मापणस्य ॥ भरतादिः ० एव ० अर्जनम् ॥  
शुभस्य ॥ सर्गाथसिद्धि-स्थान विशेष मापणस्य ॥  
तत्र ० पप ०  
(१) कर्म-आदि-लक्षणस्य ॥ पत्रर निपत्स्य ॥ कर्मणः ॥  
(२) अर्जनं उपर गुणिग है । उक्त 'अर्करोण' और 'अर्करोण' करण कारक कोर अगावान कारकोक पत्ररथय उत्कृष्टना वा प्रधातनाके अर्थमें आत है  
तत्र उत्कृष्टपनाय भावयको मिति होता है । इसलिये 'अर्करोण' शब्दका पदकोसमें भावय लिखा है । देको वेदकोण पुष्ट अथ ३ म  
(३) कर्मभूमिगि कर्मभूमिगि वासित्यं शिष्यमित्यपि । कर्मणि पत्ररिपानिस्यु प्रजाश्रीपलक्षणयाः ३ १ म (क) अत्रातिकर्म सवासां मनिर्लिपि  
विशेषे स्तुता । इति ० कर्मके माका विद्या शालोपशोकोयोगेण वासित्यं पवित्रो कर्म शिष्यं श्याकरकोऽप्यम् । तत्र विप्र कर्मापकच्युतेऽदिबुधा स्तुताम् ३३

(१) अर्जनं उपर गुणिग है । उक्त 'अर्करोण' और 'अर्करोण' करण कारक कोर अगावान कारकोक पत्ररथय उत्कृष्टना वा प्रधातनाके अर्थमें आत है  
तत्र उत्कृष्टपनाय भावयको मिति होता है । इसलिये 'अर्करोण' शब्दका पदकोसमें भावय लिखा है । देको वेदकोण पुष्ट अथ ३ म  
(३) कर्मभूमिगि कर्मभूमिगि वासित्यं शिष्यमित्यपि । कर्मणि पत्ररिपानिस्यु प्रजाश्रीपलक्षणयाः ३ १ म (क) अत्रातिकर्म सवासां मनिर्लिपि  
विशेषे स्तुता । इति ० कर्मके माका विद्या शालोपशोकोयोगेण वासित्यं पवित्रो कर्म शिष्यं श्याकरकोऽप्यम् । तत्र विप्र कर्मापकच्युतेऽदिबुधा स्तुताम् ३३





॥ त्रिस्थिती परापरं त्रिपल्योपमान्तमुहूर्तं ॥ ३८ ॥

त्रीणि पल्योपमानि यस्या सा त्रिपल्योपमा । अन्तर्गतो मुहूर्तो यस्या सा अन्तर्मुहूर्ता ॥  
यथासल्येन सम्बन्ध ॥ मनुष्याणां परा उच्छ्रष्टा स्थिति त्रिपल्योपमा ॥ अपरा जघन्या अन्त-  
र्मुहूर्ता । मध्ये अनेकक्रिया ॥ तत्र पल्यं त्रिविधं व्यवहारपल्यमुद्धारपल्यमद्वापल्यमिति ।

सूत्रम्-त्रिस्थिती परापरं (१) त्रिपल्योपमान्तमुहूर्तं-नृस्थिती-परापरं-त्रिपल्योपमान्तमुहूर्तं-(यथासंख्यम्)

- =मनुष्यों की आयु उच्छ्रष्ट और जघन्य तीन पल्यपमाण और अन्तर्मुहूर्त
- =मनुक्रमसे हैं अर्थात् मनुष्यों की आयु उच्छ्रष्ट (=परा) तीन पल्य पमाण
- =तीन पल्य (=अपरा) अन्तर्मुहूर्त हैं । और मध्य आयुके अनेक वेद हैं ।
- =त्रिपल्योपमा है । अन्तर्गतो मुहूर्त जिसकी सो
- पक्षी के भीतर भीतर जिसकी
- =सो अन्तर्मुहूर्ता है । यथासंख्यकरि अथवा संख्याके क्रमसे (इन-परा
- अपरा-त्रिपल्योपमा अन्तर्मुहूर्तो अर्थोका परस्पर)
- =सम्बन्ध है (अर्थात् परा शब्दके साथ त्रिपल्योपमा का सम्बन्ध किया जाता है
- और अपरासे साथ अन्तर्मुहूर्तिका तत्र निम्नलिखित इसमकार अर्थ होगा कि)
- =मनुष्योंका सबसे अधिक जीवनकाल तीनपल्य पमाण है ॥
- =सर्वसंयाति(आयुवा)अपत्य(आयु)अन्तर्मुहूर्त है । और मध्यविविध अनेक वेद है
- =तहाँ पल्य तीन प्रकार है । व्यवहारपल्य,
- =उद्धारपल्य और अद्वापल्य पल्ये

(१) परावर्त, परावर्त, परावर्त, अथवा परावर्त से वाक्य ठीक है । कई गो वाक्य दृष्टिगतो वाक्य के पर्याय लिखा जासका है म



॥ त्रास्थिती परापरे त्रिपल्योपमान्तमुद्धर्ते ॥ ३८ ॥  
 त्रीणि पल्योपमानि यस्या सा त्रिपल्योपमा । अन्तर्गतो मुद्धर्तो यस्या सा अन्तर्मुद्धर्ता ॥  
 यथासल्येन समन्वय ॥ मनुष्याणां परा उक्कटा स्थिति त्रिपल्योपमा ॥ अपरा जघन्या अन्त-  
 मुद्धर्ता । मध्ये अनेकाधिकल्पा ॥ तत्र पल्य त्रिविधं व्यवहारपल्यमुद्धारपल्यमद्धारपल्यमिति ।  
 सूत्रम्-तृस्थिती परापरे-त्रिपल्योपमान्तमुद्धर्ते-तृस्थिती-परापरे-त्रिपल्योपमान्तमुद्धर्ते (यथासल्यम्)

=मनुष्योंकी आयु उल्लेख और जघन्य तीन पल्यमण्डल और अन्तर्मुद्धर्त  
 =अनुक्रमसे है अर्थात् मनुष्योंकी आयु उल्लेख (=परा) तीन पल्य मण्डल  
 और जघन्य (=अपरा) अन्तर्मुद्धर्त है । और पल्य आयुके अनेक भेद है ।  
 =तीन पल्य मण्डल है जिसकी सो  
 =विशेष्योपमा है । पीठर वा अन्यस्वर मुद्धर्त जिसकी अर्थात् मुद्धर्त वा दो  
 पड़ी के पीठर पीठर जिसकी  
 =सो अन्तर्मुद्धर्ता है । यथासल्यकरि अथवा सल्याके रूपसे (इन परा  
 अपरा-त्रिपल्योपमा अन्तर्मुद्धर्तो शब्दोंका परस्पर)  
 और अपराके साथ अन्तर्मुद्धर्ताका वा सम्बन्ध साय त्रिपल्योपमा का सम्बन्ध किया जाता है  
 =सम्बन्धैर्अर्थात् परा शब्दके साथ त्रिपल्योपमा का सम्बन्ध किया जाता है  
 =मनुष्योंका सबसे अधिक जीवतकाल तीनपल्य मण्डल है ॥  
 =सप्तसप्त्यादि(आयु)अथन्य(आयु)अन्तर्मुद्धर्त है । और मध्यविषै अनेक भेद है ॥  
 =तर्हा पल्य तीन प्रकार है । व्यवहारपल्य,  
 =उद्धारपल्य और अद्धारपल्य ऐसे

(१) पदपरे पदपरे, पदपरे, अथवा पदपरे सब पाठ्य ठीक है ॥ काँरी मी गान्य मुद्रिपती वाच्य के परभाव लिका प्राप्त है ॥

सर्वत्र  
 वाच्य  
 ८५





पद्मानिवासी अग्ररूपसहाय वृद्धील्लव पदच्छेद और विषयस्पर्षसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दराः हिन्दीअनुवाद अस्पाय ३ सूत्र ३०  
 पात्रदानादिसहितस्य तत्रैवारम्भात्कर्मभूमिव्यपदेशो वेदितव्य ॥ इतरासु दशविधकल्पवृज-  
 कलिपतभोगानुभवत्रविषयत्वाद्भोगममय इति व्यपदिश्यन्ते ॥ उक्तासु भूमिषु स्थितिपरिच्छेदाद्यर्थमाह—

पात्रदानादिसहितस्य ॥ तत्र-सपत्न्ये आरम्भात् ॥  
 कर्म भूमिव्यपदेशो नैवदिस्य ॥ इतरासु ॥  
 दशविधकल्पवृज-कल्पवृज-भोग-अनुभव  
 विषयत्वात् ॥ भोगममय ॥ प्रतिच्छेदव्यपदिरयन्ते ॥  
 उक्तासु ॥ भूमिषु ॥ स्थिति-परिच्छेद-कार्येषु ॥ आह ॥  
 कर्मभूमिषु ॥ कर्मि ॥ विषयेषु ॥ वाक्येषु ॥ इति ॥ परि ॥  
 कर्मभूमिषु ॥ कर्मिषु ॥ विषयेषु ॥ वाक्येषु ॥ इति ॥ परि ॥  
 इतरासु ॥ कर्मि ॥ विषयेषु ॥ वाक्येषु ॥ इति ॥ परि ॥  
 कर्मभूमिषु ॥ कर्मिषु ॥ विषयेषु ॥ वाक्येषु ॥ इति ॥ परि ॥

अथस्तानादिक (धारक्यौ) सहित वहीही आरम्भ होने (के निमित्त) से  
 = (निन पत्रच्छेदोंका) कर्मभूमि नाम जानना चाहिये । अन्य वा दूसरों (अथ अर्थात्  
 सपर्यक्त ध्यानवै भोगममयोंमें और पर्योक्त वीस उषय, मध्यम अवयवभोगममयोंमें  
 = यद्यथा किंच फलवृजौसे इच्छित वा वाञ्छित योगोंका अनुभव  
 = विषय होनेसे भागभूमिमें ऐसे नाम कहाते हैं (= व्यपदिश्यन्ते)  
 = कथित (समस्त) भूमिषुमें आयुके अर्थयुक्ते (= परिच्छेद) लिये करते हैं कि  
 = अर्थि मयि ज्येती, विद्या वाक्यस्य मोर विरय येसे भी  
 = कृष प्रकार कर्म प्रकाश जीविका (= जीवन) के कारण होते हैं ॥ १ ॥  
 = यहाँ (कर्मभूमिमें) अर्थिकर्म सेबाधिर्ये (मोर) मसी (कर्म) लेखनकार्यमें  
 = स्मरण किया जाता है । (ज्येती) इति  
 = अर्थिके जोतनेमें विद्यार्थि (मोर) विद्या (कर्म) शक्यकी अधिकारमें वा पद्येते हैं  
 = वाक्यस्य कर्म मयि अथवा व्यापारियों का काम है । विरय (कर्म) इत्युक्ती  
 = विषयता कर्तुं वा प्रयोजनता अथवा इत्यसे आत्मप्राप्तके काममें कर्तुं गारहे  
 = मोर (= वा) कृष (अर्थिकर्म) का विविध अर्थार्थ कर्तुं गारहे मूलियां कर्तुं गारहे  
 = जोसिद्ध प्रकारका गाना बजाना आदि (= कर्मा) पर्ये अथवा वागवृत्ता  
 = कर्तुं वा बजाना अथवा इत्यादि कर्तुं गारहे, की मियुक्तता स्मरण की जाती है (३)  
 = अर्थिके जोतनेमें विद्या (कर्म) शक्यकी अधिकारमें वा पद्येते हैं  
 = वाक्यस्य कर्म मयि अथवा व्यापारियों का काम है । विरय (कर्म) इत्युक्ती  
 = विषयता कर्तुं वा प्रयोजनता अथवा इत्यसे आत्मप्राप्तके काममें कर्तुं गारहे  
 = मोर (= वा) कृष (अर्थिकर्म) का विविध अर्थार्थ कर्तुं गारहे मूलियां कर्तुं गारहे  
 = जोसिद्ध प्रकारका गाना बजाना आदि (= कर्मा) पर्ये अथवा वागवृत्ता  
 = कर्तुं वा बजाना अथवा इत्यादि कर्तुं गारहे, की मियुक्तता स्मरण की जाती है (३)  
 = अर्थिके जोतनेमें विद्या (कर्म) शक्यकी अधिकारमें वा पद्येते हैं  
 = वाक्यस्य कर्म मयि अथवा व्यापारियों का काम है । विरय (कर्म) इत्युक्ती  
 = विषयता कर्तुं वा प्रयोजनता अथवा इत्यसे आत्मप्राप्तके काममें कर्तुं गारहे  
 = मोर (= वा) कृष (अर्थिकर्म) का विविध अर्थार्थ कर्तुं गारहे मूलियां कर्तुं गारहे  
 = जोसिद्ध प्रकारका गाना बजाना आदि (= कर्मा) पर्ये अथवा वागवृत्ता  
 = कर्तुं वा बजाना अथवा इत्यादि कर्तुं गारहे, की मियुक्तता स्मरण की जाती है (३)

(१) दशविधकल्पवृज-कल्पवृज-भोग-अनुभव  
 विषयत्वात् ॥ भोगममय ॥ प्रतिच्छेदव्यपदिरयन्ते ॥  
 उक्तासु ॥ भूमिषु ॥ स्थिति-परिच्छेद-कार्येषु ॥ आह ॥  
 कर्मभूमिषु ॥ कर्मि ॥ विषयेषु ॥ वाक्येषु ॥ इति ॥ परि ॥  
 कर्मभूमिषु ॥ कर्मिषु ॥ विषयेषु ॥ वाक्येषु ॥ इति ॥ परि ॥  
 इतरासु ॥ कर्मि ॥ विषयेषु ॥ वाक्येषु ॥ इति ॥ परि ॥  
 कर्मभूमिषु ॥ कर्मिषु ॥ विषयेषु ॥ वाक्येषु ॥ इति ॥ परि ॥

॥ दृस्थिती परापरे त्रिपल्योपमान्तमुहूर्ते ॥ ३८ ॥  
त्रीणि पल्योपमानि यस्या सा त्रिपल्योपमा । अन्तर्गतो मुहूर्तो यस्या सा अन्तर्मुहूर्तो ॥  
यथासल्येन समन्ध ॥ मनुष्याणां परा उच्छ्रष्टा स्थिति त्रिपल्योपमा ॥ अपरा जघन्या अन्त-  
र्मुहूर्ता । मध्ये अनेकविकल्पा ॥ तत्र पल्यं त्रिविधं व्यवहारपल्यमुद्धारपल्यमद्वापल्यमिति ।

सूत्रम्—दृस्थिती परापरे (१) त्रिपल्योपमान्तमुहूर्ते=नु-स्थिती परापरे-त्रिपल्योपमान्तमुहूर्ते-(यथासंख्यम्)  
सुभाष-नु-स्थितीपरा-अपरे-त्रिपल्योपम-अन्तर्मुहूर्ते ॥  
पयासंख्यम् ॥

=मनुष्योंकी आयु उच्छ्रष्ट और जघन्य तीन पल्यमणाल और अन्तर्मुहूर्त  
=मनुष्यकसे है अर्थात् मनुष्योंकी आयु उच्छ्रष्ट (=परा) तीन पल्य मणाल  
और जघन्य (=अपरा) अन्तर्मुहूर्त है । और पल्य आयुके अनेक भेद है ।  
=तीन पल्य मणाल है जिसकी सो  
=त्रिपल्योपमा है । नीतर वा अन्यन्तर मुहूर्त जिसकी अर्थात् मुहूर्त वा दो  
पड़ी के भीतर भीतर जिसकी  
=सो अन्तर्मुहूर्त है । यथासंख्यकारि अपरा संख्याके क्रमसे (इन-परा  
अपरा-त्रिपल्योपमा अर्थात् मुहूर्तों शब्दोंका परस्पर)  
=समन्धरै अर्थात् परा शब्दके साथ त्रिपल्योपमा का सम्बन्ध किया जाता है  
और अपराके साथ अन्तर्मुहूर्तका वह निम्नलिखित इतमकार अर्थ होगा कि-  
=मनुष्योंका सबसे अधिक जीवनकाल तीनपल्य मणाल है ॥  
=सप्तयोद्धि(आयु)अन्य(आयु)अर्थात् मुहूर्त है । और मध्यवर्ष अनेक भेद है  
=वर्षा पल्य तीन प्रकार है । व्यवहारपल्य,  
=उद्धारपल्य और मद्वापल्य ऐसे

सुपनुवाद्-भीष्टिः॥पल्योपमानि॥यस्यार्त्तम्॥साः॥  
त्रिपल्योपमाः॥अर्थात्मुहूर्तं पल्यम्॥

साः॥अर्थात्मुहूर्तं॥यथासंख्यम्॥

समन्धम्॥

मनुष्याणामुपराः॥उच्छ्रष्टाः॥स्थितिः॥त्रिपल्योपमाः॥  
अपराः॥अन्यः॥अन्तर्मुहूर्तः॥पल्यः॥अनेक-विकल्पाः॥  
तत्र-पल्यम्॥त्रिपल्यम्॥व्यवहारपल्यम्॥  
उद्धारपल्यम्॥मद्वापल्यम्॥मितिः॥

(१) परापरे, परापरे, परापरे पल्यका उच्छ्रष्टे उच्यते तत्र त्रिपल्योपमायाः त्रिविधाः सन्ति-  
=व्यवहारपल्यम्, उद्धारपल्यम्, मद्वापल्यम् इति ॥



एतानिवासी नगररूपसहाय वरुण कृत्त पर्वच्छेद और विषयवर्त्यं सहित सवायसिद्धिका शक्यः सिद्धीमनुवाद । अध्याय ३ सूत्र ३८  
 अन्वर्थसंज्ञा एता ॥ आद्यं व्यवहारपल्यमित्युच्यते उत्तरपल्यद्वयस्य व्यवहारबीजत्वात् नानेन  
 किञ्चित्परिच्छेद्यमस्तीति । द्वितीयमुद्धारपर्यं । तत उद्धतैलौमकच्छेदैर्द्वीपसमुद्रा सख्यायन्त इति ।  
 तृतीयमद्वापल्यमद्वाकालस्थितिरित्यर्थ ॥ तत्राद्यस्य प्रमाणं कथ्यते । तद्यथा—प्रमाणगुण

व्ये (नीनीं पल्य) सार्यक नामवाले है अर्थात् जैसेजैसा जिसजिस पल्यका नाम है  
 ऐसा वैसा उस पल्य का अर्थ है ।  
 =ययम व्यवहार पल्य (नाम) कराजाता है क्योंकि (वह व्यवहारपल्य) अग्रिम  
 द्वा पल्य (उद्धार तथा अद्वा)के व्यवहार अथवा वर्तनेका कारण (=बीजत्वात्) है  
 अर्थात् उद्धार और अद्वापल्यकी उत्पत्ति जाननेके लिये व्यवहारपल्य है ।  
 =न इस (व्यवहार पल्य) करि कोई वस्तु (क्रियत्वात्) प्रमाण कियेजाने योग्य वा  
 विचारनीय है अर्थात् व्यवहार पल्य किसी वस्तुके नापनेके काममें नहींआती है ।  
 केवल उसमें रोमोंकी गणना ४५ अक्ष मणाय होती है "पयप रोम गिनित्येय"  
 =दूसरी उद्धारपल्य है वहांसैलामकल्लंद निकालकरि वा उद्धारकरि (उद्धतैः)  
 =द्वीप और समुद्र गिने जाते हैं "दूसरि द्वीप समुद्र गिने" । तीसरी अद्वापल्य  
 =वहुत वा उत्कृष्ट (=अद्वा) कालकी स्थितिवाली है ऐसा आशय है ।  
 =तहां मयम (पल्य) का मणाय कराजाता है । जैसे  
 =मणाय अंगुल अर्थात् वह अंगुल ओ उल्लेखअंगुल व्यवहारअंगुल, मणखित-  
 अंगुल अथवा आठ ओके मययागोंके मणायस पांचसौगुणा है तिसके

न ॐ मननम् ॥ त्रिभिवत् ॐ अरिच्छयम् ॥ अस्ति इति ॐ  
 पल्य-इत्यस् ॥ व्यवहार-बीजत्वात् ॥ इति ॐ उच्यते ॥ उत्तर

द्वितीयम् ॥ उद्धारपल्यम् ॥ तत ॐ उद्धतैर्द्वीपमच्छेदैः ॥  
 द्वीपसमुद्राः सख्यायन्त इति ॐ तृतीयम् ॥ अद्वापल्यम् ॥  
 अद्वाकालस्थितिः ॥ इति ॐ अर्थः ॥  
 मण ॐ आयस्यम् ॥ मणायम् ॥ कथ्यते ॥ तयया ॐ  
 मणाय-अंगुल

(1) तहां आदि मयम अल्लकरि रहित जिसका दूसरा विभाग न हो देसा अरिसागो पुरज का परमाणु है । ओ इन्द्रपकरि यथा मही आता है ।  
 जिसमें एक एक एक वर्ग एक गण्य हो स्वर्ण पर पंच गुण है । देसा अगणायस परमाणुओके समूहको अक्षयवासक कहते हैं । अक्षयवासक  
 आठ मिल तब एक संज्ञासंबंध(वा समतल)होता है । आठ सखायक मिले तब एक पुरदेसु होता है । आठ पुरदेसु एक मणखित (मणखित)  
 और आठ पुरदेसु का एक उत्प्रेरक (उत्प्रेरक) द्वीप आठ उत्प्रेरक एक उच्यम माय मुमिके मणुयके नामका काममाण है । आठ अक्षयसौगुल मुमिके  
 मणुयक नामके अक्षयसौगुल मिलि तब एक अक्षयसौगुल मुमिके मणुयके नामका काममाण हय । आठ अक्षयसौगुल मुमिके मणुयके नामका काममाण मिले

एतानिवासी गगनपतहाय वक्ष्यन्तः पदच्छदः और विपत्स्यस्यैव सर्वाथसिद्धिः का शब्दः किन्दीभनुवाद अभ्याय ३ सूच ३८  
 परिमितयोजनविष्कम्भमायामाग्नाहनि त्रीणि पत्न्यानि कुसूला इत्यर्थ । एकादिसप्तान्ताहोरात्र-  
 जाताविद्यालाप्राणि तावच्छिन्नानि यावद्द्वितीय कर्तरिच्छेदं नान्बुवन्ति,  
 परिमित-योजन-विष्कम्भ मायाम  
 अगनाहनिः॥ श्रीणिः॥ पत्न्यानिः॥  
 कुसूलाः॥ इच्छिन्नार्थः॥  
 एक-यादि-सप्त-अन्व अहोरात्र जात-अग्नि  
 बाल-अग्नाणिः॥ यावत्तच्छिन्नानिः॥ यावत्तच्छि  
 द्वितीयः॥ कर्तरि-च्छेदः॥ न नान्बुवन्ति॥

=न्याण करि अथवा नाचे हुये योजन(योजन) भर चौदहई (=विष्कम्भ)लम्पार (=मायाम)और  
 =गहरारबाले (गोल दोसके आकार) तीनि साठे वा गडे (=पत्न्यानि)  
 =मडले वा लपे (कुसूला=कुसूला) हे देसा अभिप्राय अथवा भाशाय हे ।  
 =एक से साठ तक दिन रातके जन्मे हुये (उपम योगसूत्रिके) मोग वा मूढ़ (=अधिके)  
 =केयुका(बाल-बाले) अत्रमाग तब तक श्रेयकर काटकर जब तक (यावत्) (=अधिके)  
 =रुतरे (छपु) खंड कतर्नी (=कर्तारि, कर्तारी)से प्राप्ति नहीं होसकते हे (पूर्वोक्त गडावा)

एक एक अथप्य मोग भविके मनुष्यके बालका अत्रमाय होता है । अथप्य योगसूत्रिके मनुष्यक बालके अत्रमाग काठ मिले तब एक कर्म मुक्ति के  
 मनुष्यके बालका अत्रमाग होता है । काठ कर्म मुतिके बालके अत्रमाग मिले तब एक लोच (=लीक)हो काठ लोच मिले तब एक कर्म मुक्ति के  
 अथवा तिलहो । काठ तिल मिले तब एक अत्रमाग होता है । अत्रमाग काट कर लोच (=लीक)हो काठ लोच मिले तब एक कर्म मुक्ति के  
 करि मारकी तिर्यक मनुष्य देवका शरीर तथा अठकिस प्रतिमाका रहे मायिसे है । बुद्धि पांचसे पूर्वोक्त असेय अंगुलका एक प्रमास अंगुल होता है । इस अंगुल  
 सो यह प्रमास अंगुल अष्टकसिंको काकके पहिले एकवर्षके हाथके अंगुलके बराबर होता है । अथप्य किस काक में जैसा मनुष्य हा उसका अंगुल इसको अथप्य  
 अंगुल बरत है । इससे मिय मिय समय के अनुसार गोक नगद, मखन खट रथ कुच आसन युवा आदि का प्रमास होता है । प्रमास अंगुलसे  
 दीप छत्रप्र तथा उनको येनी नदी पर्यंत मिय समय के अनुसार गोक नगद, मखन खट रथ कुच आसन युवा आदि का प्रमास होता है । प्रमास अंगुलसे  
 का एक पात्र बाह अंगुल का एक विगतिल (विगतिल विगतिल) दो विगतिल का एक हाथ हो हाथ का एक हाथ अथप्य अथप्य अथप्य अथप्य अथप्य  
 दो सखल बापका एक कोण चार कोण का एक विगतिल (विगतिल विगतिल) दो विगतिल का एक हाथ हो हाथ का एक हाथ अथप्य अथप्य अथप्य अथप्य अथप्य  
 कोय हो सखल हो तब एक प्रमास योजन होता है ।

सर्वाथ

पदानिवासी ग्राह्यसहाय इकील कृत् पदच्छेद और विपरत्यर्थ साधित सवायसिद्धिका शब्दशः सिद्धीभनुवाद । अध्याय ३ सूत्र ३८  
 अन्वर्थसञ्ज्ञा एता ॥ आद्यं व्यवहारपल्यमित्युच्यते उत्तरपल्यद्वयस्य व्यवहारबीजत्वात् नानेन  
 किञ्चित्परिच्छेद्यमस्तीति । द्वितीयमुद्धारपल्यं । तत् उद्धृतौलोकच्छेदोद्दीपसमुद्रा सख्यायन्त इति ।  
 तृतीयमद्वापल्यमद्वाकालस्थितिरित्यर्थ ॥ तत्राद्यस्य प्रमाणां कथ्यते । तद्यथा—प्रमाणागुल  
 मन्वर्थसञ्ज्ञाः एताः ॥

व्ये (तीनों पल्य) सार्थक नामवाले हैं अर्थात् जैसाजैसा जिसजिस पल्यका नाम है  
 वैसा वैसा उस पल्य का अर्थ है ।  
 =यम व्यपहार पल्य (नाम) करानाता है क्योंकि (वह व्यपहारपल्य) अग्रिम  
 अर्थात् उद्धार और अद्वापल्यकी उत्पत्ति जाननेके लिये व्यपहारपल्य है ।  
 =न इस (व्यपहार पल्य) करि कोई वस्तु (किञ्चित्) प्रमाण कियेजाने योग्य वा  
 विधानीय है अर्थात् व्यपहार पल्य किसी वस्तुके नापनेके काममें नहींआती है ।  
 केवल उसमें रोमोंकी गणना ५५ अंक प्रमाण होती है "प्रथम रोम गिनियेय"  
 =दूसरी उद्धारपल्य है वार्सखामकलंद निकालकरि वा उद्धारकरि (उद्धतौ)  
 =द्वीप और समुद्र गिने जाते हैं "दूसरि द्वीप समुद्र गिने" । तीसरी अद्वापल्य  
 =वस्तु वा उल्टुट (=अद्वा) काखकी स्थितिवाली है एसा आशय है ।  
 =प्रमाण अगल अर्थात् वह अंगुल जो उल्टेप्रमंगुल व्यपहारमंगुल, प्रखलित-  
 अंगुल अथवा आठ ओके मरयागोंके प्रमाणस पाँचसंगुला है जिसके

द्वितीयम् ॥ उद्धारपल्यम् ॥ तत् उद्धृतौ लोकाच्छेदः ॥  
 दीपसमुद्रौ मस्यायनौ इति तृतीयम् ॥ अद्वापल्यम् ॥  
 अद्वाकालस्थितिः ॥ इति अर्थः ॥  
 नः आपस्यः ॥ प्रमाणम् ॥ कथ्यते त्रयाणाम् ॥  
 प्रमाण मंगुल

(1) नतीं कादि मध्य प्रत्यकरि रहित जिसका दूसरा विभाग न हो देसा अक्षिमांगी पृथग का परमाणु है । जो इत्युपरि प्रका नहीं जाता है ।  
 जिसमें एक एक एक वर्ण एक मध्य हो अर्थात् यह पाँच गुण हैं । देसा अक्षमांगल परमाणुओके समूहोंके रूपकाजालक करते हैं । अक्षमांगलक  
 आठ मिले नष्ट एक संवायक(वा सखायक)कीता है । आठ अक्षमांगल मिले नष्ट एक एक उद्धृतुट (उद्धतौ) होता है । आठ उद्धृतुटका एक उद्धृतुट (अक्षर) है ।  
 और आठ अक्षरों का एक अक्षर (अक्षर) होता है । आठ अक्षरोंके समूहके आठका अक्षरमात्र है । आठ अक्षरमात्रोंके समूहके आठका अक्षरमात्र है । आठ अक्षरमात्रोंके समूहके आठका अक्षरमात्र है । आठ अक्षरमात्रोंके समूहके आठका अक्षरमात्र है ।

एतानिचामी नगरप्रमाण परीक्षक पदच्छेद और विमतपर्यन्तित सर्वाधिकार शब्दः शिवीमनुवाद अर्थात् ३ सूत्र ३८  
 परिमितयोजनविष्कम्भायामाग्राहानि त्रीणि पल्यानि कुसूला इत्यर्थ । एकादिसप्तान्ताहोत्र-  
 जाताभिलाशाणि तावच्छिन्नानि यावद्द्वितीय कर्तारिच्छेदं नानुवति,

=मण्डल करि अथवा नारे हुए योजन(योजन) भर चौद्वारि (=विष्कम्भ)खस्मार् (=आयाम)और  
 =गहराबाले (गोल गोलके आकार) भीनि लाटे वा गड़े (=वर्णयानि)  
 =मूंगेले वा लपे (कुसूला=कुसूला) ई ऐसा अभिमाय अथवा आशय है ।  
 =एक से सात तक दिन रातके अन्ते हुये (उपम योगपूर्विके) मेरा वा मड़े (=अधिके)  
 =छेपछा(शाल=वाल) समभाग तक तक छेदकर काटकर जब तक (यावत्)के  
 =दूरे (छपु) लंद कर्तनी (=कर्तरी, कर्तरी)से मासि नरी होसकते है (पूर्वक गद्दारा)

तब एक उपयय योग अधिके मनुष्यके बालका समभाग होता है । उपयय योगसूतिके मनुष्यके बालके समभाग सात मिले तब एक कर्म सूतिके  
 मनुष्यके बालका समभाग होता है । सात कर्म सूतिके तब एक कर्म सूतिके मनुष्यके बालके समभाग सात मिले तब एक कर्म सूतिके  
 करि गारको तिर्यक मनुष्य देवीका शरीर तथा अठमिय प्रकियाका देह माणिये है । अतः पाँचसे पूर्वक असेय संगुल होता है । इस संगुल  
 तो वह मणाय संगुल अथवापिणी बालके पहिले बढवर्तीके हाणके संगुलके बराबर होता है । सिध समय तिस संगुलकरि गोंव नगराधिकका प्रमाण  
 होता है । अन्य काल में मनुष्यो का अपना अपना संगुल का प्रमाण गढ़ा नगद, सबन पर एय छुप कासन पुजा आदि का प्रमाण होता है । प्रमाण संगुल  
 शीय छपुद तथा उनकी देवी नदी परत विमान गदके मल्लार, औरपाम आदि अठमिय मनुषुका विस्तार आयाम-कारि माये जाते है । छद संगुल  
 का एक बार बार संगुल का एक विस्तार गोंव नगद, सबन पर एय छुप कासन पुजा आदि का प्रमाण होता है । प्रमाण संगुल  
 दो तरह काय एक काय बार बोटका एक योजन एव त्रिने पाँचवी ध्यवहार योजनका एक प्रमाण योजन होता है । प्रमाण संगुल  
 कीय दो तरह हो तब एक प्रमाण योजन होता है । प्रमाण संगुल

पयानिवासी आत्मसहाय इतीह कृत पदच्छेद और निभसत्यर्थं स्रित सभायसिद्धिका शब्दशः सिन्धीअनुवाद । अर्थात् ३ सप्त ३८  
 अर्थसंज्ञा एता ॥ आद्यं व्यवहारपल्यमित्युच्यते उत्तरपल्यद्वयस्य व्यवहारबीजत्वात् नानेन  
 किञ्चित्परिच्छेद्यमस्तीति । द्वितीयमुद्धारपल्य । तत उद्धृतैर्लोमकच्छेद्वैर्दीपसमुद्रा सरल्यायन्त इति ।  
 तृतीयमद्वापल्यमद्वाकालस्थितिरित्यर्थ ॥ तत्राद्यस्य प्रमाण कथ्यते । तद्यथा—प्रमाणागुल  
 अर्थसंज्ञा ॥ एता ॥

व्यं (वीनों पल्य) सार्थक नामवाचो रे अर्थात् वैसावैसा जिसनिस पल्यका नाम रे  
 वैसा वैसा उस पल्य का अर्थ रे ।  
 =यय व्यवहार पल्य (नाम) करानाता रे क्योंकि (वह व्यवहारपल्य) अग्रिम  
 =दा पल्य (उद्धार तथा अद्वा)के व्यवहार अथवा वर्तनेका कारण (=बीजत्वात्) रे  
 अर्थात् उद्धार और अद्वापल्यकी उत्पत्ति जाननेके लिये व्यवहारपल्य रे ।  
 =न इस (व्यवहार पल्य) करि कोई वस्तु (किञ्चित्) प्रमाण कियेनाने योग्य वा  
 निचारीय रे अर्थात् व्यवहार पल्य किसी वस्तुके नापनेके काममें नहींआती रे ।  
 केवल उसमें रोपोंकी गणना ४५ अक प्रमाण होती रे “प्रथम रोप गिनिये”  
 =दूसरी उद्धारपल्य रे प्रथमलापकत्वं निकालकरि वा उद्धारकरि (उच्यते)  
 =दीप और समुद्र गिन जात रे “दूसरि दीप समुद्र गिनै” । तीसरी अद्वापल्य  
 =वृत्त वा उत्कृष्ट (=अद्वा) कालकी स्थितिवाची रे ऐसा आशय रे ।  
 =तार्थ प्रथम (पल्य) का प्रमाण करानाता रे । जैसे  
 =प्रमाण अगुल अर्थात् वह अंगुल जो उत्सेपमंगुल व्यवहारमंगुल, प्रचलित  
 अंगुल अथवा आठ लोक पापयागोंके प्रमाणास पांचसंगुणा रे तिसक

(1) तार्थं वाचि भाय अगुलकरि रहित किलका दूसरा विभाग न हो देसा अविभागी पुत्रक का प्रमाण रे । सो उत्पत्करि प्रका नहीं जाता रे ।  
 आठ मिले तब एक संज्ञाके (वा प्रमाण)योग्य रे । आठ संज्ञाके मिले तब एक पुत्रके योग्य रे । आठ पुत्रके योग्य रे । आठ पुत्रके योग्य रे । आठ पुत्रके योग्य रे ।  
 और आठ वरीय का एक एतरेन (उत्सेप) दीप, आठ एतरेयुक्त एक उत्सेप भाग युक्ति समुद्रके बाकका कारण है । आठ एतरेयुक्त युक्ति  
 अगुलके नामके अकारण मिली तब एक उत्सेपयोग्य युक्ति अगुलके नामके अकारण मिली









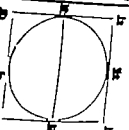
एगनिवासी नागसहाय पकील छव स्वच्छेद और विफल्यर्थ सवि सवार्थसिद्धिका शक्यः। हिन्दी अनुवाद अख्याय ३ सप्त ३८  
 ताटरीलोमच्छेदे परिपूर्ण घनीमूत व्यवहारपल्यमित्युच्यते ॥

ताटरीमूः।। लोमच्छेदे परिपूर्णम्।।।

घनीमूतम्।।। व्यवहारपल्यम्।।। इति उच्यते।।। = वैसे ही (= ताटरी) रोमसंदकारि समूर्ण (= परिपूर्ण)

(१) प्रथम एक महा योजन अथवा प्रमाप योजन करने और गहरे इस प्रकार यथाकार रूप महा योजनके गहवाके लोमपक्षेरीकी सक्या सुपम और विस्तार रूपसे करते हैं। उनमाही बगवा ठगमाही छोड़ा उनमाही गहवा अथवा ऊंचेको यथाकार करते हैं। इस दिव्यरीका प्रमाणभगुलकी दिव्यरी पक्षर और समस कर पड़ना चाहिये ॥ एक यथाकार प्रमाप योजन का गढ़ा एक व्यवहार योजन के यथाकार गहरेसे पाँचसौ गुना लम्ब पाँचसौ गुना चौड़ा और पाँचसौ गुना गहरा होता है। और एक व्यवहार योजन चारकोण का होता है। इसलिये प्रमाप योजनका गहवा दो सवस्य योजन करने दो सवस्य योजन चौड़ा और दो सवस्य योजन गहरा हुआ। यह प्रकारल कुल क्लिष्ट है इसलिये निम्नोक्त पाठकोकी सुगमताके लिये द्वैय

कवगप येवकी प्रयेक मुजा कज, बाग गप एक। दो दो सवस्य कास की मानी गई है। एक कोसके २००० बाग  
 २००० हाप २००० x ५७ = १,१२,००० असेच भगुल हुये इसलिये एक महायोजन अथवा दोसवस्यकोसके १,१२,००० x २००० =  
 २,२४,००,००० रासेच भगुल हुये = कज = बाग = गप = एक = कज व्यासके १,२४,००,००० x २ = २,४८,००,००० बाग  
 २,४८,००,००० x २ = ४,९६,००,००० मिज हुये २,४८,००,००० x २ = ४,९६,००,००० बाग १,२४,००,००० बागके जोकेसमान  
 यमि के समुप्य के बाल के आयमाग १,५२,२५०,००० x २ = ३,०४,५०,००० बाग १,२४,००,००० x २ = २,४८,००,०००  
 आयमाग। १,०९,११,२६,००० x २ = २,१८,२२,५२,००० x २ = ४,३६,४५,०४,००० अथवाप्रयोग  
 एक प्रमाप योजन अथवा एक महायोजनकी लम्बाई एक टोकाके लोमपक्षेरे हुये इस संख्या को इसी संख्याके गुणा करनेसे (करीबि कज टोका  
 कग टोका के बराबर है) लगे न बाग केबके, येवस्यके टोम करे जाते हैं। अर्थात्, एवं प्रमाप योजनके लोमपक्षेरे निकलते हैं ॥







एतानिवासी अकारसायं बशीलकृत् एतकेद और विपत्त्यर्थंसात सर्वाविधिद्विधा शब्दः। हिदीमनुवाद प्रप्याय ३ सम ३८  
 पूर्णमद्वापत्यम् ॥ तत समये समये एकैस्मिन्मोच्येदेऽपकृष्यमाणे यावता कालेन तद्विक्तं  
 भवति तावान्कालोऽद्वापत्योपमाख्य ॥ एवामद्वापत्यानां दशकोटीकोटय एकमद्वासागरोपमम् ॥  
 दशाद्वासागरोपमकोटीकोटय एकावसर्पिणी ॥ तावतैवोत्सर्पिणी ॥ अनेनाद्वापत्येन नारकतैर्यग्यो-  
 नीना देवमनुष्याणां च कर्मस्थितिर्भवस्थितिरयु स्थिति कायस्थितिश्च परिच्छेत्तज्या ॥

—एवं अद्वापत्य रोती रे अर्थात् सर्पयुक्त अद्वापत्यके एक एक रोप के इतने इतने  
 संद किचे जाय कि कितने कितने सौ बरसके समय रोते रे तब अद्वापत्यके

रोमका यमाण होता है ॥  
 —असै समय समयमें अर्थात् अत्येक समयमें एक एक (पूर्वोक्त संद किये हुये)  
 —क्षोमच्छेद निकालनेमें जिस काष्ठकरि  
 —एव ताकी होजाता है । उतना काष्ठ अद्वापत्योपम (के नाम) से  
 —व्यसिद्ध है । दश कोड़ा कोड़ी इन अद्वापत्योका  
 —एक अद्वासागरोपमम् ॥—एक अद्वासागरोपम है । दश कोड़ा कोड़ी अद्वा-सागरोपमका  
 —एक अद्वासागरोपमम् ॥—दश-अद्वासागरोपम-कोटी-कोटयम् ॥  
 —कितनाही (दश कोड़ा कोड़ी अद्वापत्योपमका)  
 —वत्सर्पिणी काल है । इस अद्वापत्यकरि  
 —नारकियों और विषबोकी और (—व) देव मनुष्योंकी  
 —कर्मस्थितिः ॥ यवस्थितिः ॥ अर्थात् एक पक्की स्थिति  
 —आयु स्थिति और (—व) कायस्थिति जानना चाहिये ।

(1) एक कायमें अनेक अंग धारक अरे तिनको कायस्थिति कहते हैं । जैसे पुण्डरी अणु में अणुकायिक जीवोंके कायस्थिति असंख्यतात होक  
 है । तिमहीमें अणुमें अरे तो पताकाकानाई अणुको अरे । बहुति वनस्पतिकाकका अणुकाक है तो अणुकाकत अणुल परिवर्तमान है । बहुति  
 विच्छेदका अणुकाकत सदा अरस है । पंचेदिनिष्ठी तिर्येक मनुष्योकी एवच्छेद काटि पूर्व अचिक ठीनि एख है । बहुति अणुय कायस्थिति एव  
 लबोकी अणुमंडलगत है । बहुति देवगणकीमिष्ठी अणुस्थिति है ओरी अणु स्थित है । ऐषत देव मणी होला माल्सीत गाटकी मणी होला अह नियमही है

एकैकलोमापकर्षणविधिना यावता कालेन तद्विक्तं भवेत्तावाङ्कालो व्यवहारपल्योपमारब्ध ॥ तैरेव लोमच्छेदे प्रत्येकमसल्येयवर्षकोटीसमयमात्रच्छिनैस्तत्पूर्णमुद्धारपल्यम् ॥ तत समये समये एकैकरिमनोमच्छेदेऽपकृष्यमाणे यावता कालेन तद्विक्तं भवति तावाङ्काल उद्धारपल्योपमारब्ध ॥ तेषामुद्धारपल्याना दशकोटीकोटय एकमुद्धारसागरोपमम् ॥ अर्धतृतीयोद्धारसागरोपमाना यावन्तो रोमच्छेददारतावन्तो द्वीपसमुद्रा ॥ पुनरुद्धारपल्यरोमच्छेदैर्वर्षशतसमयमात्रच्छिन्ने

एक-एक-लोम अपकर्षण-विधिना; यावता; कालेन; तद-रिक्तम् ॥ यदेतत्तावन्तं कालं; व्यवहार-समय-परम-आख्यम्; तैः; एतच्छिन्नामच्छेदैः; मान-रिचिभिः; तद्विः ॥ पूर्णम् ॥ उद्धार-पल्यम् ॥ ॥

= एक एक रोम निकालकर (=अपकर्षणविधिना) जिस =कालकरि वह (इस) खाली गोने उतना काल =व्यवहार पल्य (के नामसे) प्रसिद्ध है । तिनही खोमच्छेदोंसे =समान अपना बराबर (=मात्र) लवंगोंसे वह पूरा उद्धारपल्य होती है । अर्थात् पूर्वोक्त पैतालीस अक्ष ममाण व्यवहारपल्यके पूर्यक पथक रोमके इतने इतने लंठ =वर्षोंसे समय समयमें अर्थात् अत्येक अत्येक रोमोंका मणाल होता है और =निकाखनमें जिस कालकरि वह रीता होजाता है ॥

इत्ये अथ कि जितने जितने अस्तस्थित फोड़ बरसके तथ पूरा उद्धारपल्य होती है । अर्थात् अथसमय; समय; एक-एकस्मिन्; रोमच्छेद; अपकृष्यमाण; यावता; कालेन; तद-रिक्तम्; ॥ यवति तावन्तं; कालं; उद्धार-पल्योपम-आख्यम्; तेषामुद्धार-पल्याना; दश-कोटी-कोटय; एक-मुद्धार-सागरोपमम्; ॥ अर्ध-तृतीय-उद्धार-सागरोपमाना; ॥ पुनरुद्धार-पल्य-रोम-च्छेदै-र्वर्ष-शत-समय-मात्र-च्छिन्ने; ॥

उद्धारसागरोपमम् ॥ अर्धतृतीय-उद्धारसागरोपमानम् ॥ यावन्तः रोमच्छेदाः पल्य रोमच्छेदाः पुनरुद्धारपल्य रोमच्छेदाः ॥ अर्ध-तृतीय-उद्धार-सागरोपमम् ॥ अर्ध-तृतीय-उद्धार-सागरोपमानम् ॥

(1) अर्धतृतीय-उद्धार-सागरोपमम् अर्ध-तृतीय-उद्धार-सागरोपमानम् अर्ध-तृतीय-उद्धार-सागरोपमम् अर्ध-तृतीय-उद्धार-सागरोपमानम्

एतन्निवासी जगत्सहाय सर्वलोकप्रद और विपत्तयर्थसहित सर्वार्थसिद्धिदा शब्ददा हिन्दीमनुष्य अर्थात् ३ सूत्र २६  
 तिरश्चा योनिस्तिर्यग्योनि । तिर्यग्गतिनाममौदयापादितं जन्मेत्यर्थ । तिर्यग्योनी जातास्तिर्य-  
 ग्योनिजा । तेषां तिर्यग्योनिजानामुल्लूपा भवस्वित्तिस्त्रिपल्लयोपमा ॥ जघन्या श्रन्तमर्मुहूर्ता ॥  
 मध्येऽनेकविकल्पा ॥ ॐ ॥ भूबिल्लेश्याद्यायुद्दीपोदधिवास्वगिरि-

बुधनुवाद - विरश्चायुः१ योनिः २ तिर्यग्यानिः ३ ॥ तिर्यग्यानिः ३ ॥  
 त्रिया-नति-नामकम् उदय-आपादितम् १ ॥  
 जन्म १ ॥ पृथि २ ॥ तिर्यग्योनी १ ॥ जाता १ ॥  
 तिर्यग्यानिजा १ ॥ तेषाम् १ ॥ तिर्यग्यानिमानाम् १ ॥  
 उरु व्य १ ॥ पर्वस्विति १ ॥ त्रिपल्लयोपमा १ ॥ जघन्या १ ॥  
 मन्मर्मुहूर्ता १ ॥ मध्येऽनेक-विकल्पा १ ॥

भूबिल्लेश्याद्यायुद्दीपोदधिवास्वगिरिस्तर सरिताम् ॥ माननृणाचभेद स्थितिस्तिरश्चामपितृनीयाध्याये  
 प्र-निष्-  
 करणा आदि  
 = (सात) भूमिमें (इन सात भूमियों में चौरासी जात) विशेष (देखो सूत्र १, २)  
 = (कापात, नील-कृष्ण) तैर्यादिक अर्थात् (अनुभवखोरयावाले, अनुभवपरिणाम  
 वाले अनुभवतरदेके धारक, अनुभवत वेदना वाले, अनुभवत विक्रिया करनेवाले,  
 परस्पर दुःख उत्पन्न करनेवाले नारकी जीव) (देखो सूत्र ३, ४, ५)  
 = (नारियों की उत्कृष्ट तथा उपन्य) आयु (देखो सूत्र ६)  
 = दीप तथा सधुद्र अर्थात् जन्म-द्वीपसे स्वयम्भूरमण्डदीपक असल्याले दीप और  
 खरखोदयिसे स्वयम्भूरमण सधुद्र पयत अर्संस्थाने सधुद्र, अन्के विस्वार और आकार  
 (देखो सूत्र ७, ८, ९)  
 = (जन्म-द्वीपके भरतखेपसे पेरगतखेप छग सात) क्षत्र (देखो सूत्र १०)  
 = (विस्वार से शिशिरी क्षग छह) परल्लयार्थ विस्वार सरित्(देखो सूत्र ११, १२, १३,)

प्रमोदणी अगस्त्यसाराय वसोऽहं कृत एतच्छेदं और विमलसूर्यं इति सर्वविदिका शब्दतः। तिन्वीअनुवाद। भाष्याय ३ सूत्र ३८, ३९  
 उक्तं च संग्रहगाथा—ववहारुद्धारद्धारपक्षा तिण्णव होति बोद्धव्या। संखादीव सम्मुहा कम्मद्धिदि  
 वणिणदा तदिये ॥ १॥ यथैवेते उत्कृष्टजघन्ये स्थिती नृथा तथैव—

## ॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥ ३९ ॥

उक्तं ॥ च ३९ संग्रह-गाथा ॥

ववहारुद्धार द्वा-पक्षाः ॥ (व्यवहार उद्धार अद्वा-पक्षानि ॥)  
 तिण्ण-पक्षे ॥ (ति-कोट-पक्षाः ॥) ॥ (पक्ष-पक्षानि ॥) ॥  
 सला-दीव-सम्मुहाः ॥ (संख्या दीप-सम्मुहाः ॥)  
 इत्य-दिदि-निष्कटा-अदिये ॥ (कर्म-स्थिति वक्षिणाः ॥) ॥

= श्रुति (एककी रूपतकी) सक्पकी हुई।  
 = अपना एकज की हुईं भाषों खदोयेसे एक (गाथा) कही जाती है  
 = व्यवहार उद्धार अद्वा पक्ष  
 = तीनही है सो जानना  
 = संख्या दीप सङ्घ  
 = (और) कर्मस्थिति तिन (एक्यों) करि बखित है। भावार्थ

हर सख्याकी जस्यि ज्ञाननेके लिये है। उद्धारपक्षकरि दीप और सङ्घ गिने जाते है और  
 अद्वापक्ष्य द्वारा कर्मस्थिति (पक्षस्थिति, चापुस्थिति, कायस्थिति) का कथन होता है।  
 सङ्घ-नपक्ष्य ॥ सङ्घ-नपक्ष्य ॥ स्थिती ॥ नृणां, सङ्घ-पक्ष्य = जैसे ही ये सङ्घ और जपत्य आयु मनुष्योंकी है वैसे ही  
 (१) सूत्रम्—तिर्यग्योनिजानां च ॥ ३९ ॥ = तिर्यग्योनिजाना च स्थिति परापरं त्रिपल्योपमान्तं मुद्दुते भवत

प्रायः—तिर्यग्योनिजानाम् ॥ ३९ ॥  
 पाठः स्थिति ॥ त्रिपल्योपमानं ॥ पवति ॥  
 यथा ॥ स्थितिः ॥ अन्तर्हृत्वा ॥ पवति ॥  
 (१) सङ्घ-पक्ष्य से 'तिर्यग्योनिजानां च' का उक्तं पाठ है। इससे त्रिपल्योपमानं पवति पाठः ( = त्रिपल्योपमानं पवति पाठः ) का उक्तं पाठ है।  
 यथा ॥ स्थितिः ॥ अन्तर्हृत्वा ॥ पवति ॥ ( = त्रिपल्योपमानं पवति पाठः ) का उक्तं पाठ है।  
 यथा ॥ स्थितिः ॥ अन्तर्हृत्वा ॥ पवति ॥ ( = त्रिपल्योपमानं पवति पाठः ) का उक्तं पाठ है।

तिरश्चा योनिस्तियर्योनि । तिर्यगतिनामत्र मोदयापादित जन्मेत्यर्थ । तिर्यग्योनी जातास्तिर्य-  
ग्योनिजा । तेषा तियग्योनिजानामुक्तुष्टा भवस्तिर्यग्योनिपयोपमा ॥ जघन्या अन्तमुद्धर्ता ॥  
मर्यजेकधिरूपा ॥ ॐ ॥ भूविल्लेरयायायुद्दीपोदधिवास्यगिरि-

तिदि

भूपनुराद-तिरश्चायुःपोनि ३।तिर्यग्योनि ३।  
तिपा-नति-नापकम वय भापादितम् ३।।  
जन्म ३।।वृत्ति ३।।यपा ३।।तिर्यग्योनि ३।।नात्ता ३।।  
तिर्यग्योनि ३।।नेतिपा ३।।तिर्यग्योनि ३।।  
उत्तुव्य ३।।मयास्विति ३।।तिर्यग्योनि ३।।  
अन्तमुद्धर्ता ३।।मयोय-मत्क-विकल्प ३।।

= तिर्यग्यो का उत्पत्ति स्थान सो तिर्यग्योनि है  
= तिर्यग्योनिनाया नामकयके वर्यकरि गुरीत अणय मात (आपादित)  
= जन्म (=नवीन शरीर परन्ता) पेशा अर्प है । तिर्यग्य योनि में उत्पन्न हुये  
= ये तिर्यग्य योनिन हैं । तिन तिर्यग्य योनिमें उत्पन्न हुवांकी  
= उक्तर्त प्रकती भायु तीन पन्थ मणाल है जन्म  
= मर्यजेर्यते है मर्यगिरे नानामद् है ।

भूनिमल्लेरयायायुद्दीपोदधिवास्यगिरिसर सरिताम् ॥ माननृणा चभेद स्थितिस्तिरश्चामगितृतीयाव्यये

= (सात) भूपिसे (एन सात भूपिसे में चौतानी साल) विले (देलो सूत्र १, २)  
= (कापाय, नील-कृष्ण) लेस्यादिक अर्पाते (मग्यमतरखेरयावाले, मग्यमतरपरियाय  
वाले मग्यमतरदेशक थारक, मग्यमतर नैदना वाले, मग्यमतर निर्याय  
परस्तर दुःख उत्पन्न करनेवाले नारकी जीव) (देलो सूत्र ३, ४, ५)  
= (नारियों की उरुकुष्ट तथा मघन्य) भायु (देलो सूत्र ६)  
= द्वीप तथा सध्दर अयात लव्यूद्वीपत स्वयम्भूरणद्वीपतक असंख्याते द्वीप और  
लवकोदधिसे स्वयम्भूरण सध्दर पयत अर्सेख्याते सध्दर, उनके विस्तार और आकार  
(देलो सूत्र ७, ८, ९)  
= (जम्भूद्वीपके भारतदेशके लग सात) सध्दर (देलो सूत्र १०)  
= (विमान् से शिकिरी नग्न ध्रुव) पर्वत(ध्रुव) विस्तार सध्दर(देलो सूत्र ११, १२, १३, १४)

भू-विल  
वरय-आदि

भायुम्  
द्वीप त्वधि

भास्य  
गिरि





एतन्निपासी नामः पसराम यकीलाम पदच्छद और विभक्त्यपेक्षित सर्वार्थसिद्धिका शब्दः। सिन्धीमनुष्याद् अत्राप्य ३ सूत्र ३६

तिरश्चा योनिस्तिर्यग्योनि । तिर्यगतिनामकमौदयापादित जन्मेत्यर्थ । तिर्यग्योनी जातास्तिर्य-  
मर्थेऽनेकविरूपा ॥ ॐ ॥ भूविल्लेश्यायुद्धीपोदधिवास्यगिरि-  
वृषभमुवाह - तिरश्चाद् योनिः ॥ तिर्यग्योनिः ॥  
तिर्यग्योनिनामकम उच्यते-आपादितम् ॥  
जन्मम् ॥ एति ॥ अथ ॥ तिर्यग्योनी ॥ जाताः ॥  
वृद्धत्वाद् ॥ अथ सिद्धिः ॥ तिर्यग्योनिनामाद् ॥  
अन्तर्बुद्धत्वाद् ॥ अथ ॥ अनेक विरूपाः ॥ जयन्त्याः ॥  
भूविल्लेश्यायुद्धीपोदधिवास्यगिरिसर सरिताम् ॥ माननृणाचभेद स्थितिस्तिरश्चामपितृतीयाध्याये

- = तिर्यग्योनी का उत्पत्ति स्थान सो तिर्यग्योनि हे
- = तिर्यग्योनिनामा नामकर्मके उत्पत्तिकरि गृहीत अथवा मात (आपादित)
- = तिर्यग्योनिनाम शरीर धरणा ऐसा अर्थ है । तिर्यच योनि में उत्पन्न हुये
- = उत्कर्ष भवति आयु हीन पत्य मरण है जयन्त्य
- = अर्थवृद्धि है मर्यादित नानामय है ।

- = (साके) भूमिमें (इन सात भूमियों में चौरासी लाख) बिले (देखो सूत्र १, २)
- = (कृपाय, नील-कृष्ण) लर्यादिक अर्थात् (अशुभकारत्वसेवावाले, अशुभकारपरिणाम वाले अशुभकारदेहक धारक, अशुभकार वेदना वाले, अशुभकार विक्रिया करनेवाले, परस्पर दुस्स उत्पन्न करनेवाले नारकी नीच) (देखो सूत्र ३, ४, ५)
- = (नारियों की उत्कृष्ट तथा मग्न्य) आशु (देखो सूत्र ६)
- = द्वीप तथा समुद्र अर्थात् जम्भूद्वीपस स्वयम्भूरमणद्वीपसक असल्याते द्वीप और छत्रणोदयिते स्वयम्भूरमण समुद्र पयत असल्याते समुद्र, इनके विस्तार और आकार (देखा सूत्र ७, ८, ९)
- = (जम्भूद्वीपके भरतक्षेत्रस परावत्क्षेत्र लग सात) छत्र (देखो सूत्र १०)
- = (शियवान् से शिशिरी लग षट्) पर्वतक्षेत्र विस्तार समित् (देखो सूत्र ११, १२, १३)

भू-विल  
लरया-आदि

आशु  
द्वीप उदयि

सास  
गिरि

एतानिवासी अकारसहाय पक्षीचकृत पदरज्ज्वेद और विषयस्पर्शसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिन्दीमानुवाद आध्याय ३ समाप्त सर सरिताम् ॥ मान नृणा च भेद स्थितिस्तिरश्चामपि तृतीयाध्याये ॥ १ ॥

## ॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञकायां तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

सरस

सरिताम् ॥

मानं

मानं

मानं

नृणाम् (नृणाम्)

(नृणाम्) स्थितिः ॥

तिरप्याम् मभिः (स्थितिः) ॥

नृणैः-आ-यापय

= (पक्षसं पुद्गरीकृतौ जन आहर्षतोऽहह) सरोवर, जन सरोवरोंके पुष्कर, माप, परिवारसहित देविपति) (सूत्र १५, १५, १६, १७, १८, १९)

= चौदह नदियें (जनके घातकी विद्यायें, और जनकीपरिवारकी नदियें छोनीछोनी) (देसो सूत्र २०, २१, २२, २३)

= (छेप तथा पर्षतोके) माप, वा नाप (देसो सूत्र २५, २५, २६, ३२)

= समयकी क्रिया(पषचन्द्रकाप गृह २६५) अर्थात् उत्सर्पिणी और अवलपिणी रूप हह समय अथवा काशोंकी वृद्धि हासरूप क्रिया (देसो सूत्र २७, २८)

= परिमाण अर्थात् भरतसेत्र, इत्याचल, पर्वत, द्रव, आदिदेसो सूत्र ३३, ३४, ३५) कौका अन्वृत्तीपसे पाटुकीसंह और पुष्करार्थमें नृना नृना परिमाण है । और

मनुष्यीका परिमाणादिके वे पुष्करदीपके आव भागक इपर है (देसो सूत्र ३५) = नृणिर (=च) मनुष्यीका मद (देसो सूत्र ३६)

= मनुष्यों की स्थिति अर्थात् नीबन काल (देसो सूत्र २९, ३०, ३१, ३२)

= तिरप्यामी स्थिति वा आयु (देसो सूत्र ३६) (ये सर्व ही)

= तीसरे अध्याय में (गणन किये गये) है

इति तत्त्वार्थ-वृत्तौ सर्वार्थसिद्धि- = ऐसे तत्त्वार्थकी व्याख्यामें सर्वार्थसिद्धि सञ्ज्ञिकाया तृतीयः अध्यायः ॥ नामाग्रथमें तीसरा अध्याय ॥

